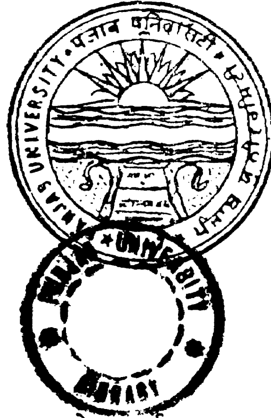
A CRITICAL STUDY OF GORAKSASAMHITA

गोरक्ष-संहिता:

एक समालोचनात्मक अध्ययन

पञ्जाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़
की पी-एच०डी० (संस्कृत)
उपाधिहेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

1985



शोध कर्त्ता :
गोकुलचन्द शर्मा
व्याकरण-दर्शनाचार्य
एम० ए० (संस्कृत)
साहित्य-आयुर्वेदरत्न

पञ्जाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़-14

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री गोकुल चन्द्र शर्मा द्वारा पंजाब विश्व विद्यालय को पी०एच०डी० संस्कृत उपाधि हेतु प्रस्तुत "गोरक्ष संहिता : एक समालोचनात्मक अध्ययन" नामक शोध प्रबन्ध उनकी अपनी रचना है और मेरे निर्देशन में पूर्ण की गई है । इसे अन्यत्र किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया है ।

दिनांक

जून ,1985

धनराज शर्मा 3/9/85

धनराज शर्मा
रीडर, संस्कृत विभाग
पंजाब विश्व विद्यालय
चण्डीगढ़ - 14

संकेत सूची - I

अथर्व०	अथर्ववेद
अ०हृ०	अष्टांगहृदयम्
ए०उ०	ऐतरेय-उपनिषद्
क०उ०	कठोपनिषद्
गो०ब्रा०	गोपथ-ब्राह्मण
गो०प०	गोरक्ष पद्धति
गो०सं०	गोरक्षसंहिता
गो०सं०यो०ख०	गोरक्ष संहिता योग खण्ड
गो०सि०सं०	गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह
घे०सं०	घेरण्ड संहिता
च०सं०	चरक संहिता
तै०ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
प्र०उ०	प्रश्नोपनिषद्
प्र०द०	प्रत्यभिज्ञा दर्शन
ब्र०सू०	ब्रह्मसूत्र
भा०पु०	भागवत पुराण
म०स्मृ०	मनुस्मृति
मा०पु०	मार्कण्डेय पुराण
या०स्मृ०	याज्ञवल्क्य स्मृति

क्र॰ पृ॰ १०५८ देखें

विषय सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

अग्निपुराण — सं० आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा वाराणसी

अथर्व-वेद शौनक संहिता — सं० विश्वबन्धु, वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, 1961

अष्टांगराजयोग — सं० सत्यदेव, वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, भाग-1, 2 सन् 1957, भाग-3, सन् 1965

अष्टांगहृदयम् वाग्भट्ट, विद्योतिनिभाष्य सहित, चौखम्बा, वाराणसी,

अष्टाध्यायी पाणिनि — रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, सम्वत् 2034

अमरौघ शासनम् — सं० मुकुन्द शास्त्री,

आसनप्राणायाममुद्राबन्ध — सं० सत्यानन्द सरस्वती एवं के०के० गोयन्दका, बिहार योग विश्वविद्यालय, बिहार, 1973

उपनिषदों में योग तत्व

ऋग्वेद संहिता — सं० काशीकर एवं सोनटके, वैदिक शोधमण्डल पूना, 1933-51

ऋग्वेद प्रातिशाख्य शौनक — वर्गद्विय वृति एवे उव्वटकृत टीका सहित, सं० मंगलदेव शास्त्री, इलाहाबाद, 1931

ऐतरेय ब्राह्मण, — सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, 1896

ऐतरेय आरण्यक — सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, 1898

ऐतरेयोपनिषद् — उपनिषद् संग्रह, सं० जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल, बनारसीदास दिल्ली, 1980

कल्याणकारक हस्तलेख

कठोपनिषद् शांकरभाष्य सहित — गीता प्रेस गोरखपुर, सं० 2001

कबीर दोहावली, — देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली

कणाद् गौतमीयम् — सं० आचार्य विश्वनाथ

गरुड पुराण प्रेतकल्प — चौखम्बा वाराणसी, सं० 2026

गोपथ ब्राह्मण — सं० जीवानन्द कलकत्ता, 1891

गोरक्षनाथ एण्ड कनफटा योगीज, ब्रीग्ज

गोरक्ष पद्धति सं0 महीधर शर्मा, खेमराज कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1898

गोरक्षनाथ डा0 नागेन्द्रनाथ

गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, सं0 डा0 जनार्दन शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,

गोरक्षशतक गोरक्षनाथ

गोरक्ष-संहिता
1. सं0 डा0 चमन लाल गौतम, बरेली
2. डा0 जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, वाराणसी, 1976

गोरक्ष चरित, डा0 चमन लाल गौतम, ख्वाजा कुतुब वेद नगर बरेली

घेरण्ड संहिता लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस कल्याण बम्बई, सम्वत् 1978

चरक संहिता चरक चक्रपाणि व्याख्यासहित, चौखम्बा वाराणसी,

तेजोबिन्दूपनिषद् उपनिषद्संग्रह से, सं जगदीशलाल, मोतीलालबनारसीदास दिल्ली, 1980

तैत्तिरीय ब्राह्मण सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, 1934

तर्कसंग्रह अन्नभट्ट चौखम्बा संस्कृत सीरीज. 1961

तत्वार्थसूत्र उमा स्वामी चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

तान्त्रिक साधना और साहित्य

जीवन योग की साधना काकाकालेकर

तैत्तिरीय आरण्यक आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, 1897

ध्यानबिन्दूपनिषद् संग्रह उपनिषद् संग्रह से

नाथ सम्प्रदाय हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य प्रकाशन वाराणसी,

नाथ सम्प्रदायेर इतिहास दर्शन ओ साधना प्रणाली, डा० कल्याणी मल्लिक

नादबिन्दूपनिषद् उपनिषद्संग्रह से

निरुक्त यास्क दुर्गवृत्ति सहित, आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, 1921-26

न्याय दर्शन विद्योदयभाष्य सहित चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी

पंचदशी विद्यारण्य बुद्धि सेवा आश्रम, रत्नगढ़, सम्वत् 2011

योग दर्शन पतंजलि सं०ब्रह्मलीन मुनि, दालगिया,महिधरपुरा,सूरत,गुजरात,1958

पारस्कर गृह्य सूत्र हरिहरभाष्य चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन,वाराणसी,1980

प्रत्यभिज्ञा दर्शन

प्रश्नोपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

प्राणाग्निहोत्री उपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

प्राणायाम यौगिक चिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र,बापूनगर,जयपुर,1970

बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन -

ब्रह्म सूत्र शांकरभाष्य सहित, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय,काशी, सं० 1992

भगवद्गीता शांकरभाष्य सहित , गीता प्रेस गोरखपुर, 1957

भागवत-पुराण भावार्थ दीपिका सहित, सं वासुदेव लक्ष्मण, निर्णय सागर बम्बई,1910

देवीभागवत पुराण सं० रामतेज पाण्डेय,पण्डित पुस्तकालय काशी,1976

भारतीय दर्शन डा० बलदेव प्रकाश उपाध्याय, चौखम्बा औरियन्टालिया,वाराणसी, 1976

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

महाभाष्य प्रदीपोद्योत व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी, 1954

मनुस्मृति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1887

माण्डूक्योपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

मैत्रायण्योपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता उव्वट महीधर भाष्य सहित, सं0 वासुदेव शर्मा, पाण्डुरंगजावजी, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1929

याज्ञवल्क्य स्मृति मिताक्षरा व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी

योगकुण्डल्युपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

योगी सम्प्रदाय आविष्कृति

योग चूडामण्युपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

योग तत्वोपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

योग प्रदीपिका सं0 बलदेवमिश्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 1972

योग शिखोपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

योग मीमांसा पत्रिका कैवल्य धाम आश्रम लोनावला पूना

योग वासिष्ठ अच्युत ग्रन्थमाला काशी, सं0 2005

योग विज्ञान सं0 सत्यानन्द सरस्वती-बिहार योगी विद्यालय, मुंगेर, 1972

योग विज्ञान 2 भाग पीताम्बर आश्रम दतिया

योगविद्या पत्रिका बिहार योग विद्यालय मुंगेर" बिहार

योगसारसंग्रह सं0 सनातनदेव, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सं0 2014

योगाभ्यास क्रम डा0 मनोहरलाल लक्ष्मण घारोटे क्रीडा एवं युवक कल्याण, बम्बई-1976

योगासन		स्वा० कुवलयानन्द, कैवल्यधाम, लोणावला, महाराष्ट्र, 1965
योगशास्त्र		
रसरत्नाकर		काश्मीरी संस्करण
रसेन्द्रसार संग्रह		दीपिका टीका सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी
रसार्णव तन्त्र		हस्तलेख
लिंग पुराण		लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1846
वायु पुराण		आनन्द मुद्रणालय पूना, 1905
वाराहोपनिषद्		उपनिषद् संग्रह से
वसिष्ठ संहिता		सं० दिगम्बर जी कैवल्य धाम लोणावला, पूना
वाक्य पदीय	भर्तृहरि	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1977
विश्व ज्योति पत्रिका		वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर ,
वेदान्तसार	सदानन्द,	चौखम्बा संस्कृत सीरीज , वाराणसी, 1964
वैशेषिक दर्शन		प्रशस्तपादभाष्य सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
वैदिक योग सूत्र		
शक्तिसंगम तन्त्र		चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,
शतपथ ब्राह्मण		सं० ए० वेबर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1964
शाक्त प्रमोद		चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी,
शारदातिलक		डा० चमनलाल, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर बरेली,
शार्ङ्गधरसंहिता		चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

शाण्डिल्योपनिषद् उपनिषद् संग्रह से

शिव महा पुराण सुरेशचन्द अग्रवाल,गीता बुक डिपो हरिद्वार,

शिव संहिता डा० चमनलाल गौतम,संस्कृति संस्थान,ख्वाजा कुतुब वेद नगर,बरेली, 1975

शिव संहितायाः आलोचनात्मक अध्ययनम् ,

श्वेताश्वतरोपनिषद् सं० तुलसी राम शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्ज,दिल्ली,1976

षट्चक्र निरूपण

सर्वदर्शन संग्रह सं० के० साम्बशिव,त्रिवेन्द्रम्,1938

सांख्य दर्शन

साहित्य दर्पण लक्ष्मी टीका सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़,वाराणसी,

सारस्वत कुण्डलिनी योग डा० जितेन्द्र भारती,लखनऊ

सांख्य तत्व कौमुदी ईश्वर कृष्ण चौखम्बा संस्कृत सीरीज ,वाराणसी

सिद्ध सिद्धान्त संग्रह

सिद्धान्त कौमुदी, बालमनोरमा सहित, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 1980

सुवर्ण तन्त्र हस्त

सूरसागर मथुरा संस्करण

हठयोग प्रदीपिका स्वात्माराम ला०श्यामलाल हीरालाल,श्यामकाशी प्रेस मथुरा

हितोपदेश चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

यो०द०	योग दर्शन
यो०प्र०	योग प्रदीपिका
लि०पु०	लिंग पुराण
वा०प०	वाक्यपदीय
वा०पु०	वायु पुराण
वै०द०	वैशेषिक दर्शन
वै०भू०सा०	वैयाकरणभूषणसार
श०ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शि०सं०	शिव संहिता
सां०द०	सांख्य दर्शन
सां०त०कौ०	सांख्यतत्त्व कौमुदी
सि०सि०सं०	सिद्ध सिद्धान्त संग्रह
सि०कौ०	सिद्धान्त कौमुदी
सु०सं०	सुश्रुत संहिता

प्राक्कथन

गुरु गोरक्षनाथ भारत के धार्मिक, दार्शनिक एवं तान्त्रिक जगत् में जहाँ मूर्धन्य रहे हैं, वहीं पर सामाजिक जीवन में भी उनका प्रभाव आज कई शताब्दियों के पश्चात् भी परिलक्षित होता है । उत्तरी भारत के जनजीवन विशेषरूप से हिमाचल के मन्दिरों में देवपूजा पद्धति गोरक्षनाथ द्वारा चलाई गई थी, ऐसा प्रतीत होता है । पूजा में मुद्रागान, ध्वज, धूज चिमटे आदि के चिह्न एवं देवमन्दिरों में धातुज पात्रों की भेंट तथा मन्दिरों में उनका चिपका देना, ये ऐसे चिह्न हैं जो नाथ सम्प्रदाय के प्रतीकवाद का पूर्ण रूपेण स्मरण करवा देते हैं ।

भारतीय संस्कृति की मन्दाकिनी आदियुग से लेकर वर्तमान युग तक अबाधगति से बह रही है । जब कभी इसकी धारा में अवरोध या बाधा उपस्थित होती है, तब कृष्ण जी की वाणी चरितार्थ होकर उसे दूर कर देती है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

जब कभी भारतीय संस्कृति खतरे में पड़ी, तभी कोई मनीषी उत्पन्न हुआ । इसी परम्परा में शंकराचार्य के पश्चात् भारत भूमि पर एक महान् विभूति अमर काय वज्रदेह श्री गोरक्षनाथ जी उत्पन्न हुए । उन्होंने अपने जीवन में साधना करके भारत वासियों का ही नहीं अपितु भावी कलियुगी त्रस्त मानव को कई प्रकार के रत्न खोज कर दिए हैं । तभी तो उन्हें संसार की सर्वोत्तम गुरु की पदवी मिली । "सर्वत्र विजयं कांक्षेत्, न कांक्षेत् पुत्र शिष्ययोः" के सिद्धान्तानुसार गोरखनाथ जी विश्व प्राणी का उद्धार चाहते थे । वे किसी से अपनी विद्या को नहीं छिपाना चाहते थे । वे जहाँ

शावर वेद के ज्ञाता थे और संचालक थे,वहाँ उनकी पहुँच योग,आसन,प्राणायाम,मुद्रा,
नादानुसन्धान,रस सिद्धान्त,आयुर्वेद,अगद तन्त्र,धर्म,संस्कृति,तन्त्रशास्त्र आदि में भी शेष
अवतार पतंजलि की भाँति पूर्ण रूपेण देखने को मिलती है ,तभी तो मैं कह सकता हूँ कि -

योगेन चित्तस्य जपेन वाचा मलं शरीरस्य चवैद्यकेन,

गोरखनाथं योऽपाकरोत् सः प्रवरं मुनीनांऽअंजलिरानतोऽस्मि ।।

इन समस्त रत्नविधाओं का रत्नागार "गोरक्षसंहिता है । यह अमूल्य ग्रन्थ संस्कृत में
निबद्ध है और दुर्भाग्यवश पूर्ण रूप से अभी तक प्राप्त नहीं होता । इसके जो तीन प्रकरण
जो मिले हैं उन पर उपयोगिता के आधार से हिन्दी में कोई भी विश्लेषण नहीं हुआ है,जबकि
व्याधि प्रधान वर्तमान के प्राणी को इसकी परं उपयोगिता है । इस आवश्यकता को दृष्टि
-गत रखते हुए इस ग्रन्थ का सांगोपांग विवेचन आवश्यक था । इसीलिए मैने अपने शोध-
प्रबन्ध का शीर्षक "गोरक्षसंहिता :एक समालोचनात्मक अध्ययन" रखा । इसमें मैंने ग्रन्थकार
के उद्देश्यों को सर्वसाधारण तक पहुँचानें का प्रयास किया है ।

शोध प्रबन्ध को छः अध्यायों में बाँटा गया है । प्रथम अध्याय
में स्थितिकाल,जीवनवृत्त का परिचय देते हुए गोरक्ष द्वारा प्रणीत संस्कृत तथा इतर भाषाओं
के ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । द्वितीय अध्याय में ग्रन्थ में प्रतिपादित योग
स्वरूप,सिद्धान्त,अधिकारी,गुरु,योग में देशकाल का महत्त्व आदि विषय, आसनादि,
षट्कर्म,मुद्रा तथा समाधि का वर्णन किया है । तृतीय अध्याय में रस,रसावस्था,रससाधन,

रसपातन,रसप्रयोग एवं उसकी सिद्धियों पर विचार प्रकट किए हैं । चतुर्थ अध्याय गोरक्ष-संहिता के तुलनात्मक परिशीलन में गोरक्षसंहिता के साथ पातंजल योग,हठयोग,सांख्य दर्शन बौद्ध दर्शन,अद्वैत वेदान्त,आयुर्वेद तथा अद्वैताद्वैत विलक्षणवाद का विवेचन करते हुए समन्वय स्थापित किया गया है । पंचम अध्याय में दार्शनिक एवं धार्मिक पक्षों को लेते हुए दोनों पक्षों का विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है । दार्शनिक पक्ष में शिव,शक्ति,ईश्वर,कार्य-कारणवादएवं शुद्ध विद्या के सिद्धान्तो के विवेचन के पश्चात् माया,कला,राग,काल, नियति,जीव,प्रकृति,बन्ध तथा मोक्ष विषयों को लिया गया है । इसी प्रकार धार्मिक पक्ष में वैष्णव,शैव,शाक्त,बौद्ध धर्मों के विश्लेषण के पश्चात् प्रतीकोपासना,प्रतीकाप्ति,प्रतीकों का अध्यात्मिकस्वरूपादि विषय प्रस्तुत किए गए हैं । षष्ठ अध्याय में परम्परानुसार उपसंहृति प्रस्तुत की गई है। इसमें गोरक्षसंहिता के भारतीय धर्म और दर्शन पर प्रभाव, योगदान तथा समन्वयात्मिका परिणति को रखा गया है ।

मैं अपने शोध प्रबन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि "गोरक्ष-संहिता यावत् गौ पद वाच्य अर्थों की रक्षा करने वाली है तथा वर्तमान युग के सर्वतः संत्रस्त मानव की रक्षा इसी ग्रन्थ के अनुशीलन से हो सकती है । यदि सरकार के सहयोग से रस तथा योग प्रकरण का अन्वेषण किया जाए तो वह दिन दूर नहीं जब भारत पुनः सोने की चिड़िया कहलाएगा । वह विश्व के लिए संदेश दे सकेगा कि -

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निः न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

जब भारतीयों का निर्दिष्ट चरित्र पुनरावर्तित हो जाएगा तो वह मनु की वाणी में पुनः कह सकेगा –

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
>
> स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः ।।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे जिन महानुभावों की पूर्ण प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त हुई है उनमें सर्व प्रथम स्थान पंजाब विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के सुविख्यात विद्वान् डा० धनराज शर्मा का है । आपके निर्देशन में मैंने अपना शोध कार्य पूर्ण किया है । आपने मुझे इस शोध कार्य में निर्देशन ही नहीं दिया अपितु मुझे समस्त प्रकार की सहायता एवं सुविधाएँ प्रदान की । डा० महोदय का मैं अपने हृदय से आभार प्रकट करता हूँ । आपके अतिरिक्त दर्शन केसरी तथा सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं पंजाब विश्वविद्यालय के अग्रगण्य एवं मूर्धन्य डा० राममूर्ति शर्मा के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । आपके आशीर्वाद एवं प्रेरणा से मुझे अपने शोधकार्य में पूर्ण सहयोग मिला । पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० रमाकान्त शर्मा एवं प्रा० जोशी जी के प्रति मैं अपने हृदय से आभार प्रकट करना चाहूँगा क्योंकि इनके सत्परामर्शों से तथा कार्यालयीय सुव्यवस्था के फलस्वरूप मुझे अत्यन्त सहयोग मिला ।

डा० मानसिंह वेदाचार्य हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के सहयोग एवं परामर्श के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ । वेद शास्त्र के परम प्राचार्य प्रेमसिंह रा०म०विद्यालय सुन्दर नगर का भी मैं आभार प्रदर्शन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके सत्परामर्श एवं सुविधाओं का मैंने पूर्ण लाभ प्राप्त किया है ।

हिमाचल प्रदेश के सुप्रसिद्ध संस्कृत समाजसेवी एवं भारत के राष्ट्र-

पति द्वारा पुरस्कृत विद्वान् गुरु प्रवर प्राचार्य दिवाकर दत्त जी की सत्प्रेरणाओं का फल ही यह कार्य कहा जा सकता है । अतः मैं विनम्र हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । संस्कृत जगत् के लिए नई विभूति डा० सुधाकर शर्मा के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ है । इनका भी मैं हृदय से आभारी हूँ । पूज्य पिता श्री गोविन्दराम शर्मा ब्रह्म लीन एवं माता जानकी देवी का भी मैं धन्यवादी हूँ जिनके शुभाशीर्वाद से मेरा यह शोधकार्य पूर्ण हुआ है ।

डा० सतीशकुमारशर्मा "आंगिरस" साहित्यवेदाचार्य का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने अनेक प्रकार के कष्टों को सहते हुए अपने निवास कोटखाई में मेरे शोध प्रबन्ध के शोधन एवं प्रतिलिपिकरण में अपना सहयोग दिया है और इसे पुस्तक का रूप दिया है । उन पूर्ववर्ती तथा वर्तमान विद्वानों के प्रति आभार प्रदर्शन करना मेरा पूर्ण कर्तव्य बन जाता है जिनके ग्रन्थों एवं लेखों से प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रणयन में मुझे सहयोग प्राप्त हुआ । श्री मती सत्या शर्मा दर्शनाचार्य का मैं विशेष धन्यवादी हूँ जिनके दृष्टादृष्ट सहयोग से मुझे अपने शोध कार्य को पूर्ण करने में सफलता मिली । अन्त में आर्तजनत्राणक वज्रदेह गुरु गोरक्षनाथ जी के चरणों में नतमस्तक होकर शोध प्रबन्ध को अर्पण करता हूँ ।

गोरक्षं नौमितं देवं योगमार्ग प्रदर्शकम् ।
यत्कृपालवमात्रेण योगसिद्धि प्रजायते ।।
तेषां कृपाकटाक्षेण योगमार्गे प्रवर्तितः ।
आचार्यगोकुलचन्द्रोऽसौ कृतकृत्यो ह्ययजायत ।।

----o----

स्थितिकाल :-

भारतवर्ष के महापुरुषों की यह स्वच्छ परम्परा रही है कि वे अपने बारे में कुछ नहीं लिखते,बल्कि इसकी अपेक्षा विषय के बारे में अधिक स्पष्ट और सन्तुलित प्रकाश डालते हैं । इससे भारतीयों की निरहंकारता का स्पष्ट पता चलता है, जो विद्या का भूषण माना गया है,दूषण नहीं । क्योंकि "विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्"(1) कि युक्ति यही कहती है कि विद्या से विनय मिलती है और विनय से पात्रता आती है । पात्रता का अर्थ है कार्य के अनुरूप ही फल मिलना या कारण के अनुरूप ही कार्य पैदा होना इसलिए अध्ययनानन्तर जब भारत का शिष्य स्नातक बनकर गुरुकुल से स्वकुल को प्रत्यावर्तित होता था, तो गुरु उसे इसी पात्रता का अन्तिम उपदेश देता था । जैसे " बेटा अपने माता-पिता की सेवा करना,, अपने गुरुओं की सेवा करना, अतिथि को सर्वदेवमय मानना,(2) नित्य प्रति अपने वेद और धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना आदि । इसी से तुम अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त कर सकोगे । जीवन चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए मिला(3) है,सांसारिक विषय भोगों का भोगने के लिए नहीं । क्योंकि हम मानव हैं । मानव का तात्पर्य है -

---

1. हितोपदेश, मित्रलाभः-श्लोक -6

2. तै०उ० ।। अनुवाक् , मातृदेवो भव । पितृदेवोभव । आचार्य देवोभव । अतिथि देवोभव ।

3. सा०द०, प्र० परिच्छेद , धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।।

" सोच समझकर काम करना" । सोच-समझकर[4] कौन सा काम किया जाता है ! जिससे "इस जीवन में अभ्युदय[5] और शरीरत्याग के बाद मोक्ष मिल सके । " एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा[6] इस न्याय से अथवा आम के आम गुठली के दाम या "आम्राश्च सिक्ता पितरश्च प्रीणिता:" न्याय से जहाँ दोनों वर्तमान और भविष्यत् जन्म लाभान्वित हो वही काम किया जाता है । क्योंकि सब अपना मनोवाञ्छित काम करना ही चाहते हैं । स्व अनुकूल जिस विषय का ज्ञान हो, वही सुख कहलाता है[7] । सुख को ही सब चाहते हैं ।

भारतीय मनीषियों का मन्तव्य विषय का ज्ञान करवाना ही अभीष्ट होता था, न कि प्रसिद्धि । इसी कारण वे अपने स्थिति कालादि के बारे में कुछ भी संकेत नहीं देते थे । दूसरे मानव का चरम लक्ष्य मोक्ष है । ~~मोक्ष है~~ । मोक्ष तब तक नहीं मिल सकता, जब तक निष्काम कर्म न किया जाए । जगत को छोड़ना ही मोक्ष है । नामरूप[8] का अभिधान ही जगत है । अत: उसका छोड़ना तभी हो सकता है । जब वे अपनी कृतियों के साथ अपना नाम न लगाए, कृतित्व न दिखाए । अगर वे महापुरुष अपना कृतित्व अपनी कृतियों में दिखलाते तो उनका नाम लेकर और उनका समय बतलाते हुए वे मोक्ष की कल्पना नहीं कर

---

4. निरुक्त अ0 1, पा0 6 मत्वा कर्माणि सीव्यति ।

5. वैशेषिक सूत्र, अ0 1-2 यतोऽभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि: स: धर्म: ।

6. महाभाष्य प्र0 अ0, पृष्ट 84

7. तर्कसंग्रह, शब्दखण्ड, स्वानुकूल वेदनीयं सुखम् ।

8. शा0ब्रा0 1.1 नामरूपात्मकं हि जगत् ।

सकते थे ।

अत: गुरुगोरक्षनाथ भी महापुरुषों के अग्रणी माने जाते हैं । उनकी कृतियों में भी भारतीय परम्परा का पूर्ण पालन किया गया है । जिस कारण इनके जीवन काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । पाश्चात्य विद्वानों की यह परम्परा रही है कि वे अपने स्थिति काल के बारे में पहले लिखेंगे कार्य बाद में करेंगें । डा० जनार्दन पाण्डेय[9] के विचारों के अनुसार, उनका इतिहास केवल दो हजार वर्षों का है जबकि हमारा अनादि इतिहास है । जिसमें काल की गणना में कौन फंसेगा । इसलिए नाथ सम्प्रदाय की रीढ़ की हड्डी के समान महान आचार्य गुरु गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है । केवल अनुमान से उनका काल निर्धारण किया गया है । 991 इस्वी में अभिनवगुप्त ने क्रम स्तोत्र का निर्माण किया था[10] । वहाँ गोरक्षनाथ का स्मरण किया गया है । इससे हम यह कह सकते हैं कि इनका स्थिति काल इससे पूर्व कभी भी हो सकता है । इसी प्रकार नेपाल के एक शिलालेख में "अवलोकितेश्वर का वर्णन आया है । 3620 कलियुग बीत जाने पर,[11] नेपाल में श्री मान् अवलोकितेश्वर का दर्शन किया गया । इससे प्रतीत होता है कि 520 ईस्वी में कदली देश में मोहित मच्छेन्द्रनाथ को गोरक्षनाथ ने बोध करवाकर छुड़ाया था ।

---

9. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह , निवेदने "ञ"

10. हजारी प्रसाद द्विवेदी ,पृ० 97

11. गोरक्षसंहिता, काशी संस्करण का उपोद्धात "ग"

और वहाँ से मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल आए । तब उनको सर्वप्रथम लोगों ने देखा। जिस कारण उनका नाम अब लोकितेश्वर पड़ गया । इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ जिन्हें अवलोकितेश्वर नाम से भी पुकारा जाता है, छठी शताब्दी के आरम्भ में इस दिखाए गए शिलालेख के आधार पर सिद्ध होते हैं । उनके शिष्य गोरक्षनाथ का समय भी इसके समसामयिक या बाद का हो सकता है । डा० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय के अनुसार [12] "गोरक्षनाथ से सम्बन्धित जो कथाएँ मिलती हैं, उनमें से गूगा चौहान, राजा रसालू, पूरण भगत आदि से सम्बन्धितत है । जिनका उपयोग विद्वानों ने गुरुगोरक्षनाथ के काल निर्णय में किया है । गूगा का समय 12 वीं शताब्दी के पूर्व बताया गया है । राजा रसालू का समय 8वीं शताब्दी माना गया है । ब्रीग्स ने [13] भर्तृहरि, गोपीचन्द्र, भोज, रानी पिंगला आदि की कथाओं के आधार पर, गोरक्षनाथ का समय 11 वीं शताब्दी माना है । राजपूताने के मेवाड़ बाप्पा से सम्बन्धित गोरक्ष का समय 8वीं शती से 12 वीं शती तक के बीच में माना है। अधिक सम्भावना 11 वीं शताब्दी के प्रारम्भ की है । उनका प्रारम्भ ब्रीग्स ने ग्यारहवीं शती से स्वीकार किया है । साथ ही उन्हें बंगाल के पूर्वभाग से आया हुआ माना है । किन्तु एक दूसरे विद्वान् डा० मोहन सिंह ने सम्भावना व्यक्त की है कि वे ईसा की 14 वीं शताब्दी में विद्यमान् थे । [14]

---

12. गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज़ ब्रिग्स ,पृष्ठ

13. वही ,पृष्ठ 230

14. डा० नगेन्द्रनाथ , गोरक्षनाथ ,पृष्ठ 99

ये पंजाब निवासी थे ।

नेपाल के राजनीतिक और धार्मिक इतिहास से उपलब्ध तथ्यों, शैवधर्म और और नाथयोगी सम्प्रदाय के विकास के इतिहास से उपलब्ध तथ्यों, तथा विभिन्न सम्प्रदायों की परम्पराओं के आधार पर प्रो० सिल्वां लेवी, डा० शहीदुल्ला जैसे विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि नाथ योगी सम्प्रदाय के संस्थापक ,सातवीं शताब्दी में अवश्य विद्यमान थे ।[15] वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के आधार पर लोग गोरक्षनाथ को छठी शताब्दी का मानते हैं , हिमाचल के लोकसाहित्य की महासुई बोली में "भर्तृहरि नाम का एक संगीत चलता है । जिसमें भर्तृहरि राजा को गुरुगोरक्षनाथ का चेला माना गया है ।

एक साम्प्रदायिक परम्परा जेसस ग्राइस्ट को भी गोरक्षनाथ का शिष्य स्वीकारती है । उनका कहना है कि क्राइस्ट ने हिमालय में जाकर नाथयोगी से योगशिक्षा ग्रहण की थी। दूसरी नाथ परम्परा में गोरक्षनाथ को सृष्टि से पूर्व विद्यमान बतलाया गया है । उनका प्रवाद है कि जब विष्णु सृष्टि न कर सके तो वे पाताल में गोरक्षनाथ जी के पास पहुंचे और उनसे सृष्टि निर्माण में सहायता की याचना की । गोरक्षनाथ ने विष्णु को एक मुट्ठी विभूति दी, जिसे जल पर छिड़कने का आदेश दिया । विष्णु वैसा करके सृष्टि निर्माण में समर्थ हुआ । तब विष्णु ब्रह्मा और शिव उनके शिष्य बन गए ।[16] इसी प्रकार गोरक्षनाथ को

15· डा० नगेन्द्रनाथ , गोरक्षनाथ, पृष्ट ११

16· गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज् - ब्रीग्स ,पृष्ट 228

0 गुरुगोरखनाथे दिती ली मुदरा, भैरतरी हरि तू वणी ला चेला ।

एक परम्परा के अनुसार बाबा फरीद से भी सम्पर्क बतलाते हैं । फरीद ने 1244 में गिरनार की यात्रा की थी। उनका गिरनार में एक स्मारक भी है [17] । डा० कल्याणी मल्लिक ने शताब्दी के अनुसार सामग्री का विभाजन करके यह निश्चय करने का प्रयत्न किया है कि गोरक्षनाथ का समय 12 वीं शती के पहले कभी भी माना जा सकता है । पैग साम-जान-ज्वैन के अनुसार शंकर दिग्विजय के परवर्ती काल में मगध राज्य में,श्री हर्ष के ज्येष्ठ पुत्र के राज्यत्व काल में बंग देश में माणिकचन्द्र के पिता राज्य करते थे । शंकर का जन्म काल 788 ईस्वी है। गोरक्ष नाथ ने नाथ सम्प्रदाय के दर्शन के साथ-साथ उपनिषद् दर्शन का भी सामञ्जस्य किया है । अत: वे शंकराचार्य से बहुत परवर्ती नहीं माने जा सकते । उनका दूसरा प्रमाण यह है कि आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दुओं और मुसलमानों में जो संघर्ष हुआ था, जिसमें गोरक्षनाथ के शिष्य रसालू ने विशिष्ट स्थान ग्रहण किया था । रसालू और पूरण गोरक्ष के शिष्य थे [18] । अत: गोरक्ष का समय आठवीं शताब्दी माना जा सकता है । यद्यपि निश्चित प्रमाण इसमें भी नहीं दिया गया है केवल पारस्परिक तुलना और अनुमानों के आधार पर ही यह निश्चय किया गया है । इतना निश्चित है कि गोरक्षनाथ शंकराचार्य के बाद और रामानुजाचार्य से पूर्व कहीं पर भी अपनी सत्ता रख सकते हैं [19] ।

---

17. गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज् ब्रिग्स पृ

18. डा० कल्याणी मलिक ,नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधना प्रणाली,

19. गोरखनाथ, डा० नगेन्द्रनाथ 97

पाश्चात्य परिपाटी का अनुसरण करते हुए नाथ सम्प्रदाय के महान् आचार्य गोरक्षनाथ के जन्म का निर्धारण अनेकों विद्वानों के अनुमानों ,अटकलों एवं लोकगाथाओं के प्रवादों के आधार पर कोई भी शताब्दी रख दिया जाए, उसमें मुझे न तो सन्तोष है न कोई द्वेष । क्योंकि इन ऐतिहासिक तथ्यों से न तो किसी का व्यक्तित्व अधिक हो सकता है न कम । किसी भी समय कोई महान् व्यक्ति पैदा हो सकता है और नीचातिनीचतम भी। गुरु गोरक्षनाथ के समय में अनेक प्रकार के प्रमाण और कथाएं मिल जाती हैं । जिससे कोई निश्चय कर पाना कठिन हो जाता है । अत: या तो हमे जैनियों के स्याद्वाद को लेकर सभी को प्रमाणिक मानना होगा अथवा नाथ पन्थ के सिद्धान्तों पर पूर्ण विश्वास करके गोरक्षनाथ को अमरकाय और सर्वज्ञान तथा भाषाविद् मानकर इदमित्थं से विराम कर लेना होगा[20] । अपनी भारतीय परम्परा को सुरक्षित रखना होगा । तब चाहे,पौराणिक युग का,चाहे, अथर्व-वेद युग का माने या वर्तमान पूर्व प्रदर्शित शताब्दियों का, उनकी मान्यता पर उससे कोई असर नहीं पड़ता । उनकी भाषाशैली तथा लेखों से यहीप्रतीत होता है कि डिंगल के प्रादुर्भाव के साथ ही उनका भी जन्म हुआ है । या पंचम शती के अन्त में और छटी शताब्दी के आरम्भ में पैदा हुआ,[21] रसायन के बल से काया

20· गीता, 16·24 तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ ।

21· अतीतकलिवर्षेषु शून्यदन्दरसाग्निषु ।

नेपाले जयति श्री मानार्यावलोकितेश्वरः ।।

को अमर बनाकर, डिंगल के प्रादुर्भाव तक या आजतक भी कोई योगिराज घूम सकते हैं ।
लोकगाथाओं में गोरक्षनाथ को कलियुगी सिद्ध कहा गया है । योग ग्रन्थों में भी योगियों
की आयु उनके हाथ में दर्शायी गई है । जबतक वे चाहें जी सकते हैं । पुण्यकर्मों को निष्काम
भाव से करते हुए लोक संग्रह हेतु विचरते रहते हैं । तभी योगीराज कृष्ण गीता में अर्जुन को
यह कहते सुने गए हैं कि "मैं अगर कार्य न करूँ तो मेरा अनुसरण लोग करेंगे और मैं संसार को
नाश करने वाला माना जाऊँगा[22] । इसलिए गोरक्ष कई शताब्दियों से सम्बन्धित हो सकता है
जैसा कि गोरक्ष-संहिता के भूति प्रकरण में प्रतिपादित किया गया है कि तारकमणि के योग
से बनी पारे की गोली को मुँहमें रखने से मानव वज्रदेह बन जाता है और ज्ञानयोग से समन्वित
नवयुवक जराव्याधि से रहित शिव के समान अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं[23] । अतः इस उलझन भरी
समस्या का समाधान यही है कि उनके शास्त्रानुकूल उन्हें अमरकाय मान लिया जाए और जो
उन्हें जिस समय का भी सिद्ध करना चाहे, उसी समय का सिद्ध कर ले ।

---

22. गीता 3.24 — उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहम् ।
संकरस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजा ।

23. वेधयेत् सर्वतत्त्वानि हेमतारकरो भवेत् ।
तदामृतसरोद्भूतां गुटिकां धारयेन्मुखे ।।
जरारुजा विनिर्मुक्तो ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ।
वज्रदेहस्तु बलवान् योगराज समन्वितः । 7.144-145

जीवनवृत्त :-

नाथ सम्प्रदाय भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसके बीज अथर्व-वेद, भागवत-पुराण, शिवपुराण, लिंग-पुराण आदि में उपलब्ध होते हैं। इसीलिए नाथ शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए, राजगुह्य का उद्धरण देते हुए "गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह में "ना" शब्द का अर्थ अनादि बतलाया है और "थ" का अर्थ तीनों भुवनों की स्थापना कहा गया है[1]। "नाथ" वह तत्व है जो भुवन त्रय में व्याप्त है और अनादि स्वरूप है। शक्तिसंगम तत्व के अनुसार "ना" का तात्पर्य उस पर-बोधक ब्रह्म तत्व से है। यह मोक्ष देने में निपुण माना गया है। "थ" का तात्पर्य है अज्ञान के साम्राज्य को समाप्त करने वाला[2]। इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों के अनुसार नाथ परमतत्व और मोक्षदायक माना गया है। यही नहीं बल्कि नाथ को तो शिव और शक्ति दोनों तत्वों से ऊपर माना गया है। शक्ति अगर संसार का सृजन करती है तो शिव उसका पालन करता है। काल उसका संहार करता है और गुरु मुक्ति देता है[3]। इस प्रकार नाथ एक सबसे ऊपर की स्थिति वाला तत्व माना गया है। जिसके तीन रूप माने गए हैं - देवता स्वरूप-अद्वैतपरिवर्ती नाथ, ध्येय साकार नाथ।

---

1. गो०सि०स० पृष्ट ।।, नाकारो नादिरूपं थकार स्थाप्यते सदा ।
   भुवनत्रयमेवैकं श्री गोरक्ष नमस्तु ते ।।

2. शक्तिसंगम तन्त्र पृष्ट ।। श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथब्रह्मानुबोधनात् ।
   स्थगिताज्ञान विभवात् श्री नाथ इति गीयते ।।

3. गो०सि०सं० पृ० 49 शक्त्या सृज्यते विश्वं शिवेन परिपाल्यते ।
   कालेन संह्रियते मुक्तिनाथेन दीयते ।।

जिसको आदि गुरु भी कहा जाता है ।[4] अद्वैत परिवर्ती नाथ दो प्रकार की सृष्टि का उत्पादन करते हैं । नादरूप सृष्टि और बिन्दुरूप सृष्टि । इन्ही दो का विकार समस्त दृश्य जगत् है । शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि नामरूपात्मकं जगत" नाद ही नाम है और बिन्दु ही रूप है । इन का संयोग ही जगत् अर्थात् गतिशील पिण्ड ब्रह्माण्ड बन जाता है । जगत् में ऐसी पदवी पाने वाले कर्मठ और जीवनमुक्त, लोककल्याण-सागर करुणावतार यद्यपि अनेकों हुए हैं । जिनके बारे में ग्रन्थों में चौरासी सिद्धों की बात आती है तथा उनकी सूचियाँ भी मिलती हैं । जैसे हठयोग प्रदीपिका की सूची, वर्णरत्नाकर की सूची, साक्यविहार की सूची, जिनमें सिद्ध और नाथों के बारे में विद्वानों का मतभेद भी पाया जाता है परन्तु डा० द्विवेदी ने इन्हें नाथ सिद्धों की सूची माना है । महा महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के कथनानुसार भी कई लोग इन्हें नाथ पन्थ के सिद्धों की सूची मानते हैं । उनका विचार है कि "अवधूत-नाथ सिद्धाः अनर्थान्तरः ।

इन सब सूचियों में गोरक्षनाथ का नाम किसी न किसी रूप में अवश्य लिया गया है । वर्णरत्नाकर सिद्ध सूची में दूसरे स्थान पर तथा साक्य विहार सूची में

---

4. गो०सि०सं० पृष्ट 5। अस्मिन्मार्गे अद्वैतपरिवर्ती नाथो देवताप्राप्य निराकारो ज्योतिर्नाथो ध्येयः साकारनाथ उपास्योऽथ च गुरुः ।

नवें स्थान पर गोरक्षनाथ का नाम लिया गया है । हठयोग प्रदीपिका में महायोगियों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, शावरानन्द, भैरव और चौरंगी मीन के बाद गोरक्ष का ही नाम स्मरण किया गया है । इसके इलावा तन्त्र ग्रन्थों में भी गोरक्ष नाम से इन्हें स्मरण किया गया है पर वर्णमाला रत्नाकर में गोरक्षनाथ के नाम से इन्हें स्मरण किया गया है जबकि महार्णव तन्त्र, यौगि-सम्प्रदाया-विष्कृति, सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति अमरौघ प्रबोध तथा योग मार्तण्ड ग्रन्थों में "गोरक्षनाथ" नाम से पुकारा गया है । साक्य विहार की सूची में "गोरक्षपा" संज्ञा दी गई है । इन रूपान्तरों का कारण देशकाल तथा प्रतिपाद्य विषय हो सकता है, क्योंकि भाषा विज्ञान के आधार पर वागयन्त्र में परिणाम देशकाल के अनुसार आता है । तभी तो कबीरदास ने भी कहा है " घाट-घाट में पानी बदले चार कोस में बाणी "[5] । अस्तु कुछ भी हो गोरक्षनाथ एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व रहा है । उनके प्रभाव से कोई सम्प्रदाय नहीं बचा । चाहे शैवतन्त्र हो, या शाक्ततन्त्र हो या बौद्धतन्त्र । क्योंकि सभी ने इनका नाम स्मरण किया है । गोरक्ष के गुरु-रूप में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम लिया जाता है । जिनका स्थितिकाल दशम शताब्दी का अन्तिम दशक स्वीकार किया गया है[6] ।

---

5. कबीर दोहावली,

6. डा० नगेन्द्रनाथ , गोरक्षनाथ पृष्ट 89

क्योंकि तबतक वे पूर्णरूपेण विख्यात हो चुके थे । जालन्धर पादराजा देवपाल" 809-849" के समकालीन थे । इस प्रकार ये सिद्ध लोग 9वीं या 10वीं शताब्दी के माने गए हैं । हालांकि काया सिद्ध वाले नाथों का कोई समय नहीं होता तभी तो वर्तमान के अनेकों विद्वान गोरक्ष को भर्तृहरि का समकालीन स्वीकार करते हैं । कुछ का कहना है कि गुरुगोरक्षनाथ चारों युगों में अवतरित हुए हैं ।

इतना अधिक उल्लेख मिलने पर भी गुरुगोरक्षनाथ का प्रमाणिक जीवन अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है । इनके जन्म स्थान के बारे में भी अनेक मत हैं । जैसे नेपाल,पंजाब,गोरखपुर,हिंगलाज आदि-आदि । एक कथा नेपाल के जनपदों में प्रसिद्ध है कि पुत्रकांक्षिणी एक नारी को शिव ने विभूति दी । नारी ने अविश्वासकर उसे गोबर के ढेर पर फैंक दिया । बारह वर्ष के बाद पुनः गोरक्षनाथ का आविष्कार महादेव के आगमन पर हुआ । बाद में मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्यत्व स्वीकार किया और उनके साथ तीर्थ-यात्रा करते रहे । एक समय वे हिंगलाज पर बैठे थे तभी नीलकण्ठ की यात्रा से वापिस आते मार्ग में उन्हें नाथपन्थानुयायी मिले,[8] जिन्होंने नेपाली राजा महीन्द्रदेव के अत्याचारों की सूचना उन्हें दी ।

---

7. डा० नगेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ पृष्ट 89

8. डा० चमनलाल गौतम, गुरुगोरखनाथ चरित्र ,पृष्ट 133

उन्होंने कहा महाराज राजा महेन्द्र देव ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है और वह हमें भी वही धर्म मनवाने के लिए हमेशा साम,दाम,दण्ड,भेदादि नीतियों से प्रताडित कर रहे हैं । अतः आपसे अनुरोध है कि आप हमारी सहायता के लिए नेपाल चलें और उस अत्याचारी से हमें बचाएं। आप जैसे सामर्थ्यवान् योगी ही हमारी रक्षा कर सकते हैं ।

नेपालियों की ऐसी दुखभरी पीड़ा को सुनकर वे नेपाल की ओर चल दिए । वहाँ ललितपाटन नामक ग्राम के समीप भोगवती के तट पर बैठ गए । नेपालियों से कहा कि मैं यहाँ पर तप करने बैठ गया हूँ और जबतक मैं यहाँ रहूँगा तब तक नेपाल राज्य में वर्षा नहीं होगी । आप निश्चिन्त रहिएगा कि मैं बिना कारण अपने आसन को नहीं छोडूँगा ।

नाथानुयायी नेपाली अपने-अपने घरों को चले गए और दो वर्षों तक नेपाल में वर्षा न हुई । तब राजा को प्रजा तंग करने लगी कि महाराज कोई उपाय ढूँढो जिससे वर्षा हो । सारी प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी । राजा का खजाना भी खाली हो गया । तब राजा ने लामा ज्योतिषियों को बुलाकर मन्त्रियों सहित विचार किया । ज्योतिषियों ने कहा-"महाराज आपके राज्य में कोई योगी बाधा डाल रहा है, उसे मनाओं तो वर्षा हो जाएगी । राजा ने सारे राज्य में अपने गुप्तचर भेज दिए । उन्हें भोगवती के तटपर गोरखनाथ जी तपस्या करते मिल गए । उनका एक शिष्य उनकी सेवा कर रहा था । दोनों से पूछने पर वे कुछ नहीं बोले । तब वे गुप्तचर राजा के पास आये और बोले-"महाराज पाटलि शिष्य से सेवित नाथ पन्थ के अग्रणी आचार्य गुरु गोरखनाथ जी व्योमदेह मत्स्येन्द्रनाथ

के शिष्य हैं । वे भागमती के तट पर तपस्या कर रहे हैं । वे बोलते कुछ नहीं ,हां । नेपाली नाथपन्थियों का कथन है किराजा ने जो अत्याचार हम पर करने आरम्भ कर रखे हैं ।उनका प्रतिकार है यह । राजा भय विह्वल हो गया और उसने मन्त्रियों को बुला कर इस विपत्ति को दूर करने का आग्रह किया । उन्होंने नाथपन्थियों पर अत्याचार बन्द करने की घोषणा की । उन्होने इस अवसर पर मत्स्येन्द्रनाथ की सुन्दर झांकी निकाली और नाथ पन्थ की जयघोष करते हुए भागमती के तट पर पहुंचे तभी गोरक्षनाथ ने गुरु की झांकी आते देखकर अपने आसन को छोड़ दिया । उसी समय मेघा उमड़े तथा नेपाल में वर्षा हो गई । इस विषय का श्लोक मृगस्थली में आज भी उत्कीर्ण मिलता है कि "यह वह मृगस्थली है जो नेपाल राज्य के मस्तक की तरह शोभित है । जहां पर श्री गोरक्षनाथ जी ने मेघमाला को अपना आसन बना दिया था " । राजा ने गुरु के चरण पकड़े और प्रतिज्ञा कि मैं अब अपने राज्य में कभी भी नाथपन्थियों को दुःखी नही करुंगा । ना ही धर्म परिवर्तन के लिए कहूंगा । गोरक्षनाथ जी ने राजा को क्षमाकर दिया ।

एक कथानक के अनुसार गोरक्षनाथ बंगाल प्रदेश में अयोनिज उत्पन्न हुए । क्योंकि मत्स्येन्द्रनाथ ने शिव से पार्वती को सुनाई जा रही कथा का पान किया । वे सिद्ध अमर योगी बन गए । उन्होंने सूर्य को प्रसन्न किया तथा उनसे वरदान

---

१. गो० सं०   मृगस्थली स्थली पुण्या भालं नेपाल मण्डले ।
यत्र गोरक्षनाथेन मेघमाला हुतासनो कृता ।। डा० जनार्दन पाण्डेय

प्राप्त कर लिया कि तुम मेरे जिस भी मन्त्र को बनाकर बोलोगे,वही सिद्ध हो जाएगा इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ ने लोक में शाबर वेद का प्रचार और प्रसार किया ।

एक समय यह महान योगी तीर्थयात्रा करते हुए बंगाल पहुंचे । वहाँ चन्द्रगिरि नामक ग्राम[10] में सर्वोपध्याल नामक ब्राह्मण रहता था । वह बड़ा सदाचारी और ईश्वरभक्त था । लौकिक मोक्ष का एक स्वरूप यह भी है कि अपनी वंश परम्परा का विच्छेद हो जाए वही मोक्ष कहलाता है । क्योंकि "पुत्रो ह वै आत्मनामासि" के अनुसार पुत्र आत्मा का द्वितीय संस्करण होता है । इस ब्राह्मण के कर्म मुक्ति के योग्य ही थे ।

उसकी पत्नी का नाम सरस्वती था ।वह साध्वी सुशीला पतिपरायणा थी । स्नेह का केन्द्र सन्तान न होने से वे अत्यन्त दुखी थे । इस पर भी वे यथा सामर्थ्य लोगों की सेवा परोपकार में हमेशा लगे रहते थे ।

एक दिन सौभाग्यसे मत्स्येन्द्रनाथ उनके द्वार पर पहुंचे । जब उन्होंने अलख जगाई जिसकी ध्वनि सुनकर सरस्वती भिक्षा देने द्वार पर आई ,वहाँ अत्यद्भुत तेजस्वी योगी को देखा । भिक्षा देकर सरस्वती ने बड़ी याचना भरी दृष्टि से योगी को देखा । योगी ने माता से पूछा -"माई क्या दुःख है आपको, जो आप इस प्रकार याचना भरी दृष्टि से मुझसे कुछ मांगना चाहती हो । सरस्वती ने कहा -"महाराज सब कुछ कुशल है । किन्तु घर सूना है,अपुत्र की गति नहीं होती,इससे हमें भी नरक में जाना पड़ेगा

10.डा०चमनलाल, श्री गोरखनाथ चरित्र पृ० 5

11

क्योंकि पुम् नाम नरक का है । उससे जो भी त्राण करे उसे ही पुत्र कहा गया है । क्योंकि योगी अपने प्राण, बल से ब्रह्मरन्ध्र से निकाल कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । भोगी गृहस्थी लोग वैसा करने में असमर्थ हैं । अत: उनका और्ध्वदैहिक कर्म पुत्र द्वारा कपाल क्रिया से आरम्भ इसलिए करवाया जाता है कि पुत्र, तेरे को पैदा करने के कारण, वह अपने प्राण इस द्वार से नहीं निकाल सके । अत: तुम इनके और्ध्व दैहिक कर्म करो, जिससे अन्य जन्म में तेरे माता-पिता योगी बनकर, अपने प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकालकर, मुक्त हो सके । तो योगी आप मुझे तेजस्वी लगे, अत: मेरी आत्मा ने आपसे याचना करने हेतु प्रेरणा दी ।

सरस्वती के ऐसे करुणा भरे वचनों को सुनकर लोक-कल्याणी मत्स्येन्द्र-नाथ ने अपनी झोली से विभूति निकाली और अभिमन्त्रित करके माता को दे दी और कहा इसे सायं जल से पी लेना।आपका मनोरथ पूर्ण होगा । आपके घर पुत्र की उत्पत्ति होगी और मैं 12 वर्षों के बाद स्वयं आकर उसे दीक्षा दूंगा । इतना कहकर योगी चले गए ।सरस्वती ने विभूति को सुरक्षित रख दिया । दिन को पड़ौस की कुछ स्त्रियाँ एकत्र हो गई । उनसे भी सरस्वती ने अपने मनोरथ पूर्ण करने वाली विभूति के बारे में बतलाया । तो सारी स्त्रियाँ कहने लगी बहन इन जोगियों के बहकावे में नहीं आना चाहिए ।अगर वे इतने सिद्ध होते तो दर-दर माँगते न फिरते । ये आपको पागल भी कर सकते हैं । होगा वही जो भाग्य में

---

11. निरुक्त ,अध्याय -3

लिखा है । जोगी भाग्य बदलने वाले कोई नहीं हैं, क्योंकि भाग्यं फलति सर्वत्र न वैराग्यं न च पौरुषंम्" ।

सरस्वती भी दुर्भाग्यवश उनके बहकावे में आ गई और उसने उस भस्म को गोबर के ढेर पर गांव से बाहर फेंक दिया । बारह वर्ष बीत जाने पर एक दिन अचानक अलख की ध्वनि आई । सरस्वती द्वार पर भिक्षा लेकर पहुँची ।उसने देखा कि सूर्यसदृश तेजस्वी जो विभूति देकर गया था बाहर खड़ा है । सरस्वती ने भिक्षा देने के लिए अपना हाथ बढ़ाया । जोगी बोला-" अपना पुत्र नहीं दिखाओगी । क्या अधिक मोह हो गया है ।" सरस्वती कांपने लगी । जोगी फिर बोले,"क्या मेरी विभूति व्यर्थ चली गई या उत्पत्ति के बाद मरण हुआ । बोलो माँ क्या बात है । काँपती क्यों हो । तभी सरस्वती ने पूरी कहानी बिना किसी भेद भाव के सुना दी । जोगी बोले,"बताओ आपने कहाँ विभूति फेंकी । मेरी विभूति व्यर्थ नहीं जा सकती । अवश्य ही उससे किसी बालक की उत्पत्ति हो गई होगी । सरस्वती ने कहा अभी तक हमने कोई ऐसी बात नहीं सुनी । हाँ आप तो देवराज हैं, तो चलिए"जोगी ने गोबर के गड्ढे पर पहुँचने पर आवाज दी ।" हे हरि नारायण ! हे सूर्यपुत्र!यदि उत्पन्न हो गये हो, तो गड्ढे से बाहर आ जाओ, विलम्ब न करो " ।[12]

पहले कोई उत्तर नहीं मिला । तीसरी बार गड्ढे से

---

12 •डा० चमनलाल, गोरखनाथ चरित्र, पृ० 10

आवाज आई कि मैं उत्पन्न हो चुका हूँ । मैं गोबर के नीचे पड़ा हूँ । गोबर हटाने पर एक बारह वर्ष का दिव्य बालक उठा । उसने मत्स्येन्द्र नाथ जी के चरणों पर साष्टांग प्रणाम किया और गुरु ने भी मस्तिष्क पर हाथ फेरा और आशिर्वाद दिया । पुत्र तुम सूर्य के अंशावतार हो । तुम महायशस्वी बनोगे । तुम्हारी उत्पत्ति गोबर के ढेर से हुई है । अतः तुम्हारा नाम गोरक्षनाथ उचित होगा ।सरस्वती बालक को देखकर कहने लगी की भाग्य ही सर्वत्र फलता है ।[13] वैसे तो हाथ में आई हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है । मुझ दुर्भाग्या को देखो कि ऐसे बालक से हाथ धो बैठी । तब मत्स्येन्द्रनाथ ने सरस्वती को समझाया कि यह बालक सूर्य का अंशावतार है । इसे अब मैं साथ ले जाऊँगा । यह तुम्हें नही मिल सकता । यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ के जन्म स्थल और उत्पत्ति के विषय में कुछ निश्चित रूप से कह पाना कठिन है तथापि लोकप्रवादों और जनश्रुतियों के आधार पर उन्हें कोई बंगाल का,कोई नेपाल का,कोई पश्चिम गिरिनार का,कोई पश्चिमि हिमालय का तो कोई पंजाब का स्वीकार करते हैं ।क्योंकि पके हुए फल सब खाना चाहते हैं । महान् पुरुष को सभी अपना बनाना चाहते हैं । वैसा करने से उनका मान बढ़ता है । दूसरे रहस्यवादी समस्या हमेशा व्यापक बनी रहती है । वह ऋत् तत्व की तरह अणु होती हुई गैस की तरह सर्वत्र व्याप्त हो जाती है ।

"योगी सम्प्रदायाविष्कृति" में उन्हें गोदावरी के तीर पर उत्पन्न बताया गया है ।[14] "गोरक्षसहस्रनामस्तोत्र" में दक्षिण के बडव देश का स्वीकार किया गया है ।[15]

---

13. पंच तन्त्र, मित्र प्राप्ति ।3। ,न हि भवति यन्न भाव्यं,भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति ।।

14. यो० सं० आ०, पृष्ट 33

15. अस्ति याम्यां दिशि कश्चिद्देशः बडवसंज्ञकः । तत्राजनि महाबुद्धिर्महामन्त्र प्रसादतः ।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस श्लोक का इशारा योगविभूति के सिद्धान्त की ओर ही बतलाया है।[16] उनका कहना है कि "श्लोक में बड़व शायद गोदावरी तीर के प्रदेश का वाचक ही हो सकता है। ब्रिग्स ने एक परम्परा का उल्लेख किया है जिसे ग्रियर्सन ने भी स्वीकार किया है। जिसमें कहा गया है कि गोरक्षनाथ सतयुग में पंजाब के पेशावर में, त्रेता में गोरखपुर में द्वापर मैंदारिका के आगे हुरमुर में, कलियुग में काठियावाड़ की गोरखमढ़ी में प्रादुर्भूत हुए। नेपाली परम्परा के अनुसार वे पंजाब से नेपाल आए थे। गोरखपुर के महन्त के अनुसार वे पंजाब के झेलम टिला से गोरखपुर आए थे। नासिक के योगी भी उन्हें नेपाल से पंजाब और पंजाब से नासिक आया मानते हैं। टीला का प्राधान्य मानकर ब्रिग्स ने इन्हें पंजाब का ही माना है। ग्रियर्सन ने अनुमान लगाया है कि गोरक्षनाथ सम्भवतः पश्चिमि हिमालय के रहने वाले थे। जिस मत के पक्ष में कुछ एक लौकिक मत भी पश्चिमि हिमालय में देखे गए हैं। जैसे कि अपने पिता श्री गोविन्द राम जी के द्वारा बचपन में लेखक को एक कालीदीवीको सिखलाई गई थी जिसमें गोरक्षनाथ को हिमालयाज का, या ज्वालामुखी का द्योतित किया गया है। जैसे

"देवगुरु-देवगुरु है नामा, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा।
चर दुर्गे सिंह वाहिनि नामा, दुर्गे माता भयपुरचण्डी ।।
चौदह भुवन फिरे नव खण्डी, मीन मेखला हारा कीन्हा।
अष्ट नौ दुर्गे बली में दीना, दुर्गे देवी असल सहारा ।।
सिंहमारदा नो किया संहारा, पाण्डो सिमरो भैरभीरात।
सरु आपार हथे कम्बीरा, भीमसेन्त हनुमन्त गए पैताले।

---

16. नाथ सम्प्रदाय, पृ० 85

मारी लंका सहज कर डाले ,अरविन्द जब रावण मारे ।

आवे सहेली गावें गीता ,चण्डी प्रसादे रामदल जीता ।।

ताम्बुल चण्डी सारे पाते,सप्तरूप से पृथ्वी तारी,अष्ट रूप से पृथ्वी तारी,

ताता लोहा छुवे लोहारा, मैं ना जाणू मर मत जाण्या मारा ।

पूर्व देश से आई चण्डी, कने कुण्डल हथे त्रिशूला,पग्गे नेवर बाँए चूड़ा ।

जो चण्डी का सुमिरन करे । नांगा भूखा कभी ना मरे ।

जो देवी सूरजा पुत्री नमस्कार । सदा सौं धरले भवन । पर घाटे सिमरी गोरखनाथ ।

गोरख सिमरी घाटे प्रसिद्ध । जावो रे गुरु दूसरे हाथे । किस मारे किस डंक बजावे ।

डाकिनि-शाकिनी जय-जय करावे । घट-घट गोरख फिरे तोंपि । वज्र का कोट लोहे की खाई ।

चौकी काली की आई । दर्व जोगी मया जोगी सर्वजोगी धनेश्वरी ।

वेताली डाकिनि काली कालरात्रि भयंकरी । भूताराहुणी देवी शुद्ध केशी विरूपिणि ।

तृप्तालिका हिंगलाजा परमेश्वरी । अष्ट षष्ट जुगनार्थी विलंपत्री रख दुर्गे शरणागता ।

एक आकू डंकिणि की ली,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12, बारह वाहन खिले ।

जटी मटी कोल कनैतण सूदणी,सन्यारी,लुहारी,तरखाणी,धोबी छिंबी जात बगानी जात ।

न्होंदें धोन्दे कैद करे ,टूणा करे ,टामण करे ,छुकू करे चुक करे मेरी,भक्ति ,मेरे गुरु मत्स्येन्द्र

की शक्ति ,फुरे मन्त्र महादेव तेरी वाचा फुरे ।

इस चौकी से इस प्रदेश के डाउ या मन्त्र करने वाले समस्त लोगों

के दुःखों का निवारण करते हैं । चाहे किसी को भूत लगा हो ,या डाकिनि या छल-छिद्र ।

इससे बने सम्भालु या भेखल की डाली से झाड़पोंछ करने से सब कुछ दूर हो जाता है। यह तो इसका प्रादेशिक महत्व रहा। इसका ऐतिहासिक महत्व यह है कि इसमें गोरखनाथ को पगड़ी, चोटी रखे तथा एक घाट पर तपस्या करते हुए दिखलाया गया है। जहाँ पर वे महाकाली की तपस्या कर रहे हैं। जबकि उन्हें विचलित करने के लिए डाकिनि शाकिनी नाच रही है। गोरखनाथ उन समस्त घाटों में बिना किसी त्रास के घूम रहे हैं। उनके गुरु का दिया हुआ योग रूपी वज्र समान कवच है। प्राणायाम रूपी लौहसार अर्थात् धातुसार भोजन है। जिसके कारण न तो उन्हें भय होता है और ना ही बुभुक्षा पिपासा ही बाधित करती है। आगे जोगी को काली के आशिर्वाद से दिव्य बतलाया गया है। हिंगलाज पर्वत पर रहने वाली काली को जोगियों का धन बतलाया गया है। जिसके बल से वे कालरात्रि रूपी डाकिनि को भी पछाड़ने में समर्थ हो जाते हैं। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की शक्ति उनके साथ है। उनको उस पर पूर्ण भक्ति है वे गुरु काली से भी बलवान् हैं : क्योंकि निर्माता, पालिता और संहर्त्ता से उपर जो शक्ति है वे ही गुरु के रूप में हमें मिलती है।[17] उन गुरु के उपर यदि ध्यान इतना केन्द्रित हो जाए तो परात्पर गुरु एवं परं गुरु भी उस शिष्य की खर्च होने वाली शक्ति को पूर्ण करते हैं। तो यह न्याय कि -"सब जगह विजय चाहे किन्तु पुत्र और शिष्य से पराजय चाहे" पूर्ण रूपेण घटित होता है।[18]

---

17. योग विज्ञान प्र०खं० पृष्ट 15 गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरु साक्षात्परं ब्रह्म, तस्मैः श्री गुरवे नमः।

कबीर वाणी, गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागूँ पाय। बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय।

मन्त्र महार्णव 1.48 पत्र-2 अभिनेत्रः शिवः साक्षाद्चतुर्बाहुरच्युतः। अचतुर्ब्रह्मा श्री गुरुःकथितःप्रिये॥

18. व्यवहारभानु, पृ० 50, सर्वत्र विजयं कांक्षेत् न कांक्षेत् पुत्रशिष्ययोः।

हिमाचल प्रदेश की पुराणी टांकरी लिपि या गिलगिति वैशारदी में शाबर वेद के अनेकों मन्त्र अभी बहुत से ब्राह्मणों की परम्परा में चल रहे हैं । उन्हें यह विश्वास दिया गया है कि अगर तुम इन्हें प्रकाशित करोगे या किसी को बतलाओगे तो इन मन्त्रों का प्रभाव समाप्त हो जाएगा । जिससे वे लोग इन्हें नहीं बतलाते और वे उनके साथ समाप्त होते जा रहे हैं । नाथ सम्प्रदाय का यहाँ के पश्चिम भाग में अधिक प्रचार रहा है और कनफटे साधुओं का, लाटावाली ज्वाला माई में अब भी सिद्ध पीठ बना हुआ है । यहाँपर यह गाथा प्रसिद्ध है कि गुरु गोरक्षनाथ ज्वाला जी के निमन्त्रण पर वहाँ ठहर गए । जब माता उन्हें भोजन देने का आग्रह करने लगी तो गुरु जी ने भोजन लेने से मना कर दिया । क्यों कि ज्वाला जी को बकरे तथा अभक्ष्य वस्तुओं का उपहार दिया जाता था । गुरु ने कहा, "माता आप इन वस्तुओं को स्वीकार करती हैं जो उचित नहीं है । आप माता हो आपको कुमाता नहीं बनना चाहिए[15] । कुपुत्र हो सकते हैं कुमाता कहीं नहीं होती । गोद में लिए हुए शिशु माता की छाती में लात मारते हैं । तो क्या माँ उस अपराध से उन्हें फेंक देती है । आपके इस विपरीत व्यवहार के कारण मैं आपका आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकता "[16] । माता ने कहा," मैं इन वस्तुओं का सेवन नहीं करती । लोग मुझे जो भेंट श्रद्धा से दें । यहाँ के लोग अन्य सात्विक वस्तुओं को छोड़कर इन्हीं वस्तुओं का उपहार मुझे देते हैं । वैसे जो अज की बलि देने का विधान

15• शंकराचार्य क्षमापराध स्तोत्र श्लो० 3, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

16•सूरसागर , छाती पे शिशु करे जो घाता, ताते हेत उत्तारे न माता ।

किया गया है वह बकरा नहीं, अपितु पाँच वर्ष पुराना न उगने योग्य जौ है । लोगों की ना समझी से ऐसा हो रहा है । गोरक्षनाथ लोगों को समझाने के लिए उपाय खोजने लगे और माता से बोले कि मैं भिक्षा ले के अन्न ले आता हूँ, तुम चुल्हा जला के रखो । माता ने चुल्हा जलाया और समीप बैठ गई । गोरक्षनाथ पूर्व के गाँवों की ओर निकल पड़ें । वहाँ देवी के दिए वचन के अनुसार एक ग्राम में अपना भिक्षापात्र रख दिया और लोगों से कहा जब यह पात्र भरेगा तभी इसे उठाया जाएगा ।[17] हजारों मन अनाज श्रद्धालु लोगों ने उसमें डाला किन्तु कमण्डलू न भरा । अब जोगी चमत्कारी बन गया और सभी उन्हें आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे । गोरक्ष ने अपने पात्र को अधूरा ही उठाया और पश्चिम के गाँव में चले गए । वहाँ पात्र न रखकर, एक झोपड़ी बनाई और लोगों को कहा कि जो भी आप लोगों को दान देना हो इसमें डाल दिया करो । थोड़े दिनों में वह झोपडी भर गई । तब समस्त दीन हीन जनों से कहा गया कि जिसे अन्न की आवश्यकता हो वे यहाँ से ले जा सकते हैं । जब लोग ले जाने लगे तो झोंपड़ी खाली नहीं होती थी । हजारों आदमी उससे जितना अन्न ले जाते थे उसमें उतना ही भर जाता था । बाद में गोरक्षनाथ ने एक खिचड़ी की पतीली बनाई और उससे हजारों लोगों को भोज करवाया । लोग वह यौगिक चमत्कार देखकर गोरक्षनाथ के अनुयायी बन गए उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई । तब वे लोगों से बोले कि योग में कितनी शक्ति है । इन चमत्कारों का मतलब यह नहीं कि आप योग को अपना ही लें ।

---

17. डा० चमन लाल गौतम श्री गोरखनाथ चरित्र, पृ० 110

मुझे ज्वाला जी ने निमन्त्रण दिया है ,परन्तु आप उन्हें अभक्ष्य वस्तु उपहृत करते हैं । मैं तभी वहाँ भोजन करूँगा अगर आप उन्हें सात्विक भोज्य पदार्थ चढ़ावें । तब भक्तजन बोले," महाराज ब्राह्मण लोग तथा देवी के पुजारी लोग माँस मदिरा का भोग लगाने को कहते हैं । तभी हम ऐसा करते हैं । तब गोरक्षनाथ जी ने भक्तजनों से निवेदन किया कि आप इन जिह्वा लोलुप ब्राह्मणों और पुजारियों के कथन पर मत चलो क्यों कि इन्हें अपनी स्वादों का ख्याल है ।पशुबली हिंसा है ।उससे कभीभी देवी प्रसन्न नहीं होती । देवी तो कहती है कि शास्त्र विधि से मेरी अर्चना करो उसी से मैं प्रसन्न होती हूँ ।[18] शास्त्रों में हिंसा का निषेध तथा पत्र पुष्प फल जल आदि का विधान पूजा में किया गया है ।[19] माँस और मदिरा का नहीं । जो माँस और मदिरा तान्त्रिक ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं । उनका तात्पर्य कूट से कुछ और ही है । योग तथा साधना गुरुगम्य मार्ग ही रहे । अगर कोई इन्हें स्वयं विद्वान् बनकर जानना चाहे तो उनका पतन हो जाए । इसलिए उन कूट शब्दों का प्रयोग शास्त्रों में किया गया है । नहीं तो अनधिकारी के पास यह विद्या पहुँच जाएगी और वे उसका दुरुपयोग करेंगे । हंस गायत्री मन्त्र से स को मुझे समर्पित करो अर्थात् अपनत्व समाप्त कर दो ,मद्य का अर्थ वहाँ तालू से लगने वाला, सन्ध्याकालीन वह अमृत है । इसे योगी खेचरी मुद्रा से पानकर वज्र देह प्राप्त कर सकता है । अतः इस काया रूपी देवी की पूजा,उनको करने के लिए ही इनकी सिद्धि होगी ।

---

18. सा०त०को० पृष्ट 23 विधिवाक्य माँ हिंस्यात् सर्व भूतानि ।

19 गीता , पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद् मे भक्त्या प्रयच्छति ।

अतः भले लोगो अभिष्य वस्तु का परित्याग तुम नहीं करोगे तो मैं देवी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करूंगा । देवी चुल्हा जलाकर बैठी रहेगी और आप कोप के भागी होंगे । सभी लोगों ने गुरु के कहने से बलि बन्द कर दी ।

कुछ लोगों का कथन है कि तभी से ज्वाला जी गुरु गोरखनाथ को रसोई बनाने की प्रतिक्षा में बैठी है और गोरखनाथ तब भोजन के लिए आएंगेजब सारे लोग ज्वाला जी मे बलिदान करना बन्द कर देंगे ।

कुछ अन्यों का कथन है कि गोरखनाथ जी ने लोगों के बलि देना छोड़ देने पर ज्वाला जी का निमन्त्रण स्वीकार किया और वे ज्वाला जी में रहने लगे । उनका प्रभाव देखकर अनेकों लोगों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और उनमें से अर्जुन नाम का एक अन्तरंग शिष्य हमेशा उनकी सेवा में रहने लगा तथा गुरु की सेवा करने लगा । गुरु जी को आभास होना स्वाभाविक था कि कलयुग में ज्वाला को मांस मदिरा चढ़ाकर अपमानित किया जाएगा और मैं हमेशा नहीं रह सकता । जोगी वह होता है जो दर-दर जोग जगावे एक जगह न रहे । सब लोगों से योग करे । संयोग करे[21] । इसलिए माता को बास रखने के लिए उन्होंने अपने यौगिक चमत्कार दिखलाए, कुछ दिन वहीं रहे । एक दिन अपने प्रिय शिष्य को खिचड़ी बनानेकोलगा दिया और कहा मैं जब तक वापिस आऊं तब तक इसकी रक्षा करना । वे चले गए । हट के नहीं लौटे । अधिक समय बीत जाने पर शिष्य

---

20 सि०को० युजिर्योगे ।

21. क० गौ० अप्राप्तस्य प्राप्तिः संयोगः ।

ने डिबिया की रक्षा छोड़ दी और वह गुरु की देखभाल में ज्वाला माई के पहाड़ पर चढ़ गया । दशों दिशाओं में गुरु का ध्यान कर नजर दौड़ाने लगा । गुरु की आज्ञा भंग की गई थी । शाप मिला अर्जुन पाषाण बन जाओ । यही कारण है कि गुरु गोरखनाथ के शिष्यों का वर्णन नाथ साहित्य में पर्याप्त रूप में मिलता है । अर्जुन नाथ न बन सका । किन्तु पत्थर बन गया । आज भी ज्वाला जी में इस गुरु दर्शनाभिलाषी अर्जुननाथ के पाषाणनाथ के रूप में दर्शन किए जा सकते हैं । गोरख डिब्बिया ज्वाला जी की लटा के पूर्व की ओर आज भी खौल रही है और नाथ पन्थियों को गुरु के सात्विक मार्ग का उपदेश दे रही है ।

गोरख डिब्बिया खिचड़ी बनाती है । यह भोजन अनेकों अनाजों में मिश्रित भाव होता है । नाथ सम्प्रदाय भी अनेकों धर्मों के संमिश्रण की खिचड़ी ही है। शैव शाक्त गाणपत, वैष्णव आदि सम्प्रदायों की खिचड़ी नाथ सम्प्रदाय में पक रही है वहाँ बौद्धों के महायान जैनों के अहिंसावाद तथा कौलों की पुट भी मिलती है । जिससे गोरखनाथ की खिचड़ी यद्यपि अभी तक भी सब लोगों के सिरे नहीं चढ़ी, यही है गोरख डिब्बिया का रहस्य ।

द्वितीयोऽध्याय :- ग्रन्थानुरूप विवरणात्मक परिशीलन

गोरक्षसंहिता में प्रतिपादित योग का स्वरूप

युजिर् योगे धातु से और युज् समाधौ धातु से घञ् प्रत्यय होकर योग शब्द बनता है[1]। जिससे इसका अर्थ जोड़ना हो जाता है या बाह्य विषयों को अपने मन से हटा कर, एक विषय में समाहित करना हो जाता है। तभी तो पतञ्जलि ने योग का लक्षण करते हुए लिखा था कि चितवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं[2]। चित्त की वृत्तियां मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध रूप से पांच प्रकार की मानी गई है। इनमें आरम्भ की तीन अवस्थाएं योग के लिए अनुपयुक्त मानी गई है। अन्तिम दो अवस्थाओं का ही महत्त्व योग में स्वीकार किया गया है।

यह योग हिरण्यगर्भ से आरम्भ होकर पतंजलि को प्राप्त हुआ। पतंजलि ने योग के 115 सूत्र बनाकर, उन्हें विषयानुसार, समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद के नाम से विभक्त कर दिया था। यह ग्रन्थ योग के समस्त अंगों का विवेचन करता है। यद्यपि इसके अतिरिक्त भी अनेकों योग प्रतिपादक ग्रन्थ हो सकते हैं। जिनका प्रभाव गोरक्षनाथ के ऊपर पड़ा होगा परन्तु वर्तमान में सर्वांग परिपूर्ण ग्रन्थ अगर मिलता है तो वह योग दर्शन ही है। इसी ग्रन्थ का सहारा लेकर गोरक्षनाथ ने अपने ग्रन्थों में हठ योग का पूर्ण विवेचन किया है। महर्षि पतंजलि प्रतिपादित योग विद्या के दो भाग हैं। बहिरंग योगविद्या

---

1. सि०कौ०

2. यो०द० 1.2 योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

और अंतरंग योग विद्या । उन्होंने बहिरंग के पाँच अंग स्वीकार किए हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार। धारणा ध्यान और समाधि ये तीन योग के अंतरंग विभाग माने गए है । किन्तु निर्बीज समाधि में ये तीनों बहिरंग ही हो जाते हैं । पतंजलि ने जिन्हें बहिरंग कहा है वे ही हठ योग कहलाता है ।

असमाहित चित वाला सांसारिक मानव राजयोग को शीघ्रता से प्राप्त करने में असमर्थ है । राजयोग की प्राप्ति असमाहित प्राणी के लिए हठयोग के द्वारा ही हो सकती है । जैसे ऊँचे-ऊँचे प्रासाद पर चढ़ने के लिए, अधिरोहिणी कि आवश्यकता होती है । वैसे ही उच्च विद्या प्राप्त करने के लिए तथा राजयोग प्राप्त करने के लिए हठयोग की आवश्यकता होती है[3] । इस योग से प्राणी समाहित चित्त हो सकता है । इस योग के आदि प्रवक्ता आदिनाथ हुए हैं । उन्होंने असमाहित चित वाले प्राणियों को समाहित करने के लिए इस योग का उपदेश दिया था[4] । आदिनाथ ने मच्छेन्द्रनाथ को, मच्छेन्द्र से गोरक्षनाथ को, उनसे अनेकों नाथों को हठयोग की शिक्षा मिली ।

बाद में इस शब्द को घृणित रूप में, इस मत के प्रतिपक्षियों ने वर्णित किया । इस शब्द का अर्थ बतलाकर दुराग्रह अनुचित व्यवहार आदि कर दिया

---

3. हठ यो० प्र० ।.। विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ।
4. तदेव ।.।। श्री आदिनाथ नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।

गया । जिससे जनता वास्तविक अर्थ को न जानकर इस मत से घृणा करके इसे त्याग दे तथा अपने रूढ़िगत सम्प्रदाय में ही चले रहे । तभी तो कोशकारों ने इसके अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि हठयोग -राजयोग से भिन्नता दिखाने के लिए इसका नाम हठयोग पड़ा, इसका अभ्यास भी कठिन है और इसके अनुपालनकी अनेक रीतियाँ हैं । जैसे एक पैर के बल खड़ा होना, हाथों को ऊपर किए रहना, सिर ऊपर करके धूम्रपान करना आदि[5] । वस्तुतः हठयोग का यह निर्दिष्ट अर्थ कभी नहीं रहा है । हठयोग तो वास्तविक रूप से स्वाभाविक क्रियाओं का विवेचक है। जैसे "ह" का अर्थ सूर्य स्वर है । "ठ" का अर्थ चन्द्र स्वर माना गया है । इन दोनों के योग को हठयोग कहा गया है[6]। इसी प्रकार प्राण और अपान का नाम ह और ठ है । उनके संयोग को ही हठ-योग कहा गया है । इस हठयोग से ही राजयोग की प्राप्ति होती है । राजयोग से ही काल की वन्चना अर्थात् आयु बढ़ाई जा सकती है । इससे अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है[7]। इसलिए हठयोग की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि "विषादप्यमृतं ग्राह्यं, बालादपि सुभाषितम्," इसमनु के कथन को प्रमाण मानना चाहिए । तभी तो अत्यन्त वृद्ध साँप के विषकोष्ठ में प्रकाश-

---

5. वामन सदाशिवराम आप्टे, कोश पृ0 1163

6. हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते । सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ।
सिद्ध सिद्धान्त पद्धति ।

7. ह०यो० प्र0 4.103 सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्यसिद्धये । राजयोग समारूढः पुरुषः कालवंचकः ।

युक्तमणि का प्रादुर्भाव हो जाया करता है । नागे साधु भी विष का सेवन इसी प्रक्रिया से अपने अन्दर अमृत पैदा करने के लिए किया करते हैं । उन्होंने गोरक्षनाथ के कथन को साक्षात् रूप में स्वीकार किया है। कि गोरक्ष द्वारा कथित योग, कालकूट की तरह लगता है। किन्तु जब इसे जान लिया जाता है, तब यह अमृत की तरह बन जाता है[8]। अतः योग को मानव जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य रूप से जानना होगा । वह योग -भक्तियोग, ज्ञानयोग कर्मयोग, हठयोग और राजयोग आदि रूप से अनेक प्रकार का माना जाता रहा है । कुछ भी हो, इन योगों से प्राप्तव्य अर्थ एक ही है । तभी तो योगशास्त्रकार ने सब चिन्ताओं के परित्याग के उपयोगी साधन को योग माना है[9]। इन साधनों से ही मानव अपने मानवता धर्म की रक्षा कर सकता है[10]।

जीव की दो कोटियाँ सनातनी मत के अनुसार मानी जाती है - कर्मयोनिगत जीव तथा भोगयोनिगत जीव । प्रथमयोनि में मानव ही आता है । दूसरी विधा के अन्तर्गत देवयोनि और दानवयोनि आती है। क्योंकि इन योनियों में गए, जीव आगे नहीं बढ़ सकते। किन्तु अपने कृत कर्मों का ही भोग करते हैं । अन्त में कर्मयोनि मानव जीवन

---

8. गो०सं०गू०प्र० 1.136 नाथगोरक्षसंप्रोक्तः सरसं कालकूटवत् ।
पूर्वं विज्ञायते सम्यक् अमृतवद् भवेत् ।।

9. योगशास्त्र; सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते ।

10. विदुर नीति, योगेन रक्षते धर्मो विद्या योगेन रक्षते ।

में पहुँचकर, ~~कर्णिका~~ के अपने उर्ध्वगमन और अधोगमन के योग्य कर्म करते हैं । कुछ भी हो योग में तीनों प्रकार की योनियों में, गए जीवों के उपकार की वार्ताएँ कही गई हैं । शंकर ने पार्वती से कहा था " हे परमेश्वरि ! योगविहीन ज्ञान मोक्षदायक नहीं हो सकता । हे प्रिये ! ज्ञानवान् संसार विरक्त धर्मज्ञ जितेन्द्रियहोने से ही मुक्ति नहीं मिलेगी।अपितु मोक्ष के लिए देवताओं को भी योग साधनकरना होगा [11] ।

अतः गोरक्ष द्वारा प्रतिपादित योग 36 तत्वों के ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति करने के लिए "गोरक्षसंहिता में कहा है,"योगियों का हितसाधन करने के लिए गोरक्षनाथ जी ने गोरक्षसंहिता को कहा है । इसका बोध होने पर,योगी को परम पद की प्राप्ति होती है [12] । जब योगाभ्यास के द्वारा मन विषय भोगों से दूर होकर परमात्मा में लग जाता है,तब योगी काल और मृत्यु को विजय करके जरामरणको भी वश में कर लेता है । यही कर्म मोक्ष की सीढ़ी है और काल की वंचना है [13] । संसार क्लेशमय है उसकी शान्ति के लिए योग का आश्रय लेना अत्यन्त आवश्यक है [14] । वास्तविक रूप से योग ही आत्म साक्षात्कार करवा सकता है । यही विद्या प्रत्यक्ष कारक कही गई है अन्य तो वाक् विजृम्भण है । मानव शरीर शक्ति का

11.योoविo प्रथम खण्ड पृo 3 ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ।।

12.गोoसंo पृo शo 3 गोरक्षसंहिता वक्ति योगिनां हितकाम्यया ।ध्रुवं यस्यावबोधेन जायते परमं पदम् ।

13 वही ।.4 एतद्विमुक्तिसोपानं तत्कालस्य वंचनं । यद्व्यावृतं मनोभोगादासक्तं परमात्मनि ।

14.वही ।.5 शमनं भवतापस्य योगं भजन्ति सत्तमाः ।

एक पुंज माना है। वह अनजाने, में उसको न होती जा रही है । शक्ति का निषेध करने के लिए, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक छः तत्वों को अभ्यास माना गया है[15]। इनके साथ जो यम और नियम नामक अष्टांग योग के दो तत्व हैं उन्हें छोड़ दिया गया है । इस संहिता में, योग के अत्यन्त विस्तार को संक्षेप में करके वर्णित किया गया है । तभी चौरासी लाख को चौरासी पीठों में सीमित करके, उनमें से भी दो ही आसनों को महत्त्व दिया गया है ।जिनका अभ्यास करके मानव मोक्षरूपी फल का भागी बन सकता है[16]। शरीर के प्रत्येक अंग का अपना महत्त्व होता है जिन्हें आयुर्वेद[17] में मर्मस्थल कहकर, उनकी रक्षा का आग्रह किया गया है । वे तेज भासक एवं उद्बोधक स्थल ही तो हैं । योगियों को जब तक इसका ज्ञान नहीं होगा तब तक वे अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच सकते हैं । वे स्थल हैं - मूलाधार, पादांगुष्ठ, गुह्याधार, वज्रगर्भ नाड़ी, उड्डीयान बन्ध, नाभिमण्डल, हृदयाधार, कण्ठाधार, कण्ठमूलाधार, जिह्वामूलाधार, जिह्वाधोमूलाधार, ऊर्ध्वदन्तामूलाधार, नासिकाधार, नासिकामूलाधार, भ्रूमध्याधार और नेत्राधार । ये सोलह आधार चिन्तन के स्रोत माने गए हैं[18]।

15· गो०सं० 1·6 आसनं प्राणं संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं समाधिरेतानि
योगानि वदन्ति षट् ।

16· वही, 1·9 आसनेभ्यो समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम् । एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम्।

17·वही ,1·10 द्वयेतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धसनं प्रोच्यते ।

18· वही, 1·12 षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपंचकम् ।
स्वदेहे यो न जानन्ति कथं सिद्धन्ति योगिनः ।

द्विलक्ष्य भी मोक्षसाधक है । बाह्य-लक्ष्य नासिकाग्र तथा भौहों का मध्य भाग तथा भीतरी लक्ष्य मूलाधार हृत्कमल आदि माने गए हैं ।

पाँच आकाश का भी विशेष महत्त्व माना गया है । क्यों कि पंचकोश विवेक से ही मोक्ष की सम्भावना की जाती है । पंचकोश में पंचाकाश माने गए हैं । 1•श्वेत-वर्ण ज्योतिरूप आकाश, 2• रक्तवर्ण ज्योतिरूप आकाश, 3•धूम्रवर्ण ज्योतिरूप आकाश और 4•नीलवर्ण ज्योतिरूप आकाश,5• और विद्युतवर्ण ज्योतिरूप आकाश । इनमें प्रथम के भीतर दूसरा, उसमें तीसरा,तीसरे में चौथा तथा चौथे में पाँचवाँ आकाश सूक्ष्मातिसूक्ष्म न्यायेन लीन होता जाता है । अतः आनन्द ही ब्रह्म है" ऐसा श्रुति का जो कथन है वह अन्नमय,प्राणमय मनोमय,विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों में,विभाजित साधना क्रम भी इस दर्शन में संगृहीत कर लिया गया है । तभी तो गोरक्षनाथ जी का कहना है कि एक स्तम्भ नौ द्वार और पाँच अधिदेवता वाले शरीर को जो नहीं जानते वे योगी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते[19] । इसलिए "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" जैसा पिण्ड में है वैसा ही ब्रह्माण्ड में है । यह सिद्धान्त गोरक्षनाथ जी दारा विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है । यह सिद्धान्त सम्भवतः शंकराचार्य जी के अद्वैतवाद का प्रत्युत्तर हो सकता है । क्योंकि बौद्धयान की विकृत तान्त्रिक साधना का, विरोध,शंकराचार्य ने भी किया था तो गोरक्षनाथ जी के मत की महत्ता कैसे हो सकती थी ? तब इस सरस तथा शरीर प्रधान साधना को महत्त्व देने के लिए और

19• गो०सं० 1•13, एकस्तम्भं नवद्वारं गृह पञ्चाधिदैवतम् ।

स्वदेहे ये जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः ।

शंकराचार्य के शुष्क ज्ञान के प्रति जो लोगों में अश्रद्धा जागृत हो रही थी, उसे अपने मत से दूर करने के लिए शरीर को प्रधान मान लिया गया । नहीं तो शंकराचार्य जी ने शरीर की सत्ता की सम्भावना से भी मना कर दिया था । वे कहा करते थे कि शरीर के सुख को महत्व देने वाले लोगों, यह कुछ नहीं है। क्योंकि " जो वस्तु जन्म से पहले भी नहीं थी और बाद में भी नहीं दिखती ,वह वर्तमान में दीखने मात्र से कैसे प्राप्त हो सकती है [20] । अतः शरीर प्रतिभासिक सत्ता है वास्तविकनहीं ।

जब कोई अपने मत की पुष्टि करना चाहता है, तो उसे अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से खण्डन करना पड़ता है। जिससे लोग उसी के मत को माने और उसी की विशेषता को मानने लगे । दूसरे गोरक्षनाथ जी ने पिण्ड की साधना का एक बिल्कुल छोटा सा रास्ता निकाला है। क्योंकि कलियुग का मानव अधिक से अधिक सौ वर्ष तक ही जी सकता है [21] । उन सौ वर्षों में उसका अध्ययन ही पूरा नहीं होता । जबकि विद्या अपना फल व्यवहार काल में देती है । विद्या का वास्तविक फल मुक्ति है [22] । वह तभी मिल सकती है, अगर हम इस छोटी सी जिन्दगी में, अपने पूर्व जन्मार्जित अनेकों कुसंस्कारों को, नष्ट करके अपनी बुद्धि को, उस आत्मा के प्रतिभास योग्य बना ले । वह तभी सम्भव है जब शरीरस्थ ज्योतिपुञ्जों का, ध्यानकर के, पादांगुष्ठ से लेकर आज्ञा चक्र तक के, तेजों

---

20 मा0का0 आदि अन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।

21• महाभाष्य । अ0 यः सर्वथा जिवति सः शतं जिवति ।

22• सा विद्या या विमुक्तये ।

को, अलातचक्र की तरह शरीर में घूमते देखें तथा पंचयोग में बतलाए हुए प्रकाशों को प्रथमतः एक एक करके, देखते हुए अन्त में समरसता स्थापित कर, इन्द्रधनुष की नाईं दर्शन दें । तभी पूर्व संचित दुष्कर्मों का आवरण बुद्धि पटल से नष्ट होगा और उसकी आत्मा को ग्रहण करने की शक्ति मानी जाएगी । गीता में इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के लिए अनेकों जन्मों की तपस्या को कारण माना है ।[23] तीन मास के अभ्यास से चल चक्र के दर्शन होने लगते हैं और अन्धकार में भी, साधक की आँखों से प्रकाश की किरण दीखती है । जिस प्रकार महापुरुषों के पीछे एक समरस प्रकाश को दिखाया जाता है, उसी प्रकार कालचक्र द्रष्टा के आगे भी प्रकाश समरसता स्वयं उससे दीखने लगती है ।

इस प्रकार की स्थिति बाह्य तथा अभ्यन्तर के योग साधनों के अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती है । जब तक पात्रता नहीं होगी तब तक योग समझ नहीं आएगा और ना ही पात्रता के विना वह फलीभूत हो सकता है । अतः आवश्यकता है यह विचारने की कि योग के अधिकारी किन्हें माना जाए ।

---

23. गीता 6.35 प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धि किल्विषः ।
अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परां गतिम् ।।

योग के अधिकारी

नीतिशास्त्र में विद्या को विनय का कारण माना है, विनय से पात्रता आती है । जब तक किसी वस्तु के रखने की पात्रता नहीं होगी, तब तक वह वस्तु बेकार हो जाएगी । इसी तरह योग विद्या को प्राप्त करने की पात्रता, अवश्य होनी चाहिए । वह क्या हो सकती है । शारीरिक शुद्धि, मानसिक शुद्धि, नीर क्षीर विवेकता और स्ववीर्य पर पूर्ण नियन्त्रण,[24] श्रद्धा, गुरु के प्रति भक्ति । मनुष्यों में जो प्राणिमात्र का भला चाहने वाला, मातृवत् पर स्त्रियों को समझने वाला, आलस्य रहित, स्वनियन्त्रिता ही योग की दीक्षा ले सकता है ।[25] काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर अतिभोजन, व्रत, उपवास, अतिनिद्रा, अतिजागरण ये सब योग के मार्ग में विघ्न हैं ।[26] इस साधन चतुष्टय सम्पन्न को" 1·नित्यानित्य वस्तु विवेकी, 2· फलभोगविरागी, 3·शमदमउपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धारूपी षट्सम्पत्तियुक्त, 4· मुमुक्षु" ही योग का वास्तविक अधिकारी माना गया है । तभी तो प्रशान्त चित्त वाले के लिए, जितेन्द्रिय के लिए, दोषरहित के लिए, गुरु आज्ञा के पालन के लिए और गुणों से युक्त भक्त के लिए ही विद्या के उपदेश की आज्ञा दी है । हठ योग प्रदीपिका में गुरु गोरखनाथ के कथन को उद्धृत किया गया है कि अग्निताप, स्त्रीसेवन, यात्रागमन योगाभ्यासी को सर्वथा छोड़ देने चाहिए । उत्साही, धैर्यशाली, तत्वजिज्ञासु ही इस योग विद्या का अधिकारी हो सकता है । जो युक्त आहार व्यवहार और युक्त चेष्टा वाले हों ।

24· भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं सम्वत्स्यथः । प्रश्नोपनिषद् 1·2

25· मेरुतन्त्र

26· लि०पु० अध्याय 9, वे०सा० पृ० 4

गुरु

संसार के प्रत्येक कार्य में अनुभवी व्यक्ति से मार्ग निर्देशन की आवश्यकता होती है । जो व्यक्ति जिस रास्ते पर चल चुका होता है, उसे उस मार्ग की कठिनाईयाँ, मोड़ों, उतार-चढ़ाव सबका ज्ञान होता है । योग मार्ग तो है ही खाण्डे की धारा । यहाँ थोड़ी सी भूल भी साधक को छिन्न-भिन्न कर सकती है । इसलिए योग मार्ग में तो गुरु की अत्यन्त अनिवार्यता मानी गई है । वह गुरु एक भी हो सकता है अनेक भी । अवधूत दत्तात्रय के चौबिस गुरु थे । जैसे पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सिन्धु पतंगा, मधुमक्खी, हाथी, भौंरा, हरिण, मछली, पिंगलावेश्या, कुररी, अर्भक, कुमारी, शरकृत, सर्प, मकड़ी और सुपेशकृत[1] । यहाँ पर गुरु का सीधा-सादा अर्थ है जिससे भी जीवनोपयोगी शिक्षा मिल जाए । इस प्रकार के व्यक्ति को गुरु मान लिया गया । दत्तदाता जो परवर्ती साधु समाज के गुरु माने जाते हैं , उन्हें भी गुरु की आवश्यकता पड़ी, तो अन्य लोगों की तो बात ही क्या !

आदिनाथ, मच्छिन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि योगियों के कुल के महाराष्ट्र में अनेकों सन्त हुए हैं । इनमें हिरोबानाथ एक थे। वे अपनी वाणी में गुरु से "भ्रमरीकीट न्याय द्वारा गुरु की आत्मा को ही अपने हृदय में आया मानते हैं[2] । वे

---

1. श्री मद्भागवत् एक ।।·8·32-34 सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपश्रिताः
यतो बुद्धिमुपादायमुक्तोऽटामीह तच्छृणु । पृथ्वीवायुराकाशमापोऽग्निचन्द्रमारविः ।
कपोताजगरः सिन्धुपतंगो मधुकृद्गजः । मधुहाहरिणो मीनः पिंगलाकुररोऽर्भकः । कुमारी शरकृत्सर्पऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ।

2. काका कालेलकर, जीवनयोग साधना, पृष्ट ११
मृणे सोहिरागुरुनाथ हा, माझ्या हृदयीहासून ।
जानासि उदराव्याकारणे, वचन सांगतो ठसून ।।

अपने को, अपने कथन का कारण न मानकर गुरु को ही कारण मानते हैं । यह नाथ सम्प्रदाय की परम्परा रही है, कि वे गुरु को भगवान् से भी ऊपर का दर्जा देते हैं । तभी तो कबीरदास जी ने कहा है :-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाये ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय ।।[3]

कार्यकारण भाव विवेचन करते हुए, न्याय ग्रन्थों में, कार्य से कारण को महान् बतलाया है । इसलिए कबीर की बात सत्य है । गोविन्द के साथ संयोग रूपी कार्य का, कारण गुरु ही है । तभी तो शुष्क वेदान्ती ज्ञानमार्गी शंकराचार्य जैसे विद्वान् भी गुरु की आवश्यकता मानते हुए कहते हैं "कि शान्त महान्त वसन्त की तरह लोक कल्याण में विचरने वाले सन्त संसार रूपी सागर से स्वयं पार लंघते हुए, लोगों को बिना कारण के ही तार देते है । ऐसे गुरु "कर्तुं, अकर्तुं अन्यथाकर्तुं" शक्ति सम्पन्न होते हैं"[4]। तभी तो उन्हें ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की त्रिपुटि माना गया है[5]। जब गुरु शिष्य की बुद्धि में नए ज्ञान की उत्पत्ति करता है, तब वह ब्रह्मा। जब शिष्य के अच्छे गुणों का रक्षण करता है, तब विष्णु। जब दुर्गुणों का संहार करता है तब महेश्वर रूप गुरु अवधूत रूप में या परब्रह्म रूप में ही हमारे सामने आते हैं ।

---

3. कबीरदास दोहावली,

4. जीवनयोग, पृ० 109 शान्ता महान्ता निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णा स्वयं भीमभवार्णवं जनान् अहेतुनान्यापि तारयन्तः ।।

5. यो०वि० पृ० 13 गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरो ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

अवधूत का वर्णन करते हुए कहा है - "जिसके प्रत्येक वचन में वेद रहते हैं, प्रत्येक कदम में समस्त तीर्थ निवास करते हैं। हर नजर में जहाँ मोक्ष रहता हो, वह अवधूत होता है"[6]। जिसके एक हाथ में त्याग रहता है और एक हाथ में भोग रहता है। जो त्याग और भोग दोनों से निर्लिप्त रहता है। वह अवधूत हमारा कल्याण करने वाला हो सकता है"[7]। वह प्रकृति के सारे विकारों को नष्ट कर देने के कारण ही शुद्धस्फटिकप्रभ अवधूत कहलाता है"[8]। यही अवधूत गुरु बनकर संसार के माया लिप्त प्राणी को परम पद के दर्शन करवा सकता है। जहाँ पर जाकर फिर उसका आगमन इस दुःख भरे संसार में नहीं हो सकता[9]।

इस प्रकार का जीवनपथप्रदर्शक कैसा हो, उस के गुण किस प्रकार के हो, जब हम इसके ऊपर विचार करते हैं। तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं "कि वह गुरु शमदमादि षट् सम्पत्तियुक्त होना चाहिए। ताकि वह सही दिशा शिष्यों को दिखा सके। ज्ञान की शलाका से जो शिष्य की आंखें खोल दे और स्वात्मरूप के साथ परब्रह्म के दर्शन भी करवा दें। ऐसे गुरु कलियुग में, लिंग पुराण के अनुसार हिमालय के सिद्धाश्रम में ही मिल सकते हैं। जो वेदान्त

---

6. गो०सि०सं० वचने वचने वेदास्तीर्थानि च पदे-पदे, दृष्टौ-दृष्टौ कैवल्यं सोऽवधूत श्रियोऽस्तु नः।

7. वही, एकहस्तेधृतस्त्यागो भोगश्चैककरे स्वयं श्रियोऽस्तु नः।
अलिप्तस्त्यागभोगाभ्यां सोऽवधूतः श्रियोऽस्तु नः॥

8. वही , यः सर्वान् प्रकृति विकारान् अवधूनोति इत्यवधूतः॥

9. गीता अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धामः परमो मम॥

युक्त हो ,विष्णु भक्त हो ,विमत्सर मन्त्रज्ञ, विश्वासी,गुरुभक्त,पुराणज्ञ आदि लक्षणों से युक्त हो,उन्हें गुरु संज्ञा दी जा सकती है । जो शास्त्रों के अर्थों का चयन करवाता है,[10] आचार की स्थापना करता है,अपने आप भी उस पर चलता है,उस आचार्य को ही, गुरु संज्ञा दी जा सकती है ।[11] गुरु शब्द का गूढार्थ है कि "गु" नाम अन्धकार को कहा जाता है और "रु" का तात्पर्य है उसे नष्ट करना[12]। इसलिए गुरु शिष्य की बुद्धि में,छाए अन्धकार को नष्ट कर उसे ज्ञानार्जन शलाका से उसे भर देते हैं । इसलिए इस संसार में,गुरु ही परब्रह्म है,परागति है, पराविद्या है,परम धन है, परम काम है । इसलिए उस गुरु को जो उस अन्तिम वस्तु का उपदेश देता है, उसे सबसे गुरुतर माना गया है[13]। यह गौरवता किसे प्राप्त हो सकती है, इस बात पर विचार करते हुए योगी याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति ग्रन्थ में,गुरु का लक्षण करते हुए लिखा है कि " जो व्यक्ति निषेकादि उपनयन पर्यन्त समस्त कर्मों से प्राणी का संस्कार करवा के, स्वयं उसे वेद पढ़ाए वही गुरु बन सकता है । जो केवल सावित्रि दान करके, ब्रह्मचारी को वेद पढ़ाना आरम्भ कर देता है वह आचार्य कहलाता है[14]। पाणिनि व्याकरण के उणादि सूत्र में "कृग्रोरुच्च" से गृ निगरणे धातु से कु" प्रत्यय तथा उत्व होकर गुरु शब्द बनता है । जिसका तात्पर्य है कि

10· द्वयोपनिषद्, आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ,मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदसमन्त्राश्रय शुचिः । गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषवित् । एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते ।।

11·आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारस्थापनादपि । स्वयमाचरते यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते ।

12·गुशब्दस्त्वन्धकारःस्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः । अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ।

13·गुरुरेव परं ब्रह्मः गुरुरेव परागतिः । गुरुरेव परं विद्या गुरुरेव परं धनम् ।
गुरुरेव परं कामः गुरुरेव परायणः । यस्मादुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरो गुरुः ।

14· या०स्मृ० 34· स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेद तस्मै प्रयच्छति ।
उपनीय ददद्वेदमाचार्यः सः उदाहृतः ।।

वह शिष्य को अपने प्रभाव से, अपने अन्दर निगल जाता है और वहाँ से उसे सूरति की आभा से आभासित कर बाहिर निकालता है । यही भावना भारत में फैली है और समस्त सम्प्रदाय गुरु की मान्यता को स्वीकार करने लगे हैं । जैसे सिक्ख धर्म, राधास्वामी सम्प्रदाय आदि ।

कुछ अपवाद, जैसे:- बौद्ध धर्म के आदि गुरु बुद्ध भगवान्, गुरु की आवश्यकता नहीं मानते । वे "आत्मदीपो भव" का उपदेश देते हैं । उन्हें सम्यक् सम्बुद्धता स्वयं मिली थी । वे गया के बोधिसत्त्व बटवृक्ष के नीचे सम्बुद्ध हुए थे । बाद के बौद्ध रत्नत्रयी "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि" । को आवश्यक मानते हैं। किन्तु बुद्ध ने गुरु की आवश्यकता नहीं मानी थी। वैसे ही स्त्रियों के लिए पति ही गुरु रूप में वर्णित किए गए हैं ।

कुछ भी हो गुरु का नाथ सम्प्रदाय में तो विशेष महत्त्व है । तभी तो प्रसिद्ध आचार्य गोरक्षनाथ के नाम से पहले गुरु लगाया जाता है । बाद में उन्हें गुरु नाम से ही जाना जाता है । यह रूढ़ी तभी हुई जब गुरु की इतनी महिमा रही है ।

3· गोरक्षप्रणीत ग्रन्थ

क" संस्कृत ग्रन्थ :-

1·गोरक्षगीता, 2·गोरक्षबोध·3·गोरक्षदोक्षा,4·गोरक्षगणेश गोष्ठी, 5·गोरक्षावधूतगोष्ठी, 6·गोरक्षयोग मञ्जरी, 7·गोरक्षशतकम्" ज्ञानशतकम्" ,8· गोरक्षज्ञानगंगा,9·गोरक्षागम, 10·गोरक्षतत्त्व प्रकाश,11· गोरक्षोपनिषद्, 12·गोरक्षशब्दी,13·गोरक्षपद्धति, 14·गोरक्षसंहिता, 15·महार्थमञ्जरी, 16·सिद्धसिद्धान्तपद्धति,17·षट्चक्रचिन्तामणि,18·षट्चक्रबोध,19·त्रिपुर--सुन्दरीपद्धति, 20·योगसिद्धान्तपद्धति,21· विवेक मार्तण्ड,22·अमरौघशासन,23·अमनस्कयोग, 24· अमरौघप्रबोध,25·प्राणशृंखला,26·नृपबोध,27·हठसंहिता, 28·हठसंकेत "1"।

"ख" इतर भाषा ग्रन्थ :-

1·सबदी, 2·पद,3·तिथि,4वार, 5·अभैमात्रायोग,6·संख्यादर्शन,7·प्राणसंकलि,8·आत्मबोध, 9·नरवैबोध,10·काफरबोध,11· अवलिसिलक,12·ज्ञान्ति भौरावलि,13· रोमावलि, 14·साषी 15·मछीन्द्रगोरखबोध,16·गोरखगणेश सम्वाद,17·गोरक्षदत्तसंवाद "2"।

इन ग्रन्थों में डा० जनार्दन पाण्डेय ने यह स्वीकार किया है कि "सिद्धसिद्धान्तपद्धति" से लेकर "हठसंकेत" तक की रचनाएं गोरक्षनाथ की स्वयं रचित है । "गोरक्षसंहिता" से "महार्थमञ्जरी" तक की रचनाएं, इस सम्प्रदाय वालों ने गोरक्षसिद्धान्त से या उनके उपदेशों से निचोड़ लेकर लिखी है । कोई रचना सम्पूर्ण रूपेण, कोई पौर्वापर्यरूप से उनकी रचनाओं में आ

1· गोरक्षसंहिता आदिप्रकरण उपोद्घात, "ज" डा० जनार्दन पाण्डेय,

2·डा० नगेन्द्रनाथ, गोरखनाथ,पृ० 135

जाती है[3]। इन मूल रचनाओं के निचोड़ में संकेत मिलता है "श्रीमन्महामहेश्वराचार्य श्रीसिद्ध-गोरक्षनाथविरचितम्" ऐसा अमरौघ शासन में तथा "गोरक्षापर्याय श्रीमन्महेश्वरानन्दनाथविरचितम्" ऐसा महार्थमन्जरी में लिखा मिलता है। जिससे गोरक्षनाथ का दूसरा नाम महेश्वरानन्दनाथ भी कहा गया है।

जिससे यह भाव निकलता है कि जिन ग्रन्थों के नाम विषय परक है वे गोरक्षनाथ के स्वयं निर्मित ग्रन्थ है। दूसरे इन ग्रन्थों की भाषाशैली और प्रतिपाद्य के प्रतिपादन का ढंग भी एक अधिकारी विद्वान् के अनुरूप हुआ है। जो रचनाएं गोरक्ष नाम लेकर लिखी गई है, उनमें भाषागत दोष देखकर और प्रतिपादन की शिथिलता देखकर ऐसा लगता है कि ये रचनाएं गुरुगोरक्षनाथ द्वारा रचित न होकर परवर्ती नाथ सम्प्रदाय के लोगों द्वारा गोरक्षनाथ के नाम से चलाई गई हैं।

विश्व के सबसे बड़े भाषा वैज्ञानिक पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में दो सूत्र बनाकर लोगों का मार्ग प्रशस्त किया है। जैसे "तेन प्रोक्तम् 4·3·101," "कृते ग्रन्थे, 4·3·116" पहले सूत्र में जिसने जो सिद्धान्त कहे हैं, उससे बनने वाला शब्द सिद्ध होगा और दूसरे जिसने उनकी रचना की है वे शब्द सिद्ध होंगे। इन्ही सूत्रों का प्रपंच गोरक्षगीता आदि

3·डा० जनार्दन पाण्डेय, गोरक्षसंहिता आदि प्रकरण, उपोद्घात

4·अ०, 4·3·101, ,,116

नामों में देखा जा सकता है । जो सिद्धान्त मूल रूपेण गोरक्षनाथ ने कहे हैं । उनका अपने शब्दों में वर्णन करना हो, इन ग्रन्थों के लेखकों का कर्तव्य होता था । वे यह नहीं जानते थे कि इसको हम गोरक्षनाथ का बना भी पाएँगे या नहीं । जो पूर्ण सिद्ध नहीं होते थे वे अपने गुरु का भी अपमान करवा बैठते थे । तभी तो विद्या अपने जानने वाले गुरु से कहती है कि "मेरी रक्षा करो मुझे असूया करने वाले को मत दो, गुरु की निन्दा करने वाले को मत समर्पित करो, नहीं तो मैं बलवान् नही रहूँगी[5]। स्वल्प ज्ञानी शिष्यों या अनुयायियों ने नहीं सोचा कि सिद्धपुरुष जब अपने जन्मकाल और देश का भी वर्णन नहीं करते । ऐसा करने से उनकी व्यापकता नष्ट हो जातीहै । वे अपने ग्रन्थों से पूर्व अपना नाम क्यों कर लगाते । दूसरे भारतीय धर्म के संरक्षक धर्मशास्त्र का उलंघन करके अपना नाम कैसे लेते[6]। अतः गोरक्षेण प्रोक्तम्" इस विग्रह में "तेन प्रोक्तम् सूत्र से छः प्रत्यय करके गोरक्षिय शब्द बना लेते हैं और पुनः प्रत्यय का लोप करके ग्रन्थों के आदि में दिया हुआ गोरक्ष शब्द शेष बच जाता है ।

गुरु गोरक्षनाथ की संस्कृत रचनाओं की प्रमाणिकता

जहाँ संस्कृत के महा पण्डित जनार्दन पाण्डेय ने संक्षेप में की है वहाँ नाथ सम्प्रदाय के प्रौढ़ लेखक एवं हिन्दी -संस्कृत विश्रुत विद्वान् डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ में पूर्ण

---

5. नि० अध्याय -। विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम शेवधिष्टेऽस्मि रक्ष माम् ।
असूयकाय मा प्रादात्तथैव वीर्यवती स्याम् ।।

6. म०स्मृ० आत्मनामगुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च । श्रेयस्कामो न गृह्णीयात्।
ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः ।।

विवेचना के साथ की है । डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपनी रचना 'गोरखबानी' में चालीस हिन्दी रचनाओं को गोरखनाथ रचित बतलाया है । इनमें से तो चौदह को तो सर्वथा गोरख लिखित स्वीकार किया गया है[7]। वैसे तो गोरक्षनाथ की रचनाओं को गिनाते हुए हिन्दी साहित्यकारों ने लम्बी-लम्बी सूचियाँ प्रकाशित की है किन्तु उनमें दो प्रकार के भावों की पुष्टि होती है । एक तो नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थों की सूची, दूसरे गोरखनाथ से सम्बन्धित ग्रन्थों की सूची । कुछ विद्वानों ने हिन्दी संस्कृत के ग्रन्थों का भी विभाग नहीं किया । डा० जी० डब्ल्यू० ब्रीग्स की सूची इस प्रकार की है । नाथ सम्प्रदाय के कौन से ग्रन्थ किसके हैं, कबके हैं, इस बात को प्रमाणित करने के लिए अभी तक कोई लेख नहीं मिलते । वैज्ञानिक पद्धति से सिद्धसिद्धान्तपद्धति का सर्वप्रथम सम्पादन डा० कल्याणी मलिक ने किया[8]। इन्होंने तंजौर हस्तलेख तेलुगु लिपि में प्राप्त किया और उसका समय 1699 निर्धारित किया । इन्होंने अमरौघ प्रबोध और योग मार्तण्ड को भी गोरक्ष की रचना माना है । ब्रीग्स इन्हें नित्यानन्द का स्वीकार करते हैं । वे ही गोरक्ष की रचना भी मानते हैं । गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह में इसे नित्यानन्द की ही रचना माना गया है[9]। जब डा० मलिक ने गोरक्षनाथ की ही रचना निःसन्देह माना है । डा० ब्रीग्स तथा द्विवेदी ने अमरौघ प्रबोध का

---

7. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० 100

8. सिद्धसिद्धान्तपद्धति एण्ड अदर वर्क्स ऑव नाथ योगीज् ।

9. डा० नगेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, पृ 102

नाम भी नहीं लिया । जबकि डा० मलिक ने ताड़पत्र के आधार पर इसे गोरक्षकृत माना है । इसके साथ योगमार्तण्ड को भी माना है । राजेन्द्रलाल मित्र ने योगसिद्धान्तपद्धति, सिद्धान्त पद्धति और ज्ञानामृत को भी गोरक्षकृत माना है[10]। डा० द्विवेदी की दी हुई 28 ग्रन्थों की सूची में उन्होंने कुछ पर सन्देह व्यक्त किया है । कुछ को गोरक्ष की रचना माना है[11]। इसी प्रकार डा० मलिक ने चतुरशीत्यासन, ज्ञानामृत, योगमहिमा, योग सिद्धान्तपद्धति, गोरक्ष-कल्प, गोरक्षसहस्रनाम और गोरक्षपिष्टिका, को भी गोरक्षकृत माना है । उन्होंने लगभग 37 ग्रन्थों को गोरक्षकृत माना है । केवल 16-17 रचनाएं ही गोरक्षनाथ की है । इनमें भी सिद्धसिद्धान्तपद्धति, गोरक्षसंहिता, अमरौघशासनम् और महार्थमञ्जरी ही गोरक्षनाथ के सिद्धान्त के महान् ग्रन्थ माने जाते हैं । इनमें से सिद्धसिद्धान्तपद्धति तथा महार्थमंजरी में सांख्ययोग काश्मीरशैवदर्शन तथा तन्त्रदर्शनानुरूप 36 तत्त्वों का वर्णन पूर्णरूपेण किया गया है[12]। साधना की दृष्टि से गोरक्षसंहिता और अमरौघशासनम् महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं । गोरक्ष-संहिता के पहले तो केवल दो सौ श्लोक माने जाते थे और उनमें साधन का स्वरूप शुद्धरूप में वर्णित माना जाता रहा है । अब जब कि इस ग्रन्थ के दो प्रकरण कादिप्रकरण तथा गूति - प्रकरण काशी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुके हैं । इससे इसकी व्यापकता के विषय

---

10. गो०स० यो० पृ० 2 5, संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स ऑव् द राजा ऑव बीकानेर,

11. नाथ सम्प्रदाय, पृ० 99-100

12. डा० नगेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, पृ 104

प्राचुर्य का ज्ञान मिल जाता है ।

1. ______________ सिद्धसिद्धान्तपद्धति का विषयगत परिचय:-

इस ग्रन्थ में छः उपदेश हैं । प्रथम में पिण्डोत्पत्ति, द्वितीय में पिण्ड विचार, तृतीय में पिण्ड-संवित्ति, चतुर्थ पिण्डाधार, पंचम में पिण्डपदसमरसकरण, षष्ट में अवधूतयोगिलक्षण की विवृति ।

2. महार्थ मञ्जरी:-

यद्यपि इस ग्रन्थ का गोरक्षकृत होना सन्देहास्पद है। क्योंकि इसकी परिमल टीका में "गोरक्षअपर पर्याय कहा गया है । वैसे तो यह गोरक्ष से परवर्ती कोई नाथ लगता है तथापि डा० नगेन्द्रनाथ ने, पूर्ववर्ती डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं वजवल्लभ द्विवेदी के मतों का पर्याप्त मन्थन करके इसे सन्देहास्पद स्थिति में गोरक्ष की कृतियों में रखा है[14]। इस ग्रन्थ में लेखक ने सारस्वरूप में कथाओं के माध्यम से आत्मतत्व को परमात्मतत्व से भिन्न स्वीकार किया है ।



3. अमरौघशासनम् :-

इस ग्रन्थ के दो विभाग हैं । प्रथम में सारणा का विशेष वर्णन किया गया है । सारणा शिवतत्व पारे के शोधन की विधि का नाम है । दूसरे में सिद्धसिद्धान्तपद्धति का विषय ही संक्षिप्त रूप से रख दिया गया है । यहाँ पर विपरीतिकरण आदि से ऊर्ध्व शक्ति-निपात, अधशक्ति कुंचन तथा मध्य शक्ति प्रबोधन से परम सुख की प्राप्ति बतलाई है । इसमें सुलभता

---

14. डा०नगेन्द्रनाथ, गोरखनाथ, पृ० 110

455252

के लिए परासारणा, प्रतिसारणा, शंकसारणा और महासारणा की व्याख्या की गई है । इस साधना में प्रधानरूप से प्राणसाधना नाड़ी साधना, कुंडलीसाधना तथा सिद्धकाया प्राप्ति को महत्त्व दिया गया है ।[15] अन्त में नादोपासना को बतलाकर शब्द ब्रह्म की उपासना क्रम में मेघगर्जन, कांस्यताल, अग्निदाह, दुन्दुभिशब्द, वंशी तथा शंख शब्दों का श्रवण साधक को होता है । इससे अधिक सिद्धियाँ साधक को मिलती हैं । जैसे लोकप्रियता, रोगनाश, कवित्व, दूराकर्णता, भूमिपरित्याग, वज्रत्व कायास्फुरण, सामरस्य आदि ।[16] जब यह अनाहत ध्वनि साधक को दिन-रात सुनाई देती रहे तो उसे परम पद मिलता है ।

दूसरे भाग में मोक्ष स्वरूप पर विचार करते हुए सात मतों का खण्डन करके अपने मत की स्थापना की गई है । "सहज समाधिक्रम से जहाँ मन से मन का समवलोकन किया जाता है । वही मोक्ष है "[17] । इस तरह इसमें जीवनमुक्ति पद को स्वीकारा गया है । कुण्डलिनि को मृणालसूत्र की तरह सूक्ष्म मूलाधार से निर्गत होकर, सूर्यचन्द्र नाड़ियों के साथ षट्चक्र का भेदन करती हुई, दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र की तरफ बढ़ती है । जहाँ पर समरस प्रकाश का दर्शन एवं समरस समाधि की जाती है । यही इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण भाग माना जाता है । इस ग्रन्थ में नाथ पन्थ के अमृतसाधन का विवेचन या अमरौघशासनम् नाथपन्थ के सिद्धान्त और साधना का समष्टि स्वरूप है ।

---

15. अमरौघशासनम्, मुकुन्दराम शास्त्री पृष्ट 1-4

16. वही, पृ0 4-5

17. वही, पृ0 9

18. वही, पृ0 12-13 यत्र सहजसमाधिक्रमेणमनसा मनः समालोक्यते स एव मोक्षः ।

गोरक्ष संहिता :-

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सभी गोरक्ष ग्रन्थसूचियों की परीक्षा करके बतला-या है कि सभी सूचियों में इसका नाम आता है । उन्होंने पं० प्रसन्न कुमार कविरत्न द्वारा 1897 ई० में प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है। किन्तु यह पुस्तक लुप्त प्राय: है । डा० नागेन्द्र ने भगवान् त्रिवेदी के पुत्र श्री इन्द्र जी शर्मा द्वारा सन् 1893 में प्रकाशित गोरक्षसंहिता काठियावाड़ान्तर्गत प्रभासपाटण की उपलब्ध सूचना अपने गोरक्षनाथ शोध प्रबन्ध के पृष्ट 112 में दी है। जबकि इसकी विषय वस्तु का वर्णन करते हुए उन्होंने गोरक्षपद्धति की विषय-वस्तु के साथ तुलना करते हुए पूर्व भाग की एकता घोषित की है[19]। महीधर सम्पादित गोरक्ष-पद्धति, तथा गोरक्षसंहिता डा० चमनलाल द्वारा मिलान करने से भी वही बात लगती है । इसका वर्णन डा० नागेन्द्रनाथ ने भी किया है किन्तु इस संस्करण की कोई पुष्पिका नहीं है । गोरक्षपद्धति के प्रकरणान्त में लिखा गया है "इति गोरक्षशास्त्रे मुक्ति सोपान संज्ञके उत्तरशतकम्"[20] महीधर शर्मा ने अपनी टीका में लिखा है "इति महीधरकृतायां गोरक्षसंहिताभाषायाम्"[21] जिससे यह ज्ञात होता है कि तब तक गोरक्षसंहिता के बारे में अनिर्णित ज्ञान ही उपलब्ध था ।

---

19. डा० नागेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, पृ० 112

20. पं० महीधर शर्मा, गोरक्षपद्धति पृ० 95

21. वही, पृ० 95

जब डा० जनार्दन पाण्डेय द्वारा सरस्वती भवन ग्रन्थमाला के पुष्प 110 में गोरक्षसंहिता का प्रथम भाग, कादिप्रकरण विक्रम सम्वत् 2023, शकाब्द 1898 तथा 1976 ई० में प्रकाशित हुआ, तब उसकी पुष्पिका में " इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते गोरक्ष-संहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्री मतोत्तरखण्डे कादिभेदे कुलकौलिपीठे योगिनीगुह्ये अमुकनाम अमुकपटले" से ज्ञात हुआ है कि आज तक उपलब्ध गोरक्षसंहिता दो सौ श्लोकों वाला संग्रह, वास्तविक ग्रन्थ नहीं। अपितु इस ग्रन्थ का परिमाण बहुत विस्तृत है और इसके अनेकों प्रकरण हैं। फिर दूसरे भूति प्रकरण में, एक श्लोक आया है जिसमें कहा गया है कि "यह ग्रन्थ पाँच-खण्डों में विभक्त है जिनके नाम अलग-अलग हैं । इन्हें गुरु मुख से जानना चाहिए।[22] जिससे यह भी कहा जा सकता है कि इस संहिता के तीन प्रकरण कादि, भूति और योग मिल चुके हैं और दो प्रकरण रहे हैं । जिनका अभी ज्ञान नहीं हो पाया है । यह संशय भी इस लिए है कि भूति प्रकरण के इस श्लोक में बतलाए प्रकरणों का विषय वहाँ नहीं मिलता । अगर विवरण दिया होता तो निश्चित ही कुछ कहा जा सकता था ।[23] इतना अवश्य है कि प्रसन्न कुमार संस्करण या बाद में बरेली से डा० चमनलाल गौतम द्वारा सम्पादित संस्करण केवल शुद्ध योग मार्ग का प्रतिपादक होने पर

---

22. गो०सं० भूति प्रकरण 9.133 पंचखण्डनिर्दिष्टास्ते नाम संज्ञा पृथक्-पृथक् ।
गुरूपदेशाज्ज्ञानीयात् सत्यं-सत्यं न संशयः ।।

23 डा० जनार्दन पाण्डेय, गो० सं० का० प्र०भू० 2, वर्णित , कानि तानि पंचखण्डानि इति तु न स्पष्टीकृतं क्वापि ।

भी अन्य, वादि तथा श्रुति प्रकरण की अपेक्षा बहुत छोटा है।तो यहाँ मेरा विचार है कि यह भी भारतीय परम्परा का प्रतीक है।क्योंकि योग के बारे में,अनुभूति को ही प्रत्यक्ष प्रमाण माना जा सकता है । प्रमाण का लक्षण करते हुए न्याय मत वालों ने कहा है कि"सम्यक् अनुभव के साधन को प्रमाण कहते हैं ।"[24] या अनधिगतार्थ को देने का नाम प्रमाण है ।[25] उनके भेदों के बारे में यद्यपि पर्याप्त मतभेद है। तो भी प्रत्यक्ष प्रमाण तो चार्वाक से लेकर वेदान्तियों तक समस्त सम्प्रदाय वालों ने स्वीकार किया है । न्याय दर्शन में उसका लक्षण करते हुए कहा है कि "इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से पैदा होने वाला ज्ञान, अव्यपदेश्य हो,अव्यभिचारी हो तथा उससे काम करने की क्षमता आ जाए,तो उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है ।[26] वह प्रत्यक्ष बाह्य तथा आन्तर भेद से दो प्रकार का हो जाता है । बाह्य प्रत्यक्ष के छः प्रकार बन जाते हैं । जिन्हें तर्क-संग्रह में षड्विध सन्निकर्ष कहा गया है । संयोग,संयुक्तसमवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवेत समवाय और विशेषण-विशेष्य भाव ।[27] ज्ञान से पैदा होने वाला आन्तरिक प्रत्यक्ष दो प्रकार का है । ज्ञानज प्रत्यक्ष और योगज प्रत्यक्ष ।[28]

---

24. न्याय दर्शन,अ० ।, सम्यगनुभव साधनं प्रमाणम् ।

25. वही,ऋ०भा०भू०,सायण-अनधिगतार्थगन्तृप्रमाणम् ।

26. न्यायदर्शन,अ० । इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारी व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।

27. तर्क संग्रह,प्र०ख० ,षड्विध संयोगः संयुक्तसमवायः,संयुक्त समवेत समवायः । समवेतसमवायः विशेषणविशेष्यभावश्च ।

28. वही,ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ।

योगज प्रत्यक्ष के लिए योग की साधना, चित्तवृत्ति का निरोध करना आवश्यक है।[29] चित्तवृत्ति के निरोध के लिए शरीर की शुद्धि और इन्द्रियों का विषयों से अवरोध आवश्यक है। अत: नाड़ी शुद्धि, चित्त का उन्मनीभाव, इन्द्रियनिरोध के लिए बाह्ययोग का सहारा अनिवार्य है। हठ योग की प्रक्रियाएं नेती, धोती, आसन तथा आभ्यन्तरिक कुण्डलिनी का सहस्रार स्थित आदिनाथ शिव से, संयोग करवाने के लिए प्राणायाम और त्राटक की आवश्यकता भी आती है। सहज योग में अनेक जन्मों के अनन्तर सिद्धि की बात की जाती है।[30] नाथ सम्प्रदाय का साधक इतनी देर नहीं सह सकता। वह तो इसी जन्म में शिव का प्रत्यक्ष करके जीवन मुक्ति चाहता है।

अत: कुण्डनी शक्ति का जागरण करने के लिए प्राणायाम, धारणा, ध्यान करके शीघ्र ही अपने गन्तव्य की ओर चला जाता है। इस प्रकार योग छोटा रास्ता है, उसका वर्णन भी छोटा ही होगा, दूसरे अनुभव की हुई अध्यात्म सम्बन्धी बात, गूंगे का गुड़ होती है। उसे हम सहज शब्दों में नही बान्ध पाते। अत: केवल उसके साधनों का संक्षिप्त वर्णन इसमें आता है और वाक्य पदीय[31] का यह कथन कि "उपाय सिखलाते हुए बालक के लिए शब्द तो केवल पुचकारना मात्र है। स्थूणा अरुन्धती न्याय से गलत मार्ग पर चलाकर

---

29. यो०द०स०पा० 2सूत्र-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

30. अनेक जन्म संसिद्धाः आस्थिता जनकादयः।

31. वा०प०,ब्र०का० उपायशिक्षमाणानां बालानामुपलालना।
अस्त्यवर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।।

सत्य की खोज कराना चाहते हैं । शब्द ब्रह्म के जानने के बाद ही परं ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है[32] । इसलिए यह ध्यान रखकर कि साध्य से साधन बड़ा होता है ,शब्दों मेंयोग का वर्णन किया गया है । वे शब्द संक्षिप्त ही हो सकते थे । अतः गोरक्ष का योग प्रकरण दो सौ श्लोकों का ही बन पाया हो । दूसरे निर्माता का ध्यान योग साधन की बाह्या-भ्यन्तर प्रणालियों पर भी रहा हो और उसने योग की बाह्य साधनाओं का प्रथम शतक में तथा अभ्यन्तरिक प्रणालियों का दूसरे शतक में वर्णन कर दिया हो । भाषागत भेद कुछ भिन्नता की ओर संकेत करता है । इस योग प्रकरण में संस्कृत की उतनी न्यूनता नहीं है जितनी आदि और भूति प्रकरण में नजर आती है । तो विस्तार की भिन्नता का जहाँ विषयगत परिहार मैंने चिन्तन किया है । वहीं भाषागत भिन्नता में भी यह बात आ सकती है कि गुरु की वाणी संग्रह करने वाले ने अन्य प्रकरणों में तो अपनी भी छाँटकर कुछ लिख दिया है।परन्तु योग प्रकरण विशुद्ध अनुभव का विषय है । अतः वहाँ गुरु का कथन ही प्रामाणिक समझकर, उसे उसी रूप में रखा गया हो 'जैसा गुरु से उपदिष्ट हुआ है । अतः उसमें भाषागत भेद भी नहीं आने पाया

अब इन प्रकरणों के/विषयों का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह निम्न प्रकारेण समझा जा सकता है ।

---

32. ऋग्वेद प्रातिशाख्य, पृ० 10 द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं चयत् । शब्द ब्रह्मणि निष्पन्नः परं ब्रह्माधिगच्छति ।

कादि प्रकरण के 27 प्रकरण है । दुर्भाग्य से बीच-बीच के पत्र न मिलने के कारण पुस्तक भी अधूरी ही रह गई है । केवल मिले हुए पत्रों के आधार पर ही सन्तोष करना पड़ा । इससे विच्छेद होने पर विषयगत प्रवाह भी बीच में अवरुद्ध हुआ है । समुपलब्ध काशी संस्करण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम पटल में तन्त्रशास्त्र के उपजीव्य भैरव को नमस्कार के ब्याज से तन्त्रशास्त्र में उनके महत्व पर विचार किया गया है । दूसरे पटल के 7-17 पत्र ही मिले हैं । जिससे पता चलता है कि इस पटल में देवी के पीठों और उपजीव्य का सम्पूर्ण विवेचन था । यहाँ उपलब्ध पत्रों में हिमवत् को आधार मानकर कामरूप पीठ का अपूर्ण वर्णन है[33] । यद्यपि प्रथम श्लोक में पंजाबी के मिहवत् शब्द को लिया गया है जिससे हिमालय को ग्रहण करना उचित ही है। क्योंकि भाषा में व्यत्यय हो जाया करता है[34] । आगे चलकर हिमवत् शब्द का ही प्रयोग हुआ है[35] । अतः इस पटल में सम्पादक के मतानुसार "ओ०जा०पू०जा० तान्त्रिक क्रम को ग्रहण किया हुआ भासित होता है[36] ।

---

33. गो०सं० अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मिहमन्तं यथास्थितम् । योजनायुतं विस्तीर्णं महाशृंगाटकाकृतिम् ।
कामरूपत्वमापन्ना तेन त्वं कामरूपकम् ।

34. अ० सूत्र व्यत्ययो बहुलम् ।

35. गो०सं० का०प० 2-8 रक्षन्ति सततं द्वारं हिमवत्पीठमुत्तमम् ।

36. गो०सं० उपोद्घात "ढ"

तीसरे पटल का प्रारम्भ लुप्त है । उपलब्ध अंश से प्रतीत होता है कि लुप्तांश में भी क्षेत्रों का वर्णन था। क्योंकि प्राप्तांश में कर्दमाल-गोकर्ण, विन्ध्याद्रि, विमलेश्वर, सिन्धुमाल, महासेन मातंग तथा कुब्जा इन आठ उपक्षेत्रों का वर्णन किया गया है । त्रिकूट, त्रिपुर, गोपुर, भद्रकर्ण, किरात, काश्मीर, शैवाल और सिन्धुदेश इन आठ सन्दोहों का वर्णन किया गया है । श्री जयन्ती, कुल्लता, मानव, कांचीपुर, कुरुक्षेत्र, बर्बर और शाम्बर इन उपपीठों का भी वर्णन मिलता है । इसके बाद क्रौंच उत्पत्ति और कामदाह का वर्णन आया है ।[37] हिमालय द्वारा सेवा संरत पार्वती को लेकर अपने घर चले जाने का वर्णन मिलता है ।

चतुर्थ पटल में देवताओं के द्वारा आदिनाथ शिवभगवान् की प्रार्थना करना कि "हे देव दानवों के स्वामिन् जगन्नाथ ! तीनों लोकों की रक्षा के लिए हमारी रक्षा करो और पूर्वकल्प के वृतान्त को स्मरण करके पार्वती के पसीने से उत्पन्न क्रौंच[38] नामक असुर को मारने के लिए उसी के योनिज पुत्र की आवश्यकता है । ऐसी स्तुति सुनकर शिव ने पार्वती का हस्त ग्रहण करके, उनके साथ क्रीड़ा आरम्भ कर दी। शिव प्रसन्न होकर पार्वती से वर मांगने के लिए कहते हैं । पार्वती ने पश्चिमाम्नाय सिद्धों की सन्तान का वर्णन करने के लिए प्रार्थना की । यहाँ से आगे का प्रकरण लुप्त प्रायः है । मातृस्वरूप का वर्णन आगे मिलता है जिसमें

---

37. गो०सं० का० प्र० पृ० ।।-।2 जयदेव जगन्नाथ सुरासुर गुरोहरः ।

38. गो०सं०च०प० श्लोक 2, त्राहि-2 त्रिलोकेश त्रैलोक्य मंगलाय च ।

माहेशी वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री का पूर्ण विवरण मिलता है फिर सातवीं मूर्ति चामुण्डा का नाम और मुख तथा आंखों का वर्णन मिलता है । आगे के तीन पत्र लुप्त हैं । इससे पता चलता है कि प्रारम्भ में दो देवी की मूर्तियों के रूप भी लुप्त हो गए हैं ।

31 पत्र में शव साधन की विधि जिसका प्रारम्भिक भाग लुप्त है । पुनः मातृगण के मध्य में स्थित शिव के स्वरूप का तथा वाम दक्षिण आयुधों का तथा पद्मासन में स्थित शिव का वर्णन एवं पूजा विधान है । पुनः 25 तत्वों से युक्त पूर्ण 32 दान्तों वाले शव को लेकर स्नान करवाएं, चन्दनादि से पूजा करके मण्डल में रखकर भैरव मन्त्र का जाप करें । मन्त्र को कूटस्थ बनाकर ग्रन्थकार ने ख०फ०र० स्वरूप बतलाया है [39] । मन्त्र निर्माण में अनेकों के वर्णों के संयोजन की विधि बतलाई है।जो गुरुगम्य ही हो सकती है । इस मन्त्र का जाप, शव के सम्मुख करें । जब अर्ध रात्रि को शव फुंकार मारे तब दृढ़ चित्त होकर मन्त्र जाप करता हुआ शिव का ध्यान करे । जब,शव अपनी जीभ बाहर निकाले तब छुरी से उसे काट दे और शव गिर जाएगा । उस जीभ को गुरु और शिष्य अपने मुख में धारण करने से आकाश स्थित सभी मातृकाओं के दर्शन कर सकेगा तथा अणिमादि आठों सिद्धियों को प्राप्त कर लेगा । आगे का भाग तीन पत्र लुप्त है

अगले उपलब्ध भाग में चलचक्र का वर्णन किया गया है । चक्र निर्माण में चन्दन कुंकुम धूम नैवेद्य आदि सामग्री का उपयोग करें । वस्त्र पुष्पमाला,उपहार

---

39. गो०सं०च०प० पृ० 18 खफरेफ महामन्त्रमर्द्धेन्दु कलयान्वितम् ।
कूर्मिताक्षवर्णानि उमाकालेन संयुता ।।

मद्य,मांस,भोज्य,भक्ष्य नैवेद्य वाद्य आदि के द्वारा चक्र में योनियों का पूजन करें। कुमारियों का पूजन करें,कुमारों का पूजन करें,फिर चक्र को वीरचक्र में परिवर्तित कर एक स्म रात्रि,तीनरात्रि या सप्तरात्रि चक्र का आनन्द लें।[40] वहीं पर गोदान,भूमिदान,स्वर्णदान ग्राम नगर रत्न दीप आदि का दीनों,ब्राह्मणों,तपस्वियों के लिए दान दें। इस दान का कोटि गुणा ज्यादा फल मिलता है। जिससे मनवांछित सिद्धि प्राप्त होती है। इससे दूसरे जन्म में भी सर्वज्ञता प्राप्त होती है।

[41] पंचम पटल में उपलब्ध प्रारम्भिक तीन श्लोकों में पार्वती का देहस्थ मातृकाओं के तथा वृहन्नया के बारे में प्रश्न किया गया है। 36वां पत्र लुप्त है। 37वें पत्र में मातृपदों की व्याख्या की गई है। जिनका प्रथम पद लुप्त है। पुनः 21 अक्षरों वाले आठ पदों की व्याख्या की गई है। मध्यम खण्ड के ये 21 अक्षरों वाले आठ पद हैं। तृतीय खण्ड के 165 वर्ण दिखलाए गए हैं। इसके बाद तृतीय खण्ड के 29 पदों का वर्णन यहां मिलता है। उससे आगे का भाग लुप्त है। 38-39 पत्र लुप्त हैं।

40 पत्र की उपलब्ध सामग्री में कूटों का वर्णन किया गया है। जिनमें से आरम्भ के आठ कूटों की सामग्री लुप्त है। नवें कूट को गले में स्थापित किया गया है। फिर सोलहवें कूट तक अवशिष्ट सातकूटों को शिखा पर्यन्त सिर में ही स्थापित किया गया है। इन कूटों का न्यास पांच प्रणवों सहित ही योगी को अभि...

---

40. गो०सं० प० 4,पृ० 19, एकरात्रं त्रिरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा।
चक्रानन्दं प्रकर्तव्यं यथालाभेन सुन्दरी ।।

41. गो०सं० प० 5, पृ० 20-26

होता है । इनकों ऊपर से नीचे, और नीचे से ऊपर बार-बार शरीर में न्यास करने से शरीर प्रकाशमय हो जाता है । जिससे फिर मृत्यु नहीं होती और योगी काल को जीत लेता है । । फिर इस विद्या को गोप्य रखने की सलाह दी गई है और अधिकारी का वर्णन किया गया है। फिर द्वादश पीठों और छ: चक्रों का संकेत करके द्वादश पीठों के न्यासानन्तर छ: चक्रों के भेदन की विधि बतलाई गई है[42] । यहाँ से आगे 4 पत्र लुप्त है । 45 पत्र में चलचक्र कावर्णन और प्रभाव दर्शाने से पहले, बिन्दु के अनेक आधारों में पहुँचने पर परिणति का वर्णन किया गया है । पुन: भैरवी के प्रश्न पर चला नामक शक्ति को बतलाया गया और वह चक्र के रूप में व्यवस्थित अर्थात् शरीर के भिन्न-2 स्थानों में उस का ध्यान किया जाता है । जैसे पैर, जानु, ऊरु, नाभि, हृदय, कण्ठ देशों में आठ अरों से युक्त, वह शक्ति पहिए की तरह घूमती है तथा सूर्य की तरह उसका प्रकाश नजर आता है । उसमें तीन कर्णिका होती है/ प्राण वायु से प्रेरित होकर तीव्रगति से वह शक्ति चक्र के रूप में फिरती है । जो योगी पैर से लेकर शिर तक, इस शक्ति का चक्र के रूप में ध्यान और दर्शन का अभ्यास करता है/ वह खेचरत्व की संज्ञा प्राप्तकर समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । इसके बाद सात पत्र लुप्त हैं । जिनमें पंचम पटल की समाप्ति तथा षष्ठ पटल आरम्भ होता है ।

---

42. गो०सं०प०प० पृ० 24 ,एकैकं भेदयेच्चक्रं पीठद्वादशभि: क्रमात् ।

षष्ठ पटल[43] के समुपलब्ध पत्रों में देवी के चक्रों का वर्णन मिलता है । जिनमें षडंगन्यास देवी के मुद्राओं का वर्णन और वर्णन्यास मिलता है ।

सप्तम पटल[44] में ब्यालिस देवी की मूर्तियों का वर्णन मिलता है । जैसे प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, चामुण्डा, प्रियदर्शिनी, गुह्यशक्ति, नारायणी, मोहिनी प्रज्ञा, वज्रिणी, कंकटा, कालिका, शिवा, धिर्वरा, वागीशी, भीमा, रामा, महाचण्डी, विनायकी, पूर्णिमा, उल्किणी, कूर्दनी, जयन्ती, दीपिनी, कपालिनी, पावनी, इच्छाशक्ति, अम्बिका, पूतना, क्षीरामा लम्बिका, संहारी, महाकाली, कुसुमा, शुक्रा, तारा, ज्ञानी, क्रिया, गायत्री, सावित्रि, दहनी और फेत्कारी। उसी के साथ मालिनी चक्र विन्यास के क्रम से मालिनीचक्रविन्यास का वर्णन किया गया है ।

अष्टम पटल[45] में तीन मुद्राओं का भेद सहित वर्णन मिलता है । प्रथम त्रिशिखा का स्वरूप, उसको सिद्ध करने का क्रम तथा सिद्ध होने पर फल की प्राप्ति वर्णित है । इसी के प्रसंग में योगरोध सम्पुट ग्रथन विदर्भ इस प्रकार के मन्त्र के छः प्रकार के हो जाने का वर्णन आया है ।

त्रिशिखा के बाद पद्ममुद्रा का वर्णन आता है। जिसमें उसका स्वरूप, साधन उसके क्रम, फलों का वर्णन करके, इसी के प्रसंग में कामराज मन्त्र का साधन और उसका साधन तथा फल भी वर्णित किया गया है । योनिमुद्रा का स्वरूप, साधन फलादि का वर्णन

---

43. गो०सं०प०ऊ. ,पृ०27-30

44. वही, पृ० 30-46

46. वही, प०-आठ, पृ० 47-66

खेचरी महातम्य,प्रयोगराज साधनविधि तथा उसके अधिकारियों का वर्णन मिलता है । बाद में वृत्तिराज का विधान करके छः प्रकार के कुल रत्नों का वर्णन किया गया है ।

नवें पटल[46] को जालन्धरनाथ पटल कहना चाहिए,क्योंकि इसमें जालन्धर की उत्पत्ति,उसका मन्त्र,मन्त्र ध्यान पूजा आदि की विधि का विवेचन किया गया है ।

दसवें पटल[47] में परा योनि की समया का प्रस्तार भेद से पद भेद तक का वर्णन करके उसके उद्धार को बतलाया गया है । पुनः समयाचार पालकापालक निर्णय वक्रागोद्धार,वर्ण प्रस्तार क्रम से दूतियों की मुद्राओं का ध्यानादि वर्णित है । कालिका का उद्धार तथा दूती मुद्राबन्ध दिखलाया गया है ।

ग्यारहवें पटल[48] में हृदय दूती और शिरोदूती के जात का प्रमाण देकर उद्धार को बतलाया गया है ।

द्वादश पटल[49] में शिखादूती का उद्धार कामना के भेद से होम के समय का भेद,संख्या का भेद,कुलाकुल निर्णय विचार किया गया है ।

तेरहवें पटल[50] में अघोर मन्त्र के कीलों का वर्णन,उनका उत्कीलन प्रकार,32 अक्षरात्मक स्वच्छन्द का चक्र और ध्यान,दूती प्रकार,यन्त्र का विधान विस्तार से वर्णित किया गया है ।

46.गो०सं०,प०-9,पृ०66-70

47.वही,प०-10,पृ० 71-91,

48.वही,प०-11,पृ० 92-99

49.वही,प०-12,पृ० 100-118

50.वही,प०-13,119-136

चौदहवें पटल में[51] कवच, नेत्र, मुख, अस्त्र, दूतियों के ~~वर्णन के~~ मन्त्र यन्त्रादि बतलाए गए हैं । गुह्यकाली का स्वरूप, अघोराख्य का स्वरूप, निरूपण, षडंग, षट्प्रकार षट्योगिनि, षट्अधार, षट्पुर, षट्सिद्धों के षडंगों का निरूपण एवं उसके आठ भेदों का वर्णन किया गया है ।

पन्द्रहवें पटल[52] में ~~त्रिपुर~~ रुद्र भैरव की उत्पत्ति, ब्रह्मा और विष्णु द्वारा शिव स्तुति, लिंग दर्शन, चक्र का पूजन और उसके स्वरूप का निर्माण, लिंग दर्शन के साधन का निरूपण, षट्चक्र निरूपण, लिंगों के आधारों का वर्णन, ध्यान की वैविध्यता से फल की विविधता बारह चक्रों में बारह प्रकार की कुलवागीश्वरी के स्वरूप का द्वादश श्लोकों के निर्णय का वर्णन है।

सोलहवें पटल[53] में आत्मा, शुक्ति, वंश, बिन्दु, पद तथा आकाश इन छः पदार्थों का निर्णय किया गया है । ध्यान और धारणा योग का स्वरूप बतलाकर आज्ञा और मणिपुर चक्र का वर्णन भी किया गया है। नाद के संयोग और वियोग का वर्णन, पिण्ड की सृष्टि और छः सिद्धपुरियों का वर्णन किया गया है ।

सत्रहवें पटल[54] का आरम्भ और अन्त लुप्त है । उपलब्ध भाग में दूतियों, दिव्ययोगिनियों, परमदूतियों और परम देवियों का वर्णन किया गया है । अठारहवें पटल की उपलब्धि इस पुस्तक में उपलब्ध नहीं है ।

---

51. गो०सं०, प०-14, 137-160

52. वही, प०-15, पृ० 161-186,

53. वही, प०-16, पृ० 187-220

54. वही, प०-17, पृ०, पृ०221-226

उन्तिसवें[55] पटल में राकिनी, लकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, याकिनी, पुष्पोत्पन्न इन योगिनियों का वर्णन किया गया है ।

बीसवें[56] पटल में अक्षोभ्या, ऋक्षकर्णी आदि चौंसठ योगिनियों का वर्णन किया गया है । इसमें असित भैरव, उसकी सृष्टि, नवात्मता और मण्डलों का वर्णन है ।

इक्कीसवें[57] पटल में मन्त्र के बीजों का निदर्शन, गुरु और शिष्य के लक्षण कुलपिण्ड, कुललक्ष्य का विवरण, दशवायु का स्वरूप और उनके कार्य, जीव का लक्षण, उसकी स्थिति और निर्गम का प्रकार, श्री मतोत्तर तन्त्र का महात्म्य, उसको बोधित करने वाले अन्य नामों का वर्णन, कालचक्र का वर्णन, पूषा के उदय का निरूपण और उसके शुभाशुभ का निर्णय करने का वर्णन किया गया है ।

बाइसवें[58] पटल में काल बन्धन, मृत्युंजयत्व प्राप्ति, कालकर्षिणी, मृतोत्थापिनी, मृतसंजीवनी विद्याओं के मन्त्रों का उद्धार, परा अपरा, परापरा विद्याओं का निरूपण, कामेश्वरी तथा त्रिपुरेश्वरी विद्याओं का भी वर्णन किया गया है ।

तेइसवें[59] पटल में विधिपूर्वक षोढान्यास बतलाया गया है ।

---

55. गो०सं०, प०-19, पृ०-227-234,

56. वही, प०-20, पृ० 235-263,

57, वही, प०-21, 264-288,

58. वही, प०-22, पृ० 289-317

59. वही, प०-23, पृ० 319-328

चौबिसवें पटल में साधनाक्रम में भूतशुद्धि, गुरुमण्डल, क्रमपूजा प्रकार, चतुषष्टिक्रम वर्णन, वज्रकुब्जी और सिद्धकुब्जी का निरूपण, छोम्मा का निरूपण, दिव्य भाषा ज्ञान प्रकार, छोम्माकमुद्राभेद से संकेत ग्रहण का वर्णन आता है ।[60]

पच्चीसवें पटल में पचास रुद्रों के स्वरूप का, शक्ति और ध्यानादि का वर्णन मिलता है ।[61]

छब्बीसवें पटल में 34 द्वीपों का, उनके अधिपतियों का स्वरूप ध्यानादि का वर्णन करके देह में उन पीठों के स्थानों का सामञ्जस्य बतलाकर, गायत्री का निर्णय किया गया है ।[62]

सत्ताइसवें पटल में चक्राम्नाय वर्णन करते हुए ब्रह्माणी माहेशी कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, चामुण्डा, चण्डिका, महालक्ष्मी, यामल नवात्मा, दूती, नित्यक्लिन्ना, एकवीरा, निग्रहा, दुर्गा, इन सोलह चक्रों के स्थान निर्माण प्रकार, पूजाविधान और उनके फल का वर्णन किया गया है । बाद में महन्तारी का स्वरूप, उनके मन्त्र का उद्धार, उसके पूजन की विधि तथा आठविधचर्या, चरु का लक्षण, उसके भक्षण का फल, पवित्र के लगाने का प्रकार और संक्षेप में ग्रन्थ के माहात्म्य का वर्णन किया गया है । कादि प्रकरण का वर्णनीय विषय एतावन्मात्र है ।[63]

---

60. गोसं०, प०-24, पृ०329-356,

61. वही, प०-25, पृ०357-374

62. वही, प०-26, पृ० 375-397

63. वही, प०-27, पृ०398-418

गोरक्ष प्रणीत संहिता का उपलब्ध दूसरा प्रकरण है भूति प्रकरण । इस प्रकरण में नौ पटल हैं । जिनका विषय निम्न प्रकारेण वर्णित किया गया है ।

[64] प्रथम पटल में सर्वप्रथम रस कार्य में कैसे सहायक हों, उनकी ~~योग्यता और~~ अयोग्यता का वर्णन है । पुनः रस की महिमा और उसका पांच-भौतिकत्व दिखलाकर, पारे के आठ गुणों को बतलाया गया है । रस को कैसे संशोधित किया जाएगा और उससे क्या पुण्य मिलेगा । विधिवत् संस्कृत पारे के लाभ और शिवोक्त रस शास्त्र का विस्तार । यह कहा जा सकता है कि रस शास्त्र का प्रयोजन भी, रस महिमा व्याज से बतला दिया है ।

[65] दूसरे पटल में परिभाषाओं को बतलाया गया है तथा इस प्रकरण में धातुओं की गिनती करके बताई गई है । सर्व प्रथम रस के बारे में प्रश्न किया गया है, आठ रसों अभ्रक, वैक्रान्त, विमल रसक, शैल माक्षिक, दरद तथा सस्यक का वर्णन करके आठ उपरसों, गन्धक, तालक, गैरिक, शिलाकांक्षी कासीस, अन्जन और कंकुष्ठ का वर्णन लिया गया है । आठ लौह कान्तज, खुरायन, नानाकार, अश्मज, खज, वैक्रान्तज, शैलज और सम्यकज का वर्णन आता है । माक्षिकामलज, आयस षट्क गरुडोदारपरीक्षा, पंच रत्न रसों के नाम और लक्षण, मणिसंज्ञक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, ताराकान्त मणियों का वर्णन, सूतक के बान्धने वाले मृगनाभि, छः नमक, तीन क्षार, पाँचविष, पाँच उपविष, दसतेल, चौदह चर्बियाँ, मूत्र, क्षार, गर्भद्रावक, आम्ल, रक्तगण, शुक्लगण, पितकल्क, कन्द, रसनिर्यात, इनके शोधन से क्या फल मिलेगा और न शोधन से क्या हानि होगी, का वर्णन है ।

---

64. गो० सं० भूति प्रकरण, पृ० 421-430

65. वही, 431-439

66

तृतीय पटल में पारे के अठारह संस्कार और उनकी विधि धातुओं और रत्नों का शोधन, अभ्रक आदि का सत्व पातन, स्वर्णरजतकारक बीज विधान का वर्णन आया है । यहाँ संस्कार अठारह होने पर भी विधि आठ की ही बतलाई गई है । आठ संस्कारों के बाद पारा प्रयोग के योग्य हो जाता है । विशेष गुणों की प्राप्ति के लिए ही उसके अन्य संस्कार किए जाते हैं । उपरसों के शोधन के, तीक्ष्ण शोधन, शुल्व शोधन द्राविका और बीज विधान का वर्णन आया है ।

67

चतुर्थ पटल में रस को बन्धन करने की प्रक्रिया बतलाई गई है, प्रारम्भ में उसके चार भेद बतलाए गए हैं । औषधि के प्रभाव से पारे की द्रुतित अवस्था बन्ध जाती है । वैसे ही अभ्रक आदि के योग से, रस बन्धन, लौहबन्धन, विविध बीज बन्धन हो जाता है । पुनः रक्त स्नेह पातन से, रसोपरस मिश्रण से, लौह संस्कार से, छः प्रकार का लौह संकरता से, रत्नादि के मेल से, रस में उत्पादकता आती है । विभिन्न द्रव्यों से मारण, मूर्च्छन किए हुए रस में, किस प्रकार से पुनः बीजकता की जाती है और उसमें कलवेधी, द्विगुणवेधी, शतसहस्र अर्बुदस्पर्श वेदी की उत्पत्ति की जाती है तथा कैसे अनुभवी सहायक हों, का वर्णन है ।

68

पंचम पटल में लवणादि योग से अभ्रक ग्रास का रस में प्रयोग विधान विविध औषधियों के संयोग से पारे का बन्धन, सन्मुखचारण, निर्मुख चारण का प्रकार, रस

---

66. गो०सं०मू०प्र० पृ० 440-447

67. वही 448-460

68. वही 461-486

-बन्धन में उपयोगी 64 औषधियों के नाम, ग्रास रूप धारण के बाद रस के आठ रूपों का वर्णन, ग्रासों के नाम, गर्भद्रुति, मुखबन्धन, यन्त्रों द्वारा उसके पातन की प्रक्रिया, पिण्डजारण जीर्ण हुए के लक्षण, क्रामण विधि, उपयोगी औषधि, रंजक औषधि संयोग से जाम्बुनद की उत्पत्ति क्रम पूर्वक रस सेवन का फल, रसकामधेनु का विधान, अभ्रक तथा तीक्ष्ण द्रव्यों के संयोग से रस की बलवत्ता का वर्णन किया गया है ।

षष्ठपटल में[69] सूर्यकान्त, चन्द्रकान्तादि मणियों द्वारा रसबन्धन करके उसके जारण-सारण की प्रक्रिया को बतलाया गया है तथा उसके वेध का क्रम दिखलाकर, वेध द्वारा ताम्र से उत्तम स्वर्ण बनाने की बात कही गई है । रक्त अभ्रक और स्वर्ण से पारा बान्ध कर उसके भक्षण से बाल्य और युवावस्था प्राप्त होने का वर्णन है । धातु उपरस के लेपन से ताम्बे से स्वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन, गन्धक सेक स्वर्ण निर्माण, सहस्रवेध से जाम्बुनद की उत्पत्ति गन्धक शोधक 10 औषधियों का वर्णन है । वर्तमान में अगर इस प्रकरण का अन्वेषण किया जाए तो भारत जैसे देश की सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी ।

सप्तम पटल में[70] अचिन्त्य शक्ति गुण रस पाक वीर्य प्रभाव युक्त औषधियों का विशेष रूप से रस को बान्धने वाली औषधियों का वर्णन करने के बहाने से दो भेद किए गए हैं । औषधि और महौषधि, फिर दिव्य औषधि और रसौषधि भेद दिखलाए गए हैं । तृण, गुल्म, लता, वल्ली, वृक्ष, सर्पिणी रूप से छः प्रकार के भेद दिखलाए गए हैं ।

---

69. गो०सं०भू०प्र०, पृ० 487-535

70. वही 536-562

पुनः दिव्य औषधियों के 64 भेद बतलाकर उनके नाम और लक्षण तथा कर्म बतलाए है । यहाँ यह वैशिष्ट्य है कि और जगह सोमलता एक ही प्रकार की है जबकि यहाँ दो प्रकार के उसके भेद बतलाए गए है । लतारूपी सोम तथा वृक्षरूपी सोम । दोनों में गुणकर्म समान होने पर भी लता रूपी सोम अधिक उपयोगी है । वह भी दो प्रकार की लता मिलती है । विषरहित और विषसहित । विषवाली अधिक गुण वाली होती है । इस प्रकार सोम लता आदि औषधियों का वर्णन किया गया है । पुनः इनकी उत्पत्ति कौन से देश में होती है, उन्हें कैसे ग्रहण किया जाता है । इसका भी वर्णन किया गया है । । एवमेव अम्लवेतस का भी वर्णन उत्पत्ति और प्रभाव सहित किया गया है । रसगुटिका और खेचरीगति, स्वर्णनिर्माण, लक्षकोटीवेध आदि का वर्णन किया गया है । एक मात्र अम्ल वेतस से असाध्य रोगों का इलाज कैसे किया जाता है, रसायन के सेवन समय में क्या पथ्य और क्या अपथ्य होगा इसका भी वर्णन किया गया है । अन्त के लगभग चार पत्र नष्ट होने से 61 श्लोक उपलब्ध नहीं है । [71]

अष्टम पटल में अयस्कान्त मणि की उत्पत्ति, उसका लक्षण और स्वरूप का वर्णन, उसका वीर्य रसबन्धन प्रकार विस्तार से वर्णन किया गया है । कान्ताय संयोग से निर्मित योग रसायन के उपभोग से जरा-मृत्यु-कुष्ठ-वल्ली-पलित आदि का नाश विधान वर्णन करके उन-उन रोगों में अनुपानों का पृथक्-2 विधान करके दिखलाया गया है । रस विषयक समस्त संस्कार, और कर्म, गुरु परम्परा से ही करना चाहिए । इस पटल के बीच में मूल मात्रिका

---

71. गो०सं०भू०प्र०, पृ० 563-57।

के लगभग छब्बीस पत्र नष्ट हो जाने के कारण अनेक रहस्यों का उद्घाटन नहीं हो सका इन विनष्ट पत्रों में ही अष्टम पत्र की समाप्ति और नवम पटल का आरम्भ होता है ।

नवम पटल में[72] जो सामग्री अवशिष्ट रूप में बची है उसमें शास्त्रोक्त विधि से औषधियों का नियोजन रस मन्त्रोद्धार और उसकी फलश्रुति का वर्णन किया गया है । इस प्रकार से गोरक्षसंहिता का परमोपयोगी विभूति प्रकरण समाप्त होता है ।

काशी संस्करण के इन दो प्रकरणों का वर्णन करने से प्रतीत होता है कि ये दोनों प्रकरण प्रेयविद्या की पराकाष्ठा का प्रतिपादन करते हैं । किन्तु जिस योग प्रकरण का सम्पादन प्रसन्न कुमार जी ने "गोरक्षसंहिता के नाम से किया है और जिसमें योग की गम्भीर विद्या को "गागर में सागर" की युक्ति से दो सौ श्लोकों में लोक कल्याण हेतु संकुचित करके रखा गया है । चाहे यह काम किसी अन्य के द्वारा ही गोरक्ष के नाम से किया गया हो । काशी संस्करण की विषय विस्तार व्यापकता तथा भाषा की शिथिलता जहाँ पाठकों के सामने आती है । वहीं इस प्रकरण में वैसा नहीं बल्कि समुचित रूप से विषयानुसार भाषा का भी प्रयोग हुआ है । दो शतकों में इसका विषय प्रतिपादन सही है ।

---

72. गो०सं०भू०प्र० ,पृ०

73

प्रथम शतक में प्रारम्भ के चार श्लोकों में विषय प्रयोजन,सम्बन्ध और अधिकारी का वर्णन किया गया है । एक श्लोक में योगाभ्यास का फल,एक में षडंग के नाम,पांच में आसनों का वर्णन,12 में षट्चक्रों का निरूपण,कुछ में दश नाड़ियों का स्थान सहित वर्णन,14 में दस प्राणों वायुओं का वर्णन,10 में शक्ति चालन,26 में महामुद्रा आदि का वर्णन,7 में प्रणवाभ्यास,प्राणायाम प्रशंसा, 4 में प्राणायाम प्रकार, 8 में नाड़ी शोधन का प्रकार वर्णित किया गया है ।

दूसरे शतक में 1-10 श्लोकों तक प्राणायाम का वर्णन,11-12 तक फलश्रुति 13-14 में अष्टांग योग में प्राणायामों की संख्या,15-16 में समाधि का स्वरूप,17-18 में योगसिद्धि के चिह्न-19-21 तक प्राणायाम से रोगनाश,22-31 तक प्रत्याहार का वर्णन 32-34 तक विपरीतकरिणी मुद्रा,35-37 तक अनाहत चक्र-38-39 तक काकी मुद्रा,40-41 तक विशुद्ध चक्र,42 में सूर्यमुखवचन, 43-51 चन्द्रामृतपान का फल तथा रसास्वादनानुभव, 52-60 तक धारणा वर्णन,61-77 तक ध्यान वर्णन और फलश्रुति,78-79 में कुण्डलिनी, शिवमिलन का वर्णन,80 में ध्यान योग की श्रेष्ठता,81-82 समाधि वर्णन 83-84 में ध्यान और समाधि विषयक वर्णन-95-100 तक के श्लोकों में सायुज्य प्राप्ति तथा योग शास्त्र की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है ।

73.गो0सं0,सं0 डा0 चमनलाल गौतम.पृ0 9-79

गोरक्षसंहिता का योग में स्थान और महत्व

डा० हजारी प्रसाद ने गोरक्ष विरचित पुस्तकों के विवेचन करते हुए "गोरक्षसंहिता" को गोरक्ष की निसन्देह कृति माना है किन्तु उनके जमाने में गोरक्षसंहिता का केवल एक प्रकरण, जो नेपाल पुस्तकालय से उपलब्ध करके "श्री प्रसन्न कुमार चटर्जी" ने बंगला अनुवाद के साथ छापा था। काशी संस्करण के आने पर गोरक्षसंहिता के व्यापक विषय की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। मैंने अपने विवेक से चटर्जी संस्करण को इस पुस्तक का एक भाग स्वीकार किया है। कादि मत में जहाँ कौलमत के साधन की प्रक्रिया, स्थान, पीठ, उपपीठादिकों का वर्णन किया गया है और शाक्त दर्शन के परिप्रेक्ष्य में कुछ आत्मा शक्ति, हंस बिन्दु पद और आकाशात्मक षट् पदार्थों का विषद् विवेचन है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता, जो नाथ मत की मुख्य दार्शनिक पक्ष है, उसकी विवेचना के लिए जीव का स्वरूप गति और प्रकार का वर्णन किया गया है[1]। पुनः गायत्री का स्वरूप वर्णन जीव का षट् चक्रों में कैसे गमन होता है, का वर्णन भी उपलब्ध होता है। दूसरे भूति प्रकरण में यद्यपि योग सम्बन्धि साक्षात् वर्णन भले ही न मिलता हो किन्तु परम्परा से

---

1. गो०सं० कादि प्र० 21, पृ० 136, त्वं च शक्तिरहं जीवः प्राणिनाम् प्राणसंज्ञकः ।
अग्निवायुमयो जीवकुलपिण्डे व्यवस्थितः ।।

योग का ही यह अध्याय भी स्वीकार करना चाहिए।क्योंकि जीव का प्रतिभास पांच-भौतिक पिण्ड में ही होता है ।उस पिण्ड में स्थित जीव की मुक्ति के लिए जहाँ अन्य नाथ योगियों ने षडंग योग या अष्टांग योग का उपदेश दिया है वहाँ गोरक्षनाथ ने जीव की एकाग्रता तथा स्थिरता के लिए अष्टसिद्धियों के अतिरिक्त एक विभूति सिद्धि का उपदेश भी दिया है । यहसिद्धि अन्य सिद्धियों से व्यतिरिक्त है । इस गोरक्षसंहिता का विभूति प्रकरण रसायन शास्त्र का विज्ञान है । इसमें पारद के योगों से,योगी के शरीर को ही अजरामर नहीं बनाया जा सकता अपितु अधिभौतिक ,आधिदैविक,आध्यात्मिक आदि दुःखों से बचने के लिए तथा ज्ञानेषणा,मानेषणा पुत्रेषणा आदि इच्छाओं की पूर्ति हेतु भी पारद का भक्षण अनिवार्य है । यही नहीं वित्तेषणा की पूर्ति और मृत्युभय को दूर करने के लिए भी पारद रसायन का भक्षण आवश्यक रूप से करना चाहिए । इसके साथ ही अजरता अमरता बिन्दु के उपर आधारित है[2] । बिन्दु का संरक्षण पारद गुटिका के मुख में रखने मात्र से ही जाता है[3] । तभी तो पारद की उपयोगिता बताते हुए कहा गया है कि एकमात्र रसराज शरीर को अजर-अमर बना देता है ।[4]

तृतीय प्रकरण या चटर्जी सम्पादित गोरक्षसंहिता योग का ही

2•मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।

3•गो०सं०वि०प्र० 7•133 मुखस्था वारयेत् शुक्रम् ।

4•उपोद्धात , एको यं रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ।

प्रतिपादन करती है ।यदि इसका परिणाह पूर्व प्रकरणों की तरह विस्तृत नहीं है केवल दो शतकों में योग का सांगोपांग वर्णन किया गया है । जबकि प्रथमशतक गोरक्षपद्धति का गोरक्ष शतक नाम से भी अविकल रूप में आता है । जिसमें योग के षडंगों का वर्णन किया गया है । आसन-प्राणरोध,प्रत्याहार धारणा और ध्यान-समाधि का वर्णन किया गया है । यद्यपि आसनों की संख्या चौरासी लाख योनियों के जीवों के आधार पर है यह अपने प्रकार की उपवेशन शयन आदि क्रियाओं को आधार मान कर अनन्त है।तो भी योग शास्त्रियों ने एक लाख योनि को समाकृति में विभाजित कर उनके आधार पर एक आसन की कल्पना की है। तब वे चौरासी मुख्य रूप से बन जाते हैं । उनका नाम निर्देश ही यहाँ दिया गया है । वास्तविक रूप से सिद्धासन और कमलासन जिसे पद्मासन भी कहते हैं, का ही पूर्ण विवेचन किया गया है । इन आसनों में तीन घण्टों से अधिक सुखपूर्वक रहने से सिद्धि मिल जाती है[5]। देहस्थ षोडश आधार षट्चक्र त्रिलक्ष्य,व्योमपंचक,एकस्तम्ब,नवद्वार और पंचदैवत को जानना योगी के लिए अनिवार्य है[6]। आधारचक्र चतुर्दलयुक्त व,श,ष,स वर्णमाला पृथ्वीतत्वयुक्त, पीतरंगयुक्त वर्गाकार,ऐरावत् बीज शोभित,ब्रह्मादेवता,हंसवाहन,डाकिनि शक्ति कामाख्य

5.यो०द० सुखं स्थिरमासनम् ।

6.गो०शतक,13-14, एकस्तम्भं नवद्वारं गृहं पंचाधिदैवतम् ।
स्वदेहे ये जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः ।।

पीठ पर स्थित का वर्णन किया गया है ।

स्वाधिष्ठान षड्दलयुक्त,व,भ,म,य,र,ल वर्ण शोभित जलतत्व श्वेत वर्ण,अर्द्धचन्द्राकार,वं बीजमकर वाहन,विष्णुदेवता,गरुड़वाहन,राकिनि शक्तियुक्त का वर्णन किया गया है ।

मणिपुर दशदलयुक्त ड,ढ,ण,त,थ,द,ध,न,प,फ, तेज तत्वयुक्त, रक्तवर्ण,त्रिभुजाकार,रं बीजयुक्त,मेषवाहन,रुद्र देवता,बृषभ वाहन, लाकिनि शक्ति से युक्त का वर्णन किया गया है ।

अनाहत चक्र द्वादश दलयुक्त हृदयस्थल में क,ख,ग,घ,ङ,च,छ,ज,झ, ञ,ट,ठ वायु तत्व युक्त,स्पर्शगुणयुक्त,धुम्रवर्णयुक्त,षट्कोणाकृति,यं बीजयुक्त,कृष्णमृगवाहन, ईशदेवता काकिनिशक्ति शक्तियुक्त का वर्णन मिलता है ।

विशुद्ध चक्र कण्ठ के पास सोलह दलों से युक्त अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ऋ, ॠ,ऌ,ॡ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः आकाशतत्वयुक्त,शब्दगुणात्मक,श्वेतवर्णयुक्तवृत्ताकार,हं बीजयुक्त, हस्ती वाहनयुक्त ~~हस्तीवाहनयुक्त~~ सदाशिवदेवता,शाकिनिशक्ति युक्त का वर्णन किया गया है ।

आज्ञा चक्र भ्रुवों के बीच में द्विदलात्मक है । ह,क्ष, अक्षरयुक्त मन तत्व,ॐ बीजाक्षरयुक्त मनतत्व,शंभुदेवता,हाकिनि शक्ति का वर्णन किया गया है ।

सहस्रार ब्रह्मरन्ध्र का अन्तिम स्थान है । इन चक्रों का

वर्णन करके इडा,पिंगला,सुषुम्ना,गांधारी,हस्तिजिह्वा,पूषा,यशस्विनी,अलम्बुषा,कुहू और शंखिनी नाम की दस नाड़ियों का वर्णन किया गया है । इन की स्थिति देह में कहाँ है इसका वर्णन भी किया गया है । उनकी क्रियाएँ भी वर्णित हैं । इसके बाद अजपा गायत्री का स्वरूप महत्व आदि वर्णित है । पुनः प्राणवायु के द्वारा उत्तेजित करके ,कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने का विधान दर्शाते हुए,शक्तिचालन मुद्रा के स्वरूप का तथा उसको अभ्यास करने वालों के नियमों का वर्णन किया गया है । उससे आगे महामुद्रा,खेचरीमुद्रा,उड्डीयान-बन्ध,जालन्धरबन्ध,महाबन्धादि की क्रियाओं की व्याख्या की गई है । पूर्व शतक के अन्त में प्रणवाभ्यास,प्राणायाम प्रकार,नाड़ीशोधन प्राणायाम विधि का वर्णन है ।

द्वितीय शतक में प्राणायाम के भेदों के पूरक,रेचक और कुम्भक का वर्णन किया गया है । इन प्राणायामों की मात्रा,अवधि स्थान और क्रिया का वर्णन किया गया है । प्राणायामों के परवर्ती साधनांगों के परस्पर विकासोन्मुख सम्बन्धों एवं परिणामों का निर्देश कर समाधि का स्वरूप बतलाया गया है । जिस प्रसंग में कुण्डलिनी का उल्लेख भी हुआ है । प्राणवायु के सहस्रार में पहुँचने पर मेघगर्जन आदि अनेकों वाद्यों का श्रवण होता है । जिससे योग सिद्धि की सूचना मिलती है । उसके बाद हठयोगात्मक प्रत्याहार का वर्णन किया गया है । इसके बाद पाँच प्रकार की धारणा का वर्णन है ।

इस प्रकार गोरक्षसंहिता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय योग है और उसकी सहायता से प्राप्त ज्ञान को प्राप्त करके "तत्वमसि" महावाक्य से पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता का प्रतिभास करना ही मुख्य अभिप्रेय लगता है । यह सहज योग की अपेक्षा मानव को हठ योग से मिल सकता है । यदि हठ योग में भी मानव को सफलता न मिले तो पारद और औषधियों के सेवन से अपने पिण्ड रूपी साधन को अजरामर बनाकर पुरूषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करके जीवन को सफल बनाया जा सकता है । गोरक्षसंहिता में नाथपन्थियों का अद्वैतवाद अक्षुण्ण रहा है । जैसा वे शिव और शक्ति को एक दूसरे से अभिन्न मानते हैं । शैवों के अर्धनारीश्वर की तरह ही वे भी स्वीकार करते हैं[7] । इनके मत में वैदिक ऋत् और सत्य की तरह सूर्य और आभा की भान्ति शिव और शक्ति ही विश्व के समस्त प्रपंच में परिव्याप्त है किन्तु नाथ इनसे ऊपर और संयोग करवाने वाला माना गया है[8] । अतः गोरक्ष संहिता के उपलब्ध संस्करणों से पता चलता है कि यह पुस्तक योग साहित्य में एक अपना अनूठा स्थान रखती है और विशेष रूप से विदेहमुक्ति की ओर इसका अधिक झुकाव दीखता है ।

---

7. सि०सि०सं० पृ० 26–27 शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः ।
अनन्तरं नैव पश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।।

8. वही, पृ० 36 प्रसरं भासते शक्तिः संकोचं भासते शिवः ।
तयो संयोगकर्त्ता यः संभवेद्योगीश्वराट् ।।

संस्करण :-

"क" गोरक्षसंहिता गोरक्षनाथ का एक अमूल्य ग्रन्थ है । इसकी उपयोगिता इसके भूतिप्रकरण और योग प्रकरण से लग जाती है । इतना होने परभी यह भारतवासियों का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि इस पुस्तक का प्रथमतः तो ज्ञान ही नहीं था जब कुछ विद्वानों ने अपने परिश्रम से नाथ सम्प्रदाय के जीवातु इस ग्रन्थ का अन्वेषण किया तो सर्वप्रथम एकत्रिंशतात्मक श्लोकयुक्त ग्रन्थ का ही पता चल सका था जो कि नेपाल दरबार के पुस्तकालय से हस्तलिखित कापी प्राप्त करके प्रसन्न कुमार जी ने 1897 ईस्वी में बंगला अनुवाद के सहित छापी थी । जिसकी प्रति बाद में ढूंढे नहीं मिलती । जैसा कि हजारी प्रसाद द्विवेदी जी "नाथ सम्प्रदाय-नामक पुस्तक में प्रतिपादित करते हैं । किन्तु बाद में विद्वानों की खोज से इसका मूल रूप हिन्दी टीका के साथ डा० चमनलाल ने लोगों की योग जिज्ञासा को पूरा करने के लिए इसे बरेली से छपवाया है । जो अब उपलब्ध है । जैसे ही डा० जनार्दन पाण्डेय ने काशी से इस का संस्करण छापा और उस पुस्तक के दो खण्डों को हमारे सामने लाया, वैसे ही हमारी आँखें खुली और हम गोरक्षसंहिता के बारे में कुछ अधिक जानने के लिए बाध्य हो गए । जहाँ तक प्रसन्नकुमार जी के संस्करण से हमें इस पुस्तक के योग सम्बन्धि ज्ञान का ही पता चलता है, वहीं काशी संस्करण से इसके तान्त्रिक कादि प्रकरण का तथा आयुर्वेदिक भूति प्रकरण का जहाँ पता लगा वहीं यह भी ज्ञात हो गया कि यह पुस्तक इतनी लघुकाय नहीं है जितना विद्वत्

समाज समक्ष पाया था । यह तो पंचप्रकरणात्मक एक लक्ष श्लोक सम्पन्न महाग्रन्थ है । अभी भी यह ग्रन्थ विद्वानों के लिए रहस्य बना रहेगा । क्योंकि पांच प्रकरण का संकेत मिलने पर भी वे प्रकरण कौन-कौन हैं इस बात का प्रमाण उपलब्ध पुस्तक में नहीं है । जबकि अन्तयन्त खोज के बाद भी कादि प्रकरण,विभूति प्रकरण तथा पूर्व उपलब्ध योग प्रकरण ही मिलते हैं ।

इन दो संस्करणों के अतिरिक्त डा०नागेन्द्रनाथ ने अपने शोध ग्रन्थ "गोरक्षनाथ" में अनेकों विद्वानों के उद्धरणों के आधार परकाशी संस्करण के अतिरिक्त,1897,प्रसन्नकुमार कविरत्न संस्करण तथा डा० बागची के द्वारा प्रदर्शित उदाहरण कौलावलि निर्णय की भूमिका में जो अकुलवीर तन्त्र में भी वैसे के वैसे ही मिलते दर्शाए गए हैं । परन्तु इसके अलावा लेखक ने अपने पास प्रभास पाटल पुस्तकालय से भगवान् त्रिवेदी के पुत्र श्री इन्द्र जी शर्मा द्वारा शकाब्द 1816,विक्रमाब्द 1950, सन् 1893 का काशी संस्करण भी मिला है । यह प्रसन्नकुमार के संस्करणवत् ही है । अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान तक इस पुस्तक के योग प्रतिपादक शतक द्वय के तीन संस्करण निकले हैं । सन् 1893, इन्द्र जी संस्करण,1897 का बंगला अनुवाद सहित,-प्रसन्नकुमार संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित बरेली संस्करण कादि प्रकरण का 1976 काशी संस्करण, विभूति प्रकरण 1977 का काशी संस्करण । इसके अतिरिक्त अभी तक इस पुस्तक के कोई अन्य संस्करण दृष्टिपथ में नही आए हैं । भविष्य में यदि विद्वान लोग अन्वेषण जारी रखेंगे तो हो

सकता है कि इस अमूल्य ग्रन्थरत्न का अवशिष्ट भाग भी यदि काल के कराल गाल में न पहुँचे हों तो उपलब्ध हो जाए । वास्तव में जहाँ तक लेखक का चिन्तन है, वहाँ तक इस ग्रन्थ के अवशिष्ट भाग आदि कादि हादि ही हो सकते हैं । क्योंकि आदि कादि हादि ये तीन तान्त्रिक चिन्तन प्रसिद्ध ही हैं । इन तीनों को अनन्तकाल तक वज्रदेह प्राप्त करके जानना चाहिए, और इसी जीवन में जानना चाहिए, इस उद्देश्य से विभूति प्रकरण का निर्माण हुआ होगा दृश्यते अनेन इति दर्शनम् व्युत्पत्ति के अनुसार, योग दर्शन ही वास्तविक दर्शन है\अन्य केवल उसके सहायक हैं । अतः नाथ मत में केवल दर्शन को देखने के लिए योग की आवश्यकता है । इससे शुद्ध निर्मल बुद्धि पटल में चिति स्वरूप आत्मा का आभास हो सके, अतः योग प्रकरण को भी उस में रख दिया गया होगा ।

यह केवल कल्पना है वास्तविकता तो भविष्य के गर्भ में है । सम्भवतः कोई योगी विद्वान् इसको भरपाई करके कृतार्थ कर देगा ।

आलोचनात्मक ग्रन्थ :-

गोरक्ष के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले संस्कृत में जहाँ अनेकों ग्रन्थ हैं वहीं लोक साहित्य भी यत्र-तत्र-सर्वत्र भारत में उपलब्ध होता हैं । संस्कृत में लगभग स्वयं गोरक्ष प्रणीत 30 की संख्या में ग्रन्थ मिलते हैं । लौकिक भाषाओं में भी डा० पीताम्बर के कथनानुसार "गोरखबानी की भूमिका में अनेकों ग्रन्थ माने गए हैं । हिन्दी-डा० बड़थ्वाल

के साथ-2 ,डा० कल्याण मलिक का "नाथ सम्प्रदायेर इतिहास",डा० हजारी प्रसाद का "नाथ सम्प्रदाय" डा० नागेन्द्रनाथ का "गोरक्षनाथ" डा० जनार्दन पाण्डेय की कादि तथा विभूति प्रकरण की भूमिका,किसी अज्ञात व्यक्ति का संस्कृत में लिखा "गोरक्षसिदान्तसंग्रह" डा० मोहनसिंह का "गोरक्षनाथ एण्ड मिडिएवल हिन्दु मिस्टिसिजम्" डा० ब्रीग्स का "गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज्" आदि ग्रन्थ गोरक्षनाथ सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए देखे गए हैं । जिनमें गोरक्षनाथ के द्वारा 36 तत्वों का, जहाँ विशेष वर्णन हुआ है,वहाँ केवल दर्शन का भी विशेष वर्णन किया गया है । शिव शक्ति के संयोगोपरि नाथ के स्थान का भी प्रतिपादन किया गया है । जिससे नाथों के चिन्तन की भूमिका का विशेष परिचय प्राप्त किया जा सकता है ।

अथ तृतीयोऽध्याय : रसप्रकरणम्

रसनिश्चित :-

गोरक्षनाथ वर्तमान युग में एक सिद्ध महात्मा और अमर योगी कहे गए है। इनकी प्रसिद्धि जहाँ हठ योग के कारण लोगों में हुई, वहाँ ये रस सिद्धि के कारण भी ये संसार के लोगों को प्रभावित कर, अपने को अमरत्व प्रदान कर गए । वास्तव में जीवन्नरो - भद्रशतानि पश्येत्" इस युक्ति के अनुसार मानव का शरीर सैकड़ों कल्याणों का आगार है । उसके स्थिर रहने पर ही कर्म करके मानव सबका कल्याणकर सकता है । तभी तो "शरीरमाद्यं-खलुधर्म साधनम्" इस वाक्य में उसका मूलाधारत्व सिद्ध किया गया है । जैसे पिण्ड की आन्तरिक स्थिति को जानने के लिए अथवा शिव शक्ति के संयोग के लिए या पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता को स्थापित करने के लिए ,कुण्डलिनी के स्थान, मूलाधार की श्रेष्ठता और अनिवार्यता आवश्यक है । छिन्ने मूले न पत्रं न शाखा" के सिद्धान्त के अनुसार उसके विना योग के मार्ग का सेतु ही ढह जाएगा । अतः वेद में संकेतित "रसं वै प्राप्य रसो वै भवति सः" कि जीव, जब रस को प्राप्त कर लेगा तब वह भी समरस बनकर अमरत्व को प्राप्तकर सकेगा" के सिद्धान्त को विस्तार दिया । अपनी संहिता में गोरक्षनाथ ने उस सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए एक अलग विभूति प्रकरण की स्थापना की । उन्होंने लौकिक भाषा के दोहों में कहा कि -

निहचल धरि बैसिवा पवन निरोधिबा कब न होईगा रोगी ।
वरस दिन में तीनि बार काया पलटिवा नाग बंग वनास्पति जोगी ।

क्रिया न स्वाति वेद न रोगी रसायणी अर जाचिभाय ।
बूढ़ा न जोगी सूरा न पौहि पाछै धाव बतनो न माने श्री गोरक्षनाथ ।।(1)

---

1 • शबदी, 92 – 210

इस कथन को सिद्ध करने के लिए विभूति प्रकरण का निर्माण किया है ।

यद्यपि रसतन्त्र का प्रादुर्भाव ब्राह्मणकाल से ही हो चुका था । क्योंकि "ऐसा कोई ज्ञान संसार में नही है । जो वेद में नही पाया गया हो । तो भी रसायन विद्या को व्यवस्थित रूप में, बौद्धाचार्य नागार्जुन ने ही स्थापित किया । रस तन्त्र के ग्रन्थों के लेखक, भैरव नित्यनाथ, मन्थान भैरव, काकचण्डीश्वर आदिकों में, नागार्जुन प्रसिद्ध रहे हैं । इनका ग्रन्थ "रसरत्नाकर" जिसे लोग "रसेन्द्रमंगल भी कहते हैं मिलता है और यह केमिस्ट्री के इतिहास का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है । ईस्वी शताब्दी के नवें शतक में "अमोघ राज्य काल में लिखे गए "कल्याणकारक संहिता" के रचिता उग्रादित्य आचार्य ने चौबिसवॉ परिच्छेद रसरसायनपरक लिखा है । नागार्जुन बौद्धाचार्य थे तथा गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भी कुछ ऐतिहासिकों के अनुसार प्रथमतः बौद्ध थे और नाथ सिद्ध बने । किन्तु गोरक्षनाथ की परम्परा बिल्कुल भिन्न है । इसमें कापालिकादि भेद, जिनका वर्णन बारहवीं शताब्दी के ग्रन्थ रसार्णव में मिलता है, इसी में लीन हो जाते हैं ।

वास्तविकरूप से रसायन का विषय आयुर्वेद का है, तो भी तान्त्रिकों विशेष रूप से नाथ सम्प्रदाय के सिद्धों द्वारा इसका प्रचार और प्रसार किया गया है ।

2•वा०प० न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दो--- ।

क्योंकि हठयोग से जब दीर्घ जीवन प्राप्त नहीं हो सका तब उन्होंने रसायन विद्या से लम्बे जीवन की प्रक्रिया को प्राप्त किया । "रसरत्न समुच्चय" वाग्भट्ट ने 13वीं शताब्दी में बनाया था । उन्होंने उसमें रस को मुक्ति देने वाला माना[3] । इसीलिए गोरक्षनाथ ने भी रसतन्त्र को काया परिवर्तन का कारण एवं दारिद्र्य नाश का हेतु माना था । इनकी संहिता का यही प्रकरण अन्य संहिताओं से विशिष्ट है । जिन अणिमा, महिमा, लघिमा, आदि आठ प्रकार की सिद्धियों में भूति की सिद्धि सामान्या मानी गई है और सब सिद्धियों की नियन्त्रक स्वीकार की गई है । जो भग ऐश्वर्य, ज्ञान गुण, धर्म, वैराग्य आदि का नाम है । इसे भूति प्रकरण में रसविज्ञान 1-19, रसतन्त्र 1-112, 116, 119, रसचक्र 1-118, रसोपनिषद् 1-115 भूतितन्त्र 2-101, 3 भूतिशास्त्र, 2-4, 3 आदि शब्दों से कहा गया हैं । यह अकेला रसराज शरीर को अजर-अमर बना देता है । वह रस है क्या चीज ! जिससे शरीर की आवश्यकतानुसार अमरता हो जाती है । इस विषय का चिन्तन करते हुए नाथसिद्धों ने बतलाया है कि "जैसे माता पिता के शोणित शुक्र से शरीर का प्रकृति चेतनात्मक संयोगज शरीर का निर्माण होता है, वैसे ही शिवरूपार्वती के शुक्र शोणित से पारा और अभ्रक रूप के सम्पर्क से शरीर की अमरता सम्भव है । वास्तविक रूप से आयुर्वेद के मर्मज्ञ इस बात को

---

3. गो०सं० , एको यं रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ।।

जानते हैं कि देह का स्थिरिकरण पारद के ऊपर निर्भर करता है । जैसे समस्त चेतन आत्माओं का लय परमात्मा में होता है उसी प्रकार सारे द्रव्यों का लय पारे में हो जाता है, सारी काष्ठ औषधियों का लय नाग, नागका वंग में, वंग का ताम्र में, ताम्बे का रौप्य में, रौप्य का सुवर्णमें और सुवर्ण का पारद में लय हो जाता है । सारा जगत चर अचर रूप से दो प्रकार का है । जरायुज-अण्डज, उद्भिज और स्वेदज योनियां प्रथम श्रेणी में तथा उद्भिज की वे श्रेणियाँ जो अर्धचेतन मानी गई हैं और लतागुल्मादि के रूप में संसार की सृष्टि में व्याप्त है वे आती है । इन चराचर या योनिज, अयोनिज समस्त सृष्टियों की परिणति पारद में होती है । जैसे चर वस्तु से हम लें तो उससे या उनमें सर्वप्रथम खाए हुए का परिणाम रस होगा । इससे रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से स्नायु, स्नायु से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से शुक्र पैदा होता है[4] । पुनः "आत्मा वै पुत्र नामासि के आधार पर शुक्र से अपने आप ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है और वहाँ पर भी शुक्र बदलता नहीं । अतः चर वस्तुओं की अन्तिम परिणति शुक्र में होती है वैसे ही स्थिर वस्तुओं परिणति भी शुक्र में होती है । जो घी और तेल अन्तिम परिणति के रूप में माने गए हैं वे भी बाह्य रूप में जब ये शरीर रूपी यन्त्र के अन्दर डाले जाते हैं तो पकते हुए अन्त में शुक्र रूप में परिणत हो जाते हैं । अन्त गता सो मता, न्याय से सृष्टि के अन्दर समग्र चीजे शुक्र का विपरिणाम माना

4- गर्भोपनिषत् ,1- परस्परं सौम्यगुणत्वात्षड्विधोरसो, रसाच्छोणितं, शोणितान्मांसं मांसान्मेदं, मेदसः स्नावा, स्नाम्नोऽस्थिन्यः, अस्थिभ्यो मज्जा, मज्जः शुक्रम् ।

जा सकता है । सब कुछ नष्ट हो जाने पर शुक्र ही शेष रह जाता । तभी मीमांसा का शेष शेषी यन् भी अपनी सफलता का डंका बजाता है ।

जब पिण्ड ब्रह्माण की एकता स्थापित करने की प्रक्रिया की बारी आती है तब शुक्र की रक्षा कर कुण्डलिनी के बल पर कर के प्राणों के घोड़े पर आत्मारूपी सवार को बिठाकर, सांकरीगली ब्रह्मरन्ध्र से "कार्यं वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्" की शिव प्रतिज्ञा को सार्थक करते हुए ब्रह्माण्ड में अपने को समा देता है तथा पुनरावर्तन से अपकाश प्राप्त कर शेषमात्र रह जाता है । वहाँ भी तादात्म्य से जीव शुक्र का गमन माना जाता है । अतः शैव मतानुसार पशु के पाश का विनाश होते ही पति की स्वरूपता, शिवत्व प्राप्ति या मोक्ष माना गया है । उस शिवता में जो तेजस्विता या उर्जा समष्टिरूप से है उसके पास जाता है, उसे पारद या रस कहते हैं ।

यद्यपि साहित्यकार श्रृंगार, हास्य, करुणरौद्रादि नौ को रस कहते हैं । दार्शनिक और ज्योतिष वाले मधुर आम्ल कटु कषाय तिक्त और लवण नामक छः को ही रस मानते हैं । आयुर्वेद वाले सप्त धातुओं में खाए हुए के प्रथम परिणाम को रस मानते हैं । तो रसो वै सः के आधार पर पारद को ही रस कहना चाहिए । यह रस पाँच प्रकार का कहलाता है - रस, रसेन्द्र, सूत, पारद और मिश्रक[5] ।

विभूति प्रकरण के प्रारम्भ में रस की उत्पत्ति बतलाते हुए, शिव, लिंग, भागवत, पुराण प्रसिद्ध तारकासुर बद्धेच्छु देवताओं द्वारा प्रार्थित शिव पार्वती से संलिप्त हो हिमाचल की गुफा में जब अनेक दिनों तक तल्लीन हो गए, तभी अग्निदेव ने उन्हें लोक कल्याण के लिए

---

5. विभूति प्रकरण, 1.1.10 रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।

उत्थापित करने हेतु, देवताओं ने नियुक्त किया । शिव उठे बिन्दुपात हुआ । अग्नि को शिव का कोपभाजन बनकर शिव बिन्दु धारण करना पड़ा । दहन जलने लगा, गंगा में विसर्जन किया बहता हुआ शिव बिन्दु सागर में पहुँचा, बड़वानल रूप बना । लहरों से किनारे आकर कुमार का रूप धारण किया । कृत्तिकाएँ आईं । कुमार षडानन बनकर सब का दूध पीने लगा । जब यह गंगा में बह रहा था तो पाँच कूपों में रुका, वहीं इसका अंश रह गया । जो पारद के रूप में परिवर्तित होकर लोगों को मुक्ति देने वाला बन गया । इसीलिए रस के पाँच नाम या भेद माने जाते हैं । उनकी निरुक्ति भिन्न-भिन्न मानी जाती है । जैसे - समस्त धातुओं का निचोड़ होने से इसे रस कहा जाता है । जरा और मृत्यु का विनाश करने के लिए इसे निचोड़ा जाता है । इसलिए भी इसे रस कहते हैं[6] रोगसे दुखी लोगों को यह मुक्ति देता है।।[7] इस रस को संसार के समस्त रसों का ईश्वर माना गया है। तभी तो पाशुपत दर्शनों अर्थात् नाकुलीश, पाशुपत, शैव प्रत्यभिज्ञा और रसेश्वर को सबसे विलक्षण और प्रधान माना गया है । इसके कारण अन्त में रखा गया है । स्थूणा अरुन्धती न्याय से या गोपुच्छन्याय से भारतीय दर्शनों की परम्परा रही है कि वे स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाते हुए वेदान्त की तरह अन्त में सबसे सूक्ष्म दर्शन को रखते हैं । पाशुपत दर्शनों में भी वेदान्त स्थान

6· वि०प्र०भूमिका, रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते । यद्वा जरामृत्यु विनाशाय रस्यतेऽसौ रसः स्मृतः ।

7· वही, रोगपंकादिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ।

में प्रत्यभिज्ञा दर्शन माना गया है । रसेश्वर रस उसकी अपेक्षा अन्त में रखा गया है । जिससे यह प्रतीत होता है कि माधवाचार्य जी भी रसेश्वर को इन सब दर्शनों का गुरु मानते थे ।

रस का नाम पारद भी आया है । रस को पारद इसलिए कहा गया है कि रोग कीचड़ में फँसे लोगों को यह धातु पार निकाल देती है[7]। संसार में दल-दल में फँसे लोगों को पार लंघाने वाला अर्थात् मोक्ष देने वाला होने के कारण पारद कहलाता है ।[8] इसके भव का वीर्य होने के प्रमाण में रसार्णव तन्त्र में लिखा है कि-पार्वती देवी, मोक्ष तत्व को देने वाले इस रस को पारद कहा गया है । यह मेरे अंग-अंग तथा प्रत्यंगों से पैदा हुआ है । सुप्तावस्था में रहने पर यह मेरे समान ही है । यह मेरे शरीर का रस है तब ही इसका नाम रस भी पड़ा[9]। यह चार प्रकार का माना गया है । सफेद, लाल, पीत तथा काला[10]। जिनको क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संज्ञा भी दी गई है ।

इस पारद को रसेन्द्र भी कहा गया है । क्योंकि यह सब रसों का राजा माना गया है[11]। सूत की संज्ञा इसलिए दी गई है कि पारद देह को वज्र सदृश बना देता है ।[12] जिसे जगत् का सबसे बड़ा भय मृत्यु भी नहीं सता सकती । यह मिश्रक नाम से इसलिए पुकारा

---

7. विभूति प्रकरण भूमिका, रोगपंकादिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ।

8. सर्व दर्शन संग्रह, पृ0 376 संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः ।

9. स0द0सं0 376, पारदो गदितो यस्मात्परार्थं साधकोत्तमैः । सुप्तो यं मत्समो देवी । मम प्रत्यंगसम्भवः । मम देवरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते ।

10. रसार्णव तन्त्र, अत्र भेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम् । श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तुभवेत् ।

11. विभूति प्रकरण, रसानामधिराजत्वात् रसेन्द्र इति कीर्तितः ।

12. वही, भूमिका, "ख" देह लोहमयीं सृष्टिं सूतेऽतः सूत उच्यते ।

जाता है क्योंकि सार धातुओं का तेज मिलकर इसमें रहता है[13]। अतः इसके सेवन से देवता निर्जर बने, अमर कहलाए। रसेन्द्र का सेवन कर नागलोक दीर्घजीवी बने। उन देव और नागों ने पारद के रहने से उन कूपों को मिट्टी से दबा दिया। जिस कारण अब वह पारद बड़ी कठिनाई से मिल सकता है। रस का विविध प्रकार का वर्णन ऋग्वेद, अथर्ववेद, पुराण तन्त्र शास्त्र, योगशास्त्र और आयुर्वेद में मिलता हैं। जैसे रसेन्द्रसार में इसका वर्णन करते हुए कहा हैकि-पारे की थोड़ी मात्रा देने से अरुचि का कोई प्रसंग ही नहीं आता। थोड़ी सी मात्रा असाध्य रोगों को भी दूर कर देती है[14]। साध्य रोगों में काष्टादि मूल और आसवादि प्रयोग किया जाता है किन्तु असाध्य रोगों में नहीं। केवल पारद को ही असाध्य रोगों में देने से लाभ होता है। नहीं तो मृत्यु हो जाएगी। क्योंकि चरककार नेकअसाध्य रोगों में औषधि का निषेध किया है।[15] जबकि सुश्रुतकार ने अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होते ही मृत्यु को अवश्यम्भावी कहा है। केवल जप तप एवं रसायन ही उससे बचने का उपाय है।[16] अगस्त्य का कथन है कि"रसायन तप जप एवं योगाभ्यास से सिद्ध महात्मा काल मृत्यु को भी जीत लेते हैं। इसके नामों की संख्या रसेन्द्रकार ने सात बतलाई है – रसेन्द्रः पारदः सूतः सूतराजश्च

---

13. सर्वधातुगतं तेजो मिश्रितं यत्र तिष्ठति। तस्मात्सः मिश्रकः प्रोक्तः।

14. रसेन्द्रसंग्रह, प्रथम अ0 1, अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचे प्रसंगतः। क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिकोरसः। साध्येषु भेषजं सर्वमिरितं तत्ववेदिना। असाध्येष्वपि दातव्यो रसो तः श्रेष्ठ उच्यते।

15. चरकसूत्र, साधनं न तु असाध्यानां व्याधिनां उपदिश्यते।

16. सु0सं0, अ0 18. ध्रुवं तु अरिष्टे मरणं ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः। रसायन तपो जप्य तत्परैः वा निवार्यते।

सूतक शिव तेजो रसः सप्तनामान्यव रसस्य तु । ऐतानि रसनामानि तथान्यानि यथा शिवे" ।

"अ01-7,8 ।। अर्थात् शिव के जितने नाम हैं वे सारे पारद के माने गए हैं । यह 24-25

सौ फुट गहरा खोदने पर इटली जर्मनी,चीन,जापान रूसादि देशों में अधिक रूप से पाया जाता

है । यह शिंगरफ आदि के रूप में भी मिलता है । इसका मिश्रण कई अपद्रव्यों में मिलता है ।

जहाँ इसे रासायनिक क्रियाओं के द्वारा उर्ध्वपातन,तिर्यन्,अधोपातन आदि यन्त्रों की सहायता

से अलग किया जाता है तथा खानों से उपलब्ध पारद का इन यन्त्रों द्वारा शोधन क्रिया जाता है।

इसका घनत्व 13^{0}6 होता है और यह साधारण तापमान में बना रहता है । बर्फ के बीच में

जम जाता है । आग के संयोग से उड़ जाता है । चान्दी सोना लोहा आदि धातुओं के साथ

संयोग से यह उन पर पुत जाता है । पारद का संयोग जब गन्धक अर्थात् पार्वती रूपी पृथिवी

के रज से होता है तो पीसने पर उसकी कज्जली बनती है । पारद जितना गन्धक के बीच

में लीन होता है उतना अन्य किसी चीज में उसका लय नहीं होता । इसलिए इन दोनों को

शिव वीर्य और पार्वती का रज कहा गया है ।

रस की अवस्थाएँ :-

अथर्ववेद के आधार पर बने आयुर्वेद साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया जाता है । आत्रेय सम्प्रदाय, धन्वन्तरी सम्प्रदाय और सिद्ध या रसवैद्य सम्प्रदाय

स्वर्ण लौहादि धातु घटित योगों का रोगापनय के लिए तथा देह स्थिरता हेतु नाथ सम्प्रदाय वालों ने ही प्रयोग किया । इसका मतलब यह नहीं कि स्वर्ण लौह माणिक्य मुक्ता, प्रवालादि का अन्य मतावलम्बी अपने ग्रन्थों में प्रयोग नही करते, अपितु परिपाटी बद्ध रूप से नाथ सम्प्रदाय वालों ने ही रस सम्प्रदाय को अपनाया । वैसे तो दो हजार वर्ष पूर्व बौद्धकाल से ही रस की परिपाटी प्रारम्भ हो चुकी थी । आयुर्वेद के चरक, सुश्रुत, काश्यप संहिताओं में पारद का बाह्य और आन्तरिक प्रयोग दीखता है । बौद्धों ने आर्यावर्त से बाहर उपजने वाले पारे को वहाँ जाकर उसके उपयोग को समझा तथा उपयोग किया । उन्हीं के जमाने में यह परिपाटी सबसे प्रसिद्ध हो गई । जैसा कि- उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमो मूलकादिभिः । अधमः शस्त्रदाहाभ्याम् -" आदि श्लोक में सर्जरी और काष्ठादि मूलक उपचार से रस उपचार को उत्तम माना है । ~~यही कारण है कि~~ यही कारण है कि आचार्य शार्ङ्गधर को भी रस की उपयोगिता बतलाते हुए कहना पड़ा कि "आसव धातु और रस जितने पुराने होते जाएँगे, उतने ही उपयोगी माने जाएँगे[1] । अतः रस एक समय बन जायगा तो काष्ठौषधियों की तरह एक वर्ष में प्रभाव हीन नहीं होगें अपितु इसका प्रभाव बढ़ता जाता है । अतःएव रस वैद्यों ने बाद में अनेकों ग्रन्थों

---

1. शार्ङ्गधर पद्धति, पुराणा स्युः गुणैयुक्ता आसवाधातवो रसाः ।

की रचना की । जैसे -तन्त्र संहिता, सिद्धान्तसंग्रह आदि रुद्रयामल तन्त्र, नागार्जुन तन्त्र, अगस्त्य संहिता, गोरक्षसंहिता, ब्रह्मसिद्धान्त, कपिलसिद्धान्त, रसार्णव, रसरत्नप्रदीप, रसरत्न-प्रवेश समुच्चय और रसेन्द्रसार संग्रह आदि ।

पारद को ही रस कहते हैं । वह दो प्रकार का माना जाता है । शुद्ध और अशुद्ध ।। शुद्ध पारद की मुख्य तीन अवस्थाएं मानी गई है -मूर्छित, मृत तथा बद्ध ।

1. जब पारद कई वर्णों का हो उसमें घनत्व और चंचलता तरलता न हो, तो उसे मूर्छित कहते हैं ।[2]

2. आर्द्र होना, घनत्व चमक, गुरुत्व, चंचलता आदि जिस पारे में न दीखें, वह मृत है ।[3]

3. जो क्षय रहित, थोड़ा द्रवित होने वाला, तेजोमय, स्वछन्दचारी, संस्कार में विकसित होने वाला हो वह बद्ध कहलाता है ।[4]

इन अवस्थाओं से युक्त पारद लोगों की व्याधियाँ हरता है । जैसे सोमदेव ने रसेश्वर सिदान्त में कहा है कि पारद और पवन मूर्छित होने पर रोगों का हरण करते हैं । स्वयं मृत होने पर जिलाते हैं और बद्ध होने पर आकाश में चलने की शक्ति देते हैं ।[5]

---

2. नानावर्णो भवेत्सूतो विहायघनचापलम् । लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्छितं तं वदन्ति हि ।

3. आर्द्रत्वं घनत्वं च तेजो गौरव चापलम्, यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम् ।

4. सर्वदर्शनसंग्रह पृ० 38, अक्षतश्च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ।
स्फोटनं पुनरावृत्तौ बद्धसूतस्य लक्षणम् ।

5. वही, पृ० 380, मूर्छितो हरति, व्याधीन्मृतो जीवयतिस्वयंम् ।
बद्धः खेचरतां कुर्याद्रसोवायुश्च भैरवि ।

नवीं शताब्दी के उग्रादित्याचार्य ने "कल्याणकारक" ग्रन्थ में शुद्ध पारे के सेवन का फल वर्णित करते हुए लिखा है कि - अमृत के मूलरूप पारद को मूर्छित कर भक्षण करने से वीर्य रोगहीन हो जाता है। इससे अत्यधिक बल प्राप्त होता है[6]। नित्यनाथ सिद्ध ने भी "रसरत्नाकर" ग्रन्थ में पारद की महिमा करते हुए कहा है कि पारद की मालिश, झुर्रियों और सफेद बालों को समाप्त करने वाली मानी गई है। उसकी एक वर्ष तक मालिश करने से दिव्यदेह की प्राप्ति होती है और वह हजार वर्ष तक जी सकता है[7]।

रसशोधन प्रकार :-

जिस प्रकार नमक और मीठा आदि रस जल में मिल जाते हैं और आंख से देखने में नही आते। उसी प्रकार से समस्त द्रव्यों के साथ विलिन होने की शक्ति रखने वाले पारद में भी दोष रहते हैं। जो पारद मानव को शुद्ध करके देवता बना सकता है वही सदोष होकर उसका विनाश भी कर सकता है। अतःएव गोरक्षसंहिता के विभूति प्रकरण में दोषों के परिहार का यत्र-तत्र संकेत मिलता है। यद्यपि संकलित रूप में उनका वर्णन वहाँ नही मिलता तो भी संकेत अनेकत्र दिए गए है।

---

6. कल्याणकारक, 24-47 तं संमूर्छितमेव वामृतमलं संभक्ष्य मंक्षयम् ।
वीर्यं रोग विहीनतामतिवलं प्राप्नोति मर्त्यः स्वयम् ।

7. रसरत्नाकर, 5-5, अनेनादेवर्तं सम्यग्वलिपलितनाशनम् ।
वत्साद दिव्यदेहः स्याज्जीवेत् वर्षसहस्रकम् ।।

ये दोष रस में क्यों पैदा हुए । इसके बारे में एक पौराणिक आख्यान है जो "रसरत्न-समुच्चय" में और "रसराजपद्धति में इस प्रकार वर्णित है – कि रस के प्रभाव से मनुष्य देवता तुल्य बली हुए एवं प्रभाव वाले बन गए । तब इन्द्र ने रुद्र की प्रार्थना की, और अपनी चिन्ता उनसे बतलाई । तब रुद्रनेपारद को सदोष बना दिया । जो उनको दूर कर पारद को शुद्ध करना जान पाएगा, वह उसके प्रभाव का पूर्ण लाभ प्राप्त करके देव तुल्य बन जाएगा । अतः ज्वाला मुखियों के समीप में मिला हुआ रस तो दोष रहित होता है किन्तु अन्यत्र भूगर्भ से मिला हुआ पारद प्रायः दोष युक्त ही होता है । ये दोष निम्न प्रकार से वर्णित हैं :–

1. विष वहनि तथा मल ये तीन दोष हैं ।

2. मल वह्नि, भूमि उन्मत, और शैल ये पांच दोष हैं ।

3. मल वह्नि, विष, शैल, चपल, वंग और नाग ये सात दोष हैं ।

4. नाग, वंग, अग्नि–चापल्य, असह्य, विष, गिरि और मल ये आठ दोष हैं ।

5. विष वह्नि और मल ये तीन स्वाभाविक दोष हैं । भूमिजा, गिरिजा, जलजा, नागजा, वंगजा, ये औपाधिक दोष हैं । इन औपाधिक दोषों को कुछ एक रसप्रतिपादक ग्रन्थों में सप्त कन्चुक नामों से भी पुकारा गया है । जैसा कि रसेन्द्रसार ग्रन्थ में पर्पटी, पाटली [8]

---

8. विषं वह्निर्मलं चेति त्रय इत्येके । मलं वह्निः भूः उन्मतः शैलश्चेति पंच इत्यन्ये । मलविषाग्निगिरिजचपलवंगनागेति सप्तेत्यपरे । नागोवंगोऽग्निश्चापल्यमसह्यश्च विषं गिरि मलं चाष्टौ । विषं वह्निर्मलं चेति त्रयो नैसर्गिका दोषा । भूमिजा गिरिजाजलजानागजा वंगजा एते सप्तौपाधिकाः दोषाः । भूति प्रकरण भूमिका "घ" ।

भेदी,द्रावी,मलकरी तथा अन्धकरी तथा । अन्धकरी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः ।

रूप में वर्णन आता है ये औपाधिक दोष रस में स्वभावतः तीन धातुओं पर वायु का प्रभाव पड़ने से उत्पन्न हो जाते हैं । परन्तु उक्त द्रव्य में पारद का मर्दन करने से ये दोष दूर हो जाते हैं ।[9]

अगर इनका निहरण न किया जाए, तो नाग दोष से शरीर में व्रण हो जाते हैं । वंग दोष से कुष्ठ मल से जाड्य, वह्नि से दाहकता,चपलता से वीर्य स्खलन,विष से मरण गिरि से मूर्च्छा औ सह्याग्नि से फोड़ें हो जाते हैं । इसीलिए संहिता में कहा गया है कि " वैद्य को रस की शुद्धि करके ही उसका प्रयोग करना चाहिए ,क्योंकि शुद्ध रस ही अमृतमय होता है और दोषयुक्त साक्षात् विष ही होता है ।"[10]

पारद शोधन भी दो प्रकार का होता है -सामान्य और विशेष । रस-तन्त्रों में संस्कार विधियाँ अनेक रूपों में वर्णित हैं । संस्कार नाम विशेष गुणों के आधान का है। रस में विशेष गुणों के आधान से पूर्व वैद्यों का जातकर्मादि द्वारा स्वकीय षोडश संस्कारों से विशेष गुणाधान होना आवश्यक है । उसके लिए गुरु का ज्ञान,रसशाला,पात्र,यन्त्र रसौषधियाँ

---

9. रसेन्द्रसार 1-27, षोडशांशैर्भिषक् चूर्णैरेकत्र मर्दयेद्रसम् ।
एवं संशोधितः सूतः सप्तकञ्चुकवर्जितः ।।

10. तस्माद्रसस्य संशुद्धिं विदध्याद्भिषजाम्बरः ।
शुद्धोऽयममृतं साक्षाद्दोषयुक्तो रसो विषम् ।।

अघोर मन्त्र की संख्या और साधन का ज्ञान अपेक्षित है । तभी रसकर्म में सफलता मिल सकती है । वे रस संस्कार ये हैं :-

"स्वेदन, मर्दन, मूर्छना, उत्थापन, पातन, दीपन, निरोधन, नियामन, चारण, संद्रवन, जारण, पुनःपातन ग्रासकरण, रन्जन, सारण, क्रामन, वेधन और शरीरांगोपयोगिता । ये 18 हैं [11] । यद्यपि गोरक्ष के गिने हुए इन संस्कारों का अन्य बहुत से ग्रन्थकारों ने समर्थन किया है तो भी अधिकतर रस विद्वानों का आठ संस्कारों पर ही अधिक आग्रह देखने को मिलता है । जैसे रसपद्धति, रसरत्नसमुच्चय, धन्वन्तरी संहिता, रसराजसुन्दर, वाग्भट्ट रसेन्द्रादि ग्रन्थों में देखने को मिलता है [12] ।

1. स्वेदन :-

शिग्रु को नीम्बू आदि के रस में मर्दन कर उर्ध्व पातन यन्त्र से पारद को प्राप्त करो, वह पसीने की तरह, शिग्रु से निकलने के कारण किशोरे में आ जाता है । यह स्वेदन संस्कारजन्य पारद होगा । इससे पारे के दोष शिथिल हो जाते हैं ।

2. मर्दन :-

रसग्रन्थों में निर्दिष्ट औषधियों के या खारे के सारे आम्लों के अथवा कांजिक के साथ पारद का पीसना ही मर्दन कहलाता है । इससे बाह्य दोषों का नाश होता है ।

---

11. गो०सं०भूति प्र० 3.4-6

12. रसेन्द्रसार, 1.54 इत्यष्टौ सूतसंस्काराः कर्तव्याः प्रथमं बुधैः ।
दीपनान्तेति संस्काराः सूतस्याष्टौ प्रकीर्तिताः ।।

3. मूर्च्छन :-

मर्दन में प्रयुक्त औषधियों के साथ पारद का एकीकरण होना ही मूर्छन कहा जाता है । इससे पारद के मल, वह्नि, विष दोनों का नाश होता है ।

4. उत्थापन :-

मूर्च्छित रस का पुनः अपने स्वरूप में लाना उत्थापन कहलाता है । इससे मूर्च्छित अवस्था के दोष नष्ट हो जाते हैं ।

5. पातन :-

ग्रन्थकारों के अनुसार मिलाई हुई औषधियों सहित मर्दन किए हुए पारद को उर्ध्व अधः तथा तिर्यक् यन्त्रों से अलग करना पातन कहलाता है ।

6. रोधन :-

सिन्धा नमक से युक्त जल में पारे को तीन दिनों तक रखना निरोधन या रोधन कहलाता है इससे मिलाई हुई औषधियों तथा धातुओं का तेज पारद में संगृहीत किया जाता है ।

7. नियमन :-

दुबारा उर्ध्वपातन यन्त्र से स्वेदन करने का नाम नियमन है । इससे पारे की चंचलता चली जाती है ।

8. दीपन :-

खनिज पदार्थों या कन्दमूलादि वन औषधियों के साथ पारद को घड़े में रखकर बतलाई गई औषधों के रस को डालकर तीन दिन तक रखना दीपन कहलाता है । इससे पारा ग्रहण के योग्य बन जाता है ।

रस प्रयोग से होने वाली सिद्धियाँ

जब से प्राणिमात्र का जन्म हुआ है तब से ही मोक्ष के लिए अर्थात् दुख से छूटने के लिए उसके प्रयत्न जारी हो गए थे । तभी पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष को अन्तिम स्थान मिला है । "धर्मार्थकाममोक्षेषु " कहकर इन्होंको शास्त्रों में गिना जाता रहा है[13] । अतः पुरुषार्थ त्रय को प्राप्त करने के लिए कर्म प्रधान योनि मानव शरीर का चिरस्थायित्व अपेक्षित है । वह मोक्ष भी जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति के रूप में शास्त्रों में गिना गया है । गोरक्ष संहिता के विभूति पाद में अनेकत्र पारद सहयोग से इन मुक्तियों को सुलभ बताया गया है । 5•176,6•167 195,247,292,337,471,480,481,7•144,145,149,152,222,143 तथा 8•45,90 । इन पद्यों के पढ़ने से पता चलता लगता है कि पारद के सेवन से ,स्पर्श,दर्शन,शोधन, आदि से मानव दोनों प्रकार की मुक्तियों का पात्र बन जाता है । तभी तो पारद को समस्त सिद्धियों का मूल कहा गया है ।

पारद के सेवन से कार्तिकेय जैसा सिद्ध बन जाता है[14] । एक वर्ष सेवन से दूसरा शंकर जैसा बन जाता है[15] । आठों सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता है । उससे बनी गुटिका मुख में धारण करने से वज्रकाय ज्ञानी दिव्यशरीर धारी अमर बन जाता है[16] । गुटिका मुख में धारण करने से आकाशगति,अणिमादि योग के गुण आ जाते हैं[17] । रसायन के

13• साहित्य दर्पण, परिच्छेद ।,

14• विभूति पाद,6•222,14,5•177,86,7•224

15,7•144,152,144

16•, 5•253

सहयोग से पारद से ऐसा अन्जन भी बनता है जिसके आँखों में लगते ही दिव्य दृश्यों का देखना आरम्भ हो जाता है।[18] आम के आम गुठली के दाम" इस न्याय से एक ही यत्न से दो कार्य सिद्ध करना, तान्त्रिकों के यहाँ प्रसिद्ध है।[19] तो भी गोरक्ष संहिता में भी रस सेवन से यह बात सिद्धकर दी है कि "एक हाथ में मुक्ति तो दूसरे हाथ में भुक्ति रस सेवन से ही रह सकती है।[20] जो पारद सेवन करता है वह एक ओर अपने शरीर को अमर बना देता है। इसी के साथ उसके मल-मूत्र में भी इतनी पवित्रता तथा गुण आ जाते हैं कि लोहे से भी उसका स्पर्शमात्र होने से वह सुवर्ण बन जाता है।[21] इन्हीं गुणों को दृष्टि में रखते हुए डा० जनार्दन पाण्डेय ने भी कहा है कि "जो मूर्च्छित होकर लोगों के समस्त रोगों को हर लेता है बद्ध होकर जो लोगों को आकाशीय गति देता है, समस्त देवता मुनिगण जिसे नमस्कार करते हैं। वह संसार को जय देने वाला पारद सदा ही जय देता रहे।[22] गोरक्षनाथ ने अपनी संहिता में विभूतिपाद नामक प्रकरण में इसका विशद विवेचन किया है। अतः उसका पटलों के अनुसार संक्षिप्त विवेचन देना उचित होगा।

---

18. 8·195, 198

19. महाभाष्य-। आम्रावपि सिक्ताः पितरोऽपि तृप्ताः ।

20. 6·482, 8·65, 93

21. 5·262 तं सूतं भक्षयेत् यो हि सोऽमरत्वमाप्नुयात् । तस्य मूत्रपुरीषेषु शुल्वं भवतिकाञ्चनम् ।
"सुवर्ण तन्त्र"

22. विभूति प्रकरण उपोद्घात. हरति सकलरोगान् मूर्च्छितो यो नराणां वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितं शम्भुबीजं, स जयति भव सिन्धो पारदः पारदोऽयम्।

गोरक्षसंहिता के कादि प्रकरण की पुष्पिका से पता चलता है कि यह शतसाहस्री अर्थात् एक लाख श्लोकों का संग्रह मात्र है । जिसके दो प्रकरण कादि तथा विभूति डा० जनार्दन पाण्डेय ने वाराणसी से 1977 ईस्वी में प्रकाशित किए । इससे पहले गोरक्षसंहिता नाम से प्रसन्न कुमार चटर्जी द्वारा सम्पादित योग प्रकरण से सम्बन्धित संग्रह को ही माना जाता है । सम्भवतः एक लाख श्लोक पूरा करने के लिए अनेकों प्रकरण इससे अभी तक लुप्त हैं । उपलब्ध प्रकरणों में विभूति पाद के नौ पटल हैं । प्रथम पटल में यह वर्णन मिलता है कि– रस कर्म के लिए कैसे सहायक चाहिए रस की महिमा उसके आठ गुण, उसके संस्कार से क्या फल मिलता है, संस्कृत रस का उपयोग, शिवोक्त रस शास्त्र का विस्तार तथा प्रयोजन वर्णित किया गया है । रस शास्त्र शिव से पैदा हुआ और उसे उमा देवी ने सुना तथा इस प्रकार से परम्परा चलाई –

1. उमा – रसमहोदधि	1200 श्लोक
2. उमा – रसोपनिषद्	9000
3. गुह – रसतन्त्रम्	6000
4. वीरभद्र–रसतन्त्रम्	1000
5. शुक्र – रसावलोकन	6000
6. बृहस्पति–रसचक्रम्	8000
7. चन्द्र – रसौकुश	10000
8. विनायक–रसोदय	8000

द्वितीय पटल – इसे परिभाषा पटल कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ रस, उपरस, रसलौह, छः प्रकार के लौह, गरूड, उदकृगार, पाँच रत्न, मणिनाम का रस मपित्रय, सूत बन्धक पदार्थों के नाम स्पष्ट रूप से दिए गए है । लक्षण और परीक्षा स्पष्ट करके दी गई है । इसके विना रस का प्रयोग निष्फल बताया गया है ।

तृतीय पटल :– इस पटल में रस के अठारह संस्कार गिनाए गए हैं उनकी विधि का भी वर्णन किया गया है । धातु और रत्नों की शुद्धि बतलाई गई है । अभ्रक से पारद पातन विधि स्वर्णरजतकारक बीज विधान भी दिखाया गया है । 18 संस्कार गिनने पर भी शोधन के आठ प्रकार ही दर्शाए गए है । इनके कर देने पर ही रस प्रयोग योग्य माना गया है । अन्य दस संस्कार रस की विशेष गुणवत्ता के लिए ही किए जाते हैं ।

चतुर्थ पटल :– इसमें रस बन्धन की प्रक्रिया दिखलाई है । मूल रूप में दिकलदादि चार भेद माने गए है । तब औषध प्रभाव से द्रुतित, अभ्रादि योग से रसबन्धन, सर्व लौहबन्धन, विविधबीजबन्धन बतलाए हैं । पुनः रक्त स्नेह के मिलाने से रसोपरस योग से, रसलौह संकरता से रस में उत्पादकता बतलाई गई है । इससे आगे माक्षिक आदि से मारे हुए सोने की विशिष्टता, विभिन्न द्रव्यों से मृत किए हुए नाग, वंग, ताम्र, रजत हेम लौह के बीजों का वर्णन करके समतासे कलवेधी द्विगुणित से द्विगुणवेधी, शतसहस्र लक्षकरोड़ अरब से स्पर्शवेधी रस पैदा होता है का वर्णन किया गया है । अनेक प्रकार से रस निकालने का विधान रसशाला के काम में क्रिया कुशल शास्त्रज्ञों की नियुक्ति का विधान वर्णित है ।

पंचम पटल :- इस पटल में विविध लवणों के सहयोग से अभ्रक ग्रास का रस में विधान, विविध धातु और औषधियों के योग से रसबन्धन, संमुखचारणा, विमुखचारणा, चौसठ प्रकार की रसबन्धन योग्य वनौषधियों का नाम, ग्रास के बाद आठ प्रकार का रसस्वरूप, ग्रासमान, गर्भद्रुति, मुखबन्ध यन्त्रों से पातन क्रिया, जारण, उसका लक्षण, क्रामण क्रिया, उसके उपयोगी औषध, रंजक औषधियों के संयोग से जाम्बुनद की उत्पत्ति, रस सेवन का फल, कामधेनुरस विधान, पृथक्-पृथक् चारण से श्रेष्ठता, अभ्रक के चारण से श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है ।

षष्ठ पटल :- यह पटल व्यवहारिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है । क्यों कि यहाँ सूर्यकान्तादि मणियों से रसबन्धन करने के पश्चात्, रस का रंजन, जारण, सारण, प्रक्रियाओं के द्वारा वेधकर्म का वर्णन मिलता है । जिससे तार ताम्र नागों का कोटिवेध करने पर उत्तम स्वर्ण बन जाता है । रक्ताभ्रहेम के द्वारा रसबन्ध करके लाखवेधी रस का भक्षण करने से ताकत और दीर्घायु मिलती है । धातु उपरस और पारद की पिष्टि को लोहे की बारीक पत्तियों पर लेपन से स्वर्णोत्पत्ति, गन्धकशोधक दश औषध तथा उत्तम मध्यम अधम साधनों से किस प्रकार त्रिविध स्वर्ण की प्राप्ति हो सकती है, इस पटल में वर्णित है । वर्तमान युग के लिए यह रामबाण सिद्ध हो सकता है ।

सप्तम पटल :- पूर्व पटलों में रसबन्धक अचिन्त्य गुण, रस, पाक वीर्य प्रभाव युक्त औषधों के दो भेद किए गए हैं :- औषधि और महौषधि । फिर भी वे दो प्रकार की बन जाती है । दिव्य औषधि और रसौषधि । उनके तृण, गुल्म, लता, वल्ली, वृक्ष और सर्पिणि ये छः प्रकार माने गए हैं । पुनः चौसठ दिव्य औषधियों के नाम, लक्षण और कर्म का वर्णन आया है ।

यहाँ अन्य ग्रन्थों से एक विशेषता देखने को मिलती है । सोम दो प्रकार का है । वृक्ष तथा लता रूप । दोनों का समान महत्व है । लता का विशेष महत्व है । वह भी सविष और निर्विष रूप से दो प्रकार की है । सविषा अधिक गुण वाली होती है । इनकी उत्पत्ति किस देश में तथा उसका ग्रहण किस दशा में किया जाता है । अम्लवेतस की उत्पत्ति स्वरूप लक्षण, गुण कर्म का विस्तार से वर्णन करके स्वर्णादि में निर्माण में वेधादि क्रम बतलाया गया है । एक मात्र अम्लवेतस को उत्पत्ति स्वरूप लक्षण, गुण तथा क्रम का वर्णन करते हुए यह भी बताया गया है कि इससे असाध्य रोगों का इलाज हो सकता है । रसायन भक्षण समय में भक्ष्याभक्ष्य, पथ्यापथ्य की भी वर्णन मिलता है । अन्त में कुछ श्लोक यहाँ नष्ट हैं ।

अष्टम पटल :- इस पटल में अयस्कान्त मणि की उत्पत्ति, उसका लक्षण, स्वरूप, वीर्य, रसबन्ध प्रकार, विस्तार से वर्णन किया गया है । अयस्कान्त अभ्रक के संयोग से निर्मित रसायन के सेवन से जरामृत्यु, कुष्ठ बलि श्वेत केशादि का नाश हो जाता है । जैसा रोग हो, उसके अनुसार एकमात्र रसायन का पृथक्-पृथक् अनुपात से सेवन करने की विधि वर्णित की गई है । रस विषय का समस्त काम गुरु परम्परा के अनुसार करना चाहिए । इस बात का विशेष निर्देश इस पटल में मिलता है ।

इस पटल के भी लगभग 26 पत्रों का नाश हो जाने के कारण, अनेकों रहस्यों कापता नहीं चल सका ।

नवम पटल :- इसमें शास्त्रोक्त विधान से औषधियों के नियोजन की विधि, रसमन्त्रोद्धार और उसकी फलस्तुति का वर्णन किया गया है । इस प्रकार से विभूति प्रकरण से विभूति के अन्दर महान् योगी ने, रस का सम्पूर्ण वर्णन करके संसार का कल्याण किया है ।

वर्तमान समय में यदि आयुर्वेद के ज्ञाताओं को इन विधियों की खोज के लिए प्रोत्साहित किया जाए तो अवश्य ही देश का महान् कल्याण होगा ।

निष्कर्ष :- यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राणापान का योग, पिण्ड ब्रह्माण्ड योग, जीव ब्रह्म का योग कुण्डलिनी और ब्रह्मरन्ध्रगत शिव का योग मोक्षदायी माना गया है । वैसे ही पारद और गन्धक का अन्यान्य औषधियों, रसों, उपरसों के सहयोग से जो योग होता है वह भी जीवन मुक्ति का साधन बनता है । इस प्रकार इन पारद गन्धक के योगों को बतलाने वाले देवों में शिव, उमा, गुह, वीरभद्र, शुक्र, बृहस्पति, चन्द्र, विनायक, नान्दी, भैरव, ब्रह्मा, और विष्णु रसाचार्य हुए हैं । ऋषियों में अगस्त्य, कपिल, व्याडी, दत्तात्रेय, मतमाण्डव्य आदि हुए हैं । मानवों में लंकेश, गोरक्ष, नागार्जुन आदि बहुत से सिद्ध हुए हैं । जिनका संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार से कहा जा सकता है ।

रस ही पारद है । जिसके अभिन्न निमित्तो ~~उपादान व निमित्त~~ कारण शिव हैं । उन्हें ही अराध्य देव मानकर भारत के रसाचार्य नाथों ने नाथ सम्प्रदाय की स्थापना की । उन्हें परात्पर नाथ की संज्ञा देकर शरीर रूपी व्यष्टि ब्रह्माण्ड में ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् करोटी गुहा में स्थित केश के सौवें हिस्से के बराबर छिद्र में बतलाया है। बाद में इस सम्प्रदाय के सभी नाथों के साथ नाथ लगा दिया गया । जैसे गोरक्षनाथ, बालकनाथ, जालन्धरनाथ आदि । इस सम्प्रदाय में गुप्त साधनाएँ और सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । इस कारण इस सम्प्रदाय का नाम सिद्ध सम्प्रदाय भी कहा गया है । शिव ने "रसार्णव"

में सारे रस विषयक ज्ञानों को समझाया है । जायसी के द्वारा लिखि गई "द्रव्य परीक्षा" भी इसी सम्प्रदाय के अन्दर आती है । अस्तु संक्षिप्त परिचय निम्न रूप से है ।

	ग्रन्थनाम	प्रणेता का नाम
1.	रसार्णव	शिव
2.	रसेन्द्रसंहिता	शिव
3.	दत्तात्रेयसंहिता	दत्तात्रेय
4.	दत्तात्रेय-तन्त्रम्	दत्तात्रेय
5.	गोरक्ष-संहिता	गोरक्षनाथ
6.	अगस्त्य-संहिता	अगस्त्य
7.	काकचण्डीश्वर-तन्त्रम्	काकचण्डीश्वर
8.	हरीश्वर-तन्त्रम्	काकचण्डीश्वर
9.	रसरत्नाकरकक्ष	नागार्जुन
10.	कक्षपुटम्	नागार्जुन
11.	रसहृदयम्	गोविन्दभगवत्पाद
12.	रसेन्द्रमंगलम्	नागार्जुन
13.	रसपद्धति	बिन्दु
14.	रसरत्नाकर	सिद्धनित्यनाथ
15.	रसार्णव	भैरवानन्द
16.	आनन्दकन्दम्	मन्थानभैरव
17.	रससार	गोविन्दाचार्य
18.	रुद्रयामल	भैरव

19.	रसरत्नसमुच्चय	वाग्भट्ट
20	रसेन्द्रचिन्तामणि	रामचन्द्र
21	रसेन्द्रचिन्तामणि	ढुण्ढुकनाथ
22.	स्वछन्दतन्त्र	भैरव
23.	कपिलसिद्धान्त	कपिल
24.	ब्रह्मसिद्धान्त	ब्रह्मा
25.	लंकेशसिद्धान्त	रावण
26.	चन्द्रसेनसिद्धान्त	चन्द्रसेन
27.	रससुधाकर	यशधर
28.	रसकामधेनु	चूडामणि
29.	रसयोगसार	हरिप्रसन्न
30.	रसधातुप्रकाश	मुले
31.	रसेन्द्रसारसंग्रह	गोपालकृष्णभट्ट
32.	पारदसंहिता	निरंजनप्रसाद
33.	रसतरंगिणी	सदानन्द
34.	रसामृतम्	यादवजी
35.	धरणीधरसंहिता	धरणीधर
36. टो	टोडरानन्द	राजाटोडरमल
37.	रसशास्त्रप्रवेशिका	कृष्णगोपाल
38.	रसतत्व विवेचन	कृष्णगोपाल

इनके अतिरिक्त आयुर्वेद के चरक सुश्रुत भावप्रकाश योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर संहिताओं में भी रस प्रकरण दिए हुए हैं । अतः रसपद्धति अन्य विद्याओं की तरह वेद से निकल -ने पर भी नाथ सम्प्रदाय में ही क्रमबद्धरूप से विकसित हुई ।

चतुर्थो ध्याय : गोरक्षसंहिता का तुलनात्मक परिशोलन

1. गोरक्षसंहिता और पातंजल योग दर्शन :-

चौरासी लाख योनियों में मानव योनि सबसे अधिक सतोगुणी होने के कारण मोक्ष के नजदीक है । मानव के शरीर की बनावट ब्रह्माण्ड की बनावट के समीप या तुल्य है । इसके जानने से सब कुछ जाना जा सकता है[1] अर्थात् ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाता है । ज्ञान का अर्थ होता है "इन्द्रियों द्वारा अर्थ का प्रत्यक्षीकरण । जीव का उद्देश्य पिण्ड से विस्तृत होकर ब्रह्माण्ड में, घटाकाश से बृहदाकाश में, उपाधि तोड़कर बावड़ीमें डाले गए लोटे के जल की तरह तदाकार हो जाना ही है[2] । जिसका ज्ञान करवाने के लिए भारतीय समस्त आस्तिक दर्शन प्रवृत हुए हैं । जिनमें वे पूर्ण विवेचन करते हुए पिण्ड के तत्वों का विवेचन करके विभाजन पूर्वक ब्रह्माण्ड के साथ तदाकार करने का पूर्ण यत्न करते हैं । किन्तु 90 % ज्ञान आखों से होता है । अतः चक्षुग्राह्य ज्ञान में ही प्रत्यक्ष की रूढ़ी माने जाने लगी है । तब ही तो आम साधारण जनता आख से देखे गए ज्ञान को ही प्रत्यक्ष कहती है । प्रत्यक्ष की व्युत्पत्ति भी यही है जो आखों के प्रति हो[3] । हम शब्द प्रमापकों को वही मानना पड़ता है जो शब्द कहे[4] । अतः सब दर्शनों ने प्रत्यक्ष को अधिक महत्व दिया । इसलिए दर्शनों में भी

---

1. इदं ज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति ।

2. कबीर ,,जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ,,फटा कुम्भजल जल ही समाना यही तत्व कहानी ।

3. अक्षणो प्रति

4. महाभाष्य, शब्द प्रमाणका वयं यच्छब्द आह तदेव प्रमाणयामः ।

जो बाह्य तथा अभ्यन्तर का पूर्ण रूपेण प्रत्यक्ष करवाए वही दर्शन है । दृश्यते इति दर्शनम्" की भाव प्रधान ~~शब्द की~~ व्युत्पत्ति में ठीक उतरता है । वह है योग दर्शन । क्योंकि यही एक ऐसा दर्शन है जिसके द्वारा अनेक साधनों से साधक को पिण्ड का बोध करवा कर, ब्रह्माण्ड के बोध सहित ~~करवाकर~~ स्वचैतन्य स्वरूप जीव का भी बोध कराया जाता है । अतः गोरक्ष-संहिता" और योग दर्शन का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ! जानना आवश्यक है ।

योग के प्रवर्तक हिरण्यगर्भ है । जिसका संकेत ऋग्वेद में मिलता है ।[5] हिरण्यगर्भ वे थे जिन्होंने वेद के प्रादुर्भाव से पूर्व ही योग विद्या को जानकर इसका विस्तार किया था । इसके बाद श्वेताश्वर, कठोपनिषद् में इस योग विद्या का वर्णन आया है । बाद की बहुत सी उपनिषदों ने तो योग को ही वर्ण्य विषय बनाया है । पतंजलि ने योग सूत्र में इस विद्या को 195 सूत्रों में गागर में सागर की युक्ति के अनुसार बान्धा है, जिसके ऊपर व्यास भाष्य, विज्ञानभिक्षु की वार्तिक वाचस्पतिमिश्र की तत्व वैशारदी, भोजदेव की वृति आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं ।

योग सूत्र को, चार पादों में गुण कर्मानुसार विभक्त किया गया है । जैसे समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद । पतंजलि ने चित्तवृति के निरोध को

---

5. ऋग्वेद 10.121, श्रीमद्भागवत, 5. 19-3।

योग संज्ञा दी है[6]। व्यास भाष्य में समाधि को योग कहा है[7]। चित्त को भाष्यकार ने पाँच प्रकार का बतलाया है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। रज, तम और सत्व गुण त्रिपुटी चित्त में जब एकांश रजाधिक्य होता है, तो प्रथम, द्वितीयांश की अधिकता में द्वितीय अवस्था, तृतीय में तृतीयावस्था। किन्तु जब बाह्य विषयों से हटकर आन्तरोन्मुखी चित एकाकार वृति धारण करता है तब एकाग्र[8]। यह एकाग्रता भी जब लीन हो जाती है और चित संस्कारों की रहितता या उन्मनीभाव को प्राप्तकर लेता है तब निरुद्ध कहलाता है। सभी प्रकार के निरोध योग नहीं माने जा सकते। प्यार के समय में क्रोध की वृति का निरोध होता है, वह योग नहीं। तभी तो भाष्यकार ने सहजावस्था को योग कहा है। यह सहजावस्था या समाधि दो प्रकार की है सम्प्रज्ञात, असंप्रज्ञात। पहली में चित्त की सम्पूर्ण वृतियाँ लीन नहीं होती। जबकि दूसरी में सारी लीन होती हैं।

योगी को सम्प्रज्ञात समाधि के लिए तीन अवलम्बनों को धारण करना पड़ता है। ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य। ग्राह्य विषय भी दो प्रकार का होता है। सूक्ष्म और

---

6. यो०द० 1.2 योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

7. वही, पृष्ट योगः समाधिः।

8. ब्रह्मसूत्र 4.1.6.10 यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्।

अस्मूक्ष्म । ग्रहण करणरूपी इन्द्रियाँ को कहा जाता है । ग्रहीता अस्मिता को कहते हैं । जो बुद्धि और आत्मा का "जपाकुसुम न्याय से एकीकरण है । "गोपुच्छ न्याय" से स्थूल से सूक्ष्म की ओर आसानी से साधक जा सकता है । अत: पंचभूतोपासना" जिन्हें कर्मकाण्ड में पंचदेवता, गणपति, वरुण ज्योति या सूर्य, षोडश मातृका और ॐकार कहा जाता है की उपासना की जाती है । फिर तन्मात्राएं ली जाती हैं ~~फिरइन्द्रियाँ~~ अर्थात् ग्रहणरूपी इन्द्रियाँ की बारी आती है। अन्त में अस्मिता की साधना दिखाई गई है । इस तरह सम्प्रज्ञात समाधि भी चार प्रकार की हो जातीहै । सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार । असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है आनन्दानुगत तथा सास्मितानुगत[1] ।

सिन्धु में जैसे सतत् तरंगे उठती रहती है वैसे ही चित में भी अनेकों जन्मों के संस्कारों के कारण, असंख्य वृत्तियाँ उठती रहती है । जिन्हें पाँच रूपों में स्थूल रूप से बाँटा गया है । प्रमाण, विपर्य, विकल्प, निद्रा, स्मृति । ये पाँचों राग द्वेष और मोह से सनी होती हैं । अत: क्लेश देने वाली हैं । इन्हें मुमुक्षुओं को रोकना ही पड़ता है । रोकने के साधन है अभ्यास और वैराग्य । यह सम्प्रज्ञात समाधि तक चलती है । जबकि असम्प्रज्ञात समाधि में ये नि:शेष हो जाती हैं । उनकी समाप्ति का उपाय अभ्यास वैराग्य ही है, क्योंकि गीताकार ने भी यही कहा है । दृष्टानुश्रविक विषय के त्याग का नाम वैराग्य है । जिसे यतमान संज्ञा, व्यतिरेक संज्ञा, एकेन्द्रिय संज्ञा और वशीकार संज्ञा के नाम से कहा गया है । अगर इन्हें एक शब्द से कहना हो तो इनका नाम उपर वैराग्य अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि के लिए उपयोगी माना गया है । जब पुरुष अपने को प्रकृति भिन्न और

---

1. यो०द० 1-17

त्रिविध भोगों से वितृष्ण हो जाता है तब वैराग्य कहलाता है । पर वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि में पुरुष अपनी केवलता का अनुभव करता है । जो कैवल्य नाम से प्रख्यात है । सूत्रकार के मत में दूसरा उपाय ईश्वर प्रणिधान भी कैवल्य प्राप्ति का उपाय दिया गया है । साधारण मनुष्यों में पाँच प्रकार के क्लेश-अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, और अभिनिवेश, दो प्रकार के कर्म-धर्म और अधर्म, तथा तीन प्रकार के विपाक-जन्म, आयु और भोग होते हैं। जो ईश्वर में नहीं होते । वह सर्वज्ञ है। जिस कारण अन्य पुरुषों से विशिष्ट माना गया है । उसका वाचक ओंकार है । उसके जाप और वाच्य ईश्वर की चिन्ता से योगी का चित एकाग्र हो जाता है तथा आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति भी हो जाती है ।

जब योगी योगारूढ होता है तब उसके सामने पथभ्रष्ट करने के लिए या योग परीक्षा हेतु नौ अन्तराय तथा पाँच उपान्तराय उपस्थित होते हैं । जिनका परिचय निम्न है-। अन्तराय- व्याधि, शिथिलता, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थित्व । उपान्तराय - दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास । इन विघ्नों से चित विक्षिप्त हो जाता है । तब ईश्वर प्रणिधान से इनकी शान्ति करें और योगमें लग जांए । चित शोधन के और भी उपाय शास्त्रकार ने बताए हैं । जैसे अभिमत वस्तु का ध्यान[10] । यह धनाजाट की भैंस के समान है । इस पाद में समाधि का विशेष वर्णन होने से इसका नाम समाधिपाद रखा गया है ।

---

10. यो०द० 1.39 यथाभिमतध्यानाद्वा ।

दूसरे पाद का नाम "साधनापाद" या क्रिया योग है । क्रिया योग का तात्पर्य योग क्षेत्र में तपस्या स्वाध्याय और ईश्वर का प्राणिधान होता है, क्योंकि गोण अंगों के समूह के द्वारा उत्पन्न प्रक्रिया को, क्रिया कहा गया है[11], इस पाद के दो कार्य है- समाधि भावना और क्लेशों का न्यूनीकरण । समाधि प्रथम पाद विवेचन में जान ली गई है । क्लेश पाँच हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । इन सबका कारण अविद्या ही है । जिसे त्रिगुणात्मिका, अनिर्वचनीय संज्ञा दी गई है । अतस्मिन् में तत् ज्ञान ही अविद्या है । जिसे शब्दों में वैसे ही नहीं बान्धा जा सकता, जैसे दीपक से अन्धकार नहीं देखा जा सकता ।[12] वैसी यह आदि परमेश की शक्ति अविद्या त्रिगुणात्मिका है ।[13] इस प्रकार की अविद्या से ये चार क्लेश पैदा होते हैं । ये चारों प्रसुप्त, क्षीण, विछिन्न या उदार अवस्थाओं में से किसी एक ही अवस्था में एक समय रह सकते हैं । जैसे बाल्यावस्था में राग सुप्त रहता है, क्रोधावस्था में विछिन्न रहता है, राग विरोधी भावों के समय क्षीण रहता है और उपयुक्त अवस्था में प्रबुद्ध अथवा उदार होकर सामने आ जाता है । क्रिया योग की सहायता से साधक इन्हें क्षीण करता है और क्रमशः आगे बढ़कर, प्रसंख्यान अर्थात् ध्यान रूपी अग्नि में भस्मकर देता है ।

---

11. वैयाकरणभूषणसार, गुणभूतैरवयवैः समूह क्रमः जन्मनाम् । बुद्ध्याः प्रकल्पिताः भेदाः क्रिया इत्यभिधीयते ।

12. वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली, अज्ञानं ज्ञातमिच्छेयोमनानेनात्यन्तभूदधिः । स तु नूनं तमः पश्यद्दीपेनोत्तम तेजसा ।

13. शंकराचार्य, अव्यक्तनारी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या ।

जब इस उद्देश्य में साधक सफल हो ता है तब प्रथम कार्य अर्थात् समाधि भावना सहज ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि जितने भी कर्माशय और विपाक हैं, वे सारे क्लेश मूलक हैं उनके नष्ट हो जाने पर उनका नाश भी छिन्ने मूले न पत्रं न शाखा" न्यास से स्वयमेव ही हो जाता है ।

योग विषय चार भागों में विभक्त होता है । हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय । अविद्याजनितदुःख तथा दुखजनक पदार्थ हेय हैं । अविद्या जीव का संयोग सांसारिक पदार्थों से करवाती है । अतः अविद्या ही हेय है । तथा विद्या ही हेयहेतु है । विवेक ज्ञान से ही आत्मा और अनात्मा का पृथकीकरण किया जा सकता है तभी अविद्या नष्ट होगी । अविद्या का नाश ही आत्यन्तिक दुःख की निवृति है । यही हेयहान है । यही योग का चरम लक्ष्य है या कैवल्य है ।

विवेकख्याति नहीं हो जाए तबतक योगांगों से चित्तशुद्धि योगी करता रहे । ये अंग आठ हैं ।[14] यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि । प्रथम पाँच बाह्य साधन माने गए हैं और अन्त के तीन आन्तरिक साधन कहे गए हैं ।[15]

यम:- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं ।[16] नियम- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर-प्रणिधान, ये पाँच हैं ।[17]

स्थिरता और सुख देने वाले साधन को आसन कहा गया है । इनकी संख्या सूत्रकार ने नहीं बतलाई है ।[18]

---

14. यो०द० 2.28

15. वही, 2.29

16. वही, 2.30

17. वही, 2.32

18. वही, 2.46

श्वास प्रश्वास की गति को आसन में बैठकर रोकना प्राणायाम कहलाता है । जो पूरक,कुम्भक,रेचक, और प्राणों के स्थिरीकरण को देने वाला तुर्य भेद से चार प्रकार का हो जाता है[19] इनसे ज्ञान के आवरण का नाश हो जाता है । इससे धारणा की योग्यता आ जाती है ।

5. इन्द्रियाँ जब अपने -अपने विषयों को लेकर न रहे और चित्तानुरूप हो जाए तो "प्रत्याहार" कहलाती है । इससे इन्द्रियाँ योगी के वश में रहती हैं । इन पाँच अंगों का वर्णन करके पाद समाप्त हो जाता है ।

तृतीय पाद का नाम विभूति पाद है । जिसमें अवशिष्ट तीन अंगों का वर्णन किया गया है, द्वितीय पाद में वर्णित बाह्य अंग हैं, क्योंकि कार्य सिद्धि से इनका बाहरी सम्बन्ध है । धारणा और ध्यान एवं समाधि साक्षात् रूप में कार्य सिद्धि के हेतु अतः अन्तरंग माने गए हैं । इन तीनों का एक नाम संयम है ,क्योंकि जब आभ्यन्तरिक तीनों साधन एक ही विषय को आश्रय करके रहते हैं तभी योगांग बनते हैं,ऐसे नहीं । ऐसा नहीं होता कि एक की धारणा,दूसरे का ध्यान,तीसरे की समाधि को योग की संज्ञा दी जाए ।

1. अनेक विषयों से हटाकर एक विषय पर चित को लगाना धारणा है । जैसे अपने इष्ट का नाभि, हृदय नासिकाग्र आदि में चित को बान्धना ही धारणा है[20]

2. धारणा के देश में ही ध्येय विषय की एकतानता स्थिर करना ध्यान कहलाता है ।[21]

3. ध्यानावस्था में जब योगी इतना तल्लीन हो जाए कि अपने को भूल सा जाए,केवल जिस वस्तु का ध्यान कर रहा है वही उसके सामने रहे अंहता नष्ट हो जाए तब उसका नाम समाधि हो जाता है ।[22] प्रथमपाद में जिस समाधि का वर्णन किया गया था । वह इससे भिन्न है। वह साध्य है । यहाँ की समाधि साधन है । वह फल है तो यह उपाय है । सम्प्रज्ञात समाधि में पाँच बहि-

---

19. यो०द० 2.49
20. वही, 3.1
21. वही, 3.2
22. वही, 3.3

रंग और तीन अन्तरंग साधन माने जा सकते हैं । असंप्रज्ञात में तो आठों ही बहिरंग साधन हैं । व्युत्थान अवस्था में अनुभूत विषय अपने संस्कार दे जाते हैं । ये स्मृति का कारण बनते हैं । व्युत्थान की तरह समाधि में भी संस्कार रहते हैं । संप्रज्ञात समाधि में चितवृतियों के निरोध हो जाने पर भी एक निरोधिभूत संस्कार पैदा होता है । तभी तो संस्कार व्युत्थानज और निरोधज नाम को धारण कर सकते हैं । इनका द्वन्द्व जारी रहता है । जो प्रबल होता है एक दूसरे के ऊपर हावी हो जाया करता है । दीर्घ साधना के बाद योगी के निरोधज संस्कार प्रबल हो पाते हैं । वे व्युत्थानज संस्कारों को दबा पाते हैं । इसी का नाम निरोध परिणाम कहा गया है[23] । इस अवस्था में नाना प्रकार की विभूतियाँ योगी को प्राप्त होती हैं । स्वर्गीय देवता यहाँ पर योगी को लुभाते हैं । कच्चे योगी भटक सकते हैं परन्तु सच्चे योगी इन प्रलोभनों से भटकते नहीं । वे नाना विभूतियों देखकर विस्मृत नहीं होते है । वे चँचल नहीं होते,प्रलुब्ध भी नहीं होते । यहाँ तीसरा अध्याय समाप्त हो जाता है ।

चतुर्थपाद का नाम "कैवल्यपाद " है । इसमें पाँच प्रकार की सिद्धियाँ बतलाई गई हैं । 1• पूर्व जन्म संचित संस्कार उत्पन्न सिद्धियाँ । 2• रसायनोत्पन्न सिद्धियां 3•यन्त्रोत्पादित सिद्धियाँ । 4• तपस्योत्पन्न सिद्धियाँ । समाधिज सिद्धियाँ । इनमें चार प्रकार की सिद्धियाँ तो कैवल्य में बाधक ही मानी गई हैं । उन्हें अवास्तविक या दिखावा मात्र कहा गया है । वास्तविक सिद्धि तो कैवल्य ही है । समाधि से सारे अनागत कर्म दग्धबीज

23•यो०द० 3•9

होकर निर्वीय बन जाते हैं । प्रारब्ध कर्म बच जाते हैं । योगी उनका भोग करने के लिए अनेक शरीर धारण करके उनका शीघ्र भोग कर लेते हैं । ऐसा कर्म करने से आत्मा का जो बुद्धि से पार्थक्य है उसमें योगी और दृढ़ विश्वासी बन जाता है । तब उसकी आत्मा स्वतः ही विवेक की ओर उन्मुख होकर कैवल्य की ओर अग्रसर होता है । तब वह समग्र अभिलाषाओं यहाँ तक कि विवेक ख्याति से भी विरत हो जाता है । तब उसे धर्ममेध समाधि प्राप्त होती है । यही विवेक ख्याति या प्रख्यान का परमफल माना गया है । उस समय निरवच्छिन्न तत्व-साक्षात्कार रूपी धर्ममेध की धारासार वर्षा होती है और योगी समस्त क्लेशों और कर्मों से निवृत हो जाता है । उस समय भुक्ति मुक्ति आदि त्रिगुणात्मिका प्रकृति के कर्म समाप्त हो जाते हैं और आत्मा अपने केवल स्वरूप में आ जाता है । पुरुष के प्रति करणीस कर्म सिद्ध हो जाने पर प्रकृति भी कृत्य हो जाती है । अनादि काल से चला हुआ लिंग शरीर भी जो प्रकृति का विपरिणाम है वह भी समाप्त हो जाता है । उसके अपने वे निर्माता तत्व अपने-अपने उपादान कारणों में लीन हो जाते हैं । यही योग का अन्तिम प्रतिपाद्य हैं ।

योग के व्यवहारिक स्वरूप का वर्णन पातंजल योग दर्शन में हुआ है । उसके अनुसार बौद्धों जैनों,वेदान्तियों ने उसे जहाँ अपनाया,वहाँ पर उसके कुछ अंगों को ही महत्व देकर उसकी उपासना ही आरम्भ कर दी जैसे जैनियों ने प्रथम अंग यम के प्रथम अवयव अहिंसा का ही इतना विश्लेषण आरम्भ कर दिया कि जिसके कारण अध्ययन के कारण लोगों को नफरत आनी शुरू हो गई -क्योंकि अति सर्वत्र वर्जयेत् का सिद्धान्त अच्छाई और बुराई दोनों तरफ घटता है । एक बौद्धों के द्वारा योग के माध्यम से भोग की तृप्ती रूपी मार्ग से जनसाधारण त्रस्त था । क्योंकि प्रच्छन्नता वंचना होती है । जिससे लोग डरते हैं । अतः गोरक्षनाथ ने लोगों के दिलों को जीतने के लिए योग के दो अंगों को छोड़ ही दिया । केवल षडंग योग को ही माना । यम नियम को आपामार तक के लिए सामान्य नियम होने के कारण अपने ग्रन्थों में उन्हें स्थान नहीं दिया ।

उन्होंने पतंजलि के वर्णित आसन के बाद के अंगों का ही उपयोग स्वीकार किया । प्राणायाम के रेचक,पूरक,कुम्भक और संघट्टीकरण या केवल भेद माने गए है । इनका सम्बन्ध नाड़ी शोधन से किया जाता है । नाड़ी शुद्ध होने पर पवन को गगन में प्रेरित करने की प्रक्रिया की जाए तो घंटा आदि वाद्यों का श्रवण होता है तथा सिद्धियों की सम्भावना रहती है ।[22] अतः प्राणायाम नादानुसन्धान के साथ संलिप्त है । पुनः प्राणायाम से ही प्रत्याहार की सिद्धि और धारणा के अभ्यास का प्रक्रम बनता है । गोरक्ष संहिता में प्राणायाम को अधिक महत्व दिया गया है तभी तो प्राणायाम के उपयोगी जालन्धर,उड्डीयान मूल बन्ध,महामुद्रा,नभोमुद्रा को महत्व दिया और उनकी

22-गो०सं० 2-18-20

उपयोगिता तथा महत्व को बतलाया है[23]। किन्तु प्राणायाम साध्य है और ये साधन प्रणव उपासना तथा अजपा गायत्री का जाप भी प्राणायाम के अन्तर्भूत है। प्रणव की व्याख्या भी यहीं पर विस्तृत रूप में की गई है। यह वेद ही है। शिवशक्ति साधन है आदिनाथ है और इसे अनाहत खण्ड कहा गया है। इसका श्रवण ही नादानुसन्धान और अन्तःकरण में सत्ता ही आत्मानुभूति कहा गया है। यह नाद ब्रह्म है, इसका अनुसन्धान ही ब्रह्म का अनुसन्धान है इसके द्वारा अनेक रोगों का नाश होता है[24]।

प्रत्याहार की, तृतीय अंग को सूचना तृतीय पहर के सूर्य से की गई है। ज्ञानेन्द्रियों को अपने विषयों से घोड़े की लगाम या सूर्य की किरणों की तरह खींच लेना कछवे के अंगों की तरह खींचकर अपने में समेट लेना ही प्रत्याहार है। अन्त में विपरीत करणी द्वारा चन्द्रमा के रसपान में एकतान हो जाना ही प्रत्याहार कहा गया है[25] इनसे योगी मानस विकारों को दूर करता है। धारणा में योगी स्व स्वरूप का अन्तरिन्द्रियों द्वारा अनुभव करता है। जो कुछ उत्पन्न होता है। उसे निराकार में धारण, निर्वातदीप की तरह आत्मज्योति का धारण हृदय में पंचभूतों का पृथक्-पृथक् रूप में अलग-अलग चक्रों में, बीजाक्षरों सहित अनुभव करना उनके स्वरूपों का चिन्तन अपने देह में करना ही धारणा कहलाती है[26]। ये चक्र गोरक्षनाथ के अनुसार इस तरह माने गए हैं -आधार "4 दल" स्वाधिष्ठान "6 दल" नाभिचक्र 10 दल, हृदय चक्र 12 दल, कण्ठस्थविशुद्ध चक्र 16 दल भ्रूमध्य आज्ञाचक्र 2 दल इसके अतिरिक्त ब्रह्मरन्ध्र महापथ में स्थित सहस्रदलचक्र[27] इस तरह ये सात चक्र जहाँ माने गए हैं। वहीं दूसरी जगह सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में नौ चक्र, ब्रह्मचक्र और तालुचक्र की गणना के साथ स्वीकार किए गए हैं। तभी तो म०म० गोपीनाथ जी ने विराट् पुराण

---

23. गो०सं० 1.56 24. गो०सं० 2.19-20 25. गो०सं० 2.23-31

26. वही 2.56-60 27. वही, 1.15-16

के एक हस्तलेख के आधार पर चक्रों की संख्या 25 से अधिक स्वीकार की है । वे कहते हैं कि ललितासहस्रनाम के भास्करराय भाष्यानुसार चक्र संख्या 32 से अधिक है । यही कारण है कि गोरक्षनाथ के ग्रन्थों में चक्रों की संख्या में विभिन्नता आ गई है ।

प्रत्याहार धारणा चक्र वर्णन आदि का उपयोग कुंडलिनीयोग या लययोग के लिए होता है । कुण्डलिनी साधन भूतलय और भूतजय दोनों हैं । यह मूलाधार से सहस्रार तक की जो यात्रा करती है उस आध्यात्मिक यात्रा में अनेकों विश्राम स्थल या अवरोधक स्थल चक्र नामों से प्रसिद्ध है।यह कुण्डलिनी भी तीन प्रकार की बतलाई गई है । उर्ध्व,मध्य और अधः । कहा जाता है कि मध्य कुण्डलिनी के प्रबोधन से,अधः शक्ति के संकोच से तथा उर्ध्व शक्ति के निपात से परमपद की प्राप्ति होती है । वास्तविकता से यह एक ही शक्ति है । स्थानभेद से यह तीन प्रकार की मान ली जाती है । इसके बारे में विवेचना की गई है कि कन्द के ऊपर आठ कुण्डलों को धारण करने वाली यह कुण्डलिनी शक्ति निरामय ब्रह्म द्वार को जाने वाले रास्ते के रन्ध्र को आच्छादित कर सुखपूर्वक सोई रहती है । इसे वह्नि योग से या मानस और महत के सहकार से जागृत किया जाता है । तब उठकर यह सुई के आकार को प्राप्त करके पद्म तन्तु की तरह सुषुम्ना के मार्ग से जागृत होती है ।

इसके अनन्तर ध्यान का वर्णन मिलता है । ध्यान परमाद्वैत भाव है । जिन-जिन तत्वों या पदार्थों का स्फुरण होता है,उनका अपने स्वरूप के अनुसार आत्मा

28• अमराधशासनम् पृ० ।

29•गो०सं०, यौ०मा० 31-40

भावना करती है । इस तरह ध्यान में सभी भूतों में समदृष्टि हो जाती है ।[30] ध्यान के दो भेद सगुण और निर्गुण बतलाए गए हैं । गोरक्षसंहिता में चक्र स्थानों को ध्यान के योग्य बतलाया गया है । साथ ही उसके स्थूल और सूक्ष्म भेद भी बतलाए गए हैं । सूक्ष्म ध्यान में तेजो ध्यान या ज्योति ध्यान को अधिक महत्त्व दिया गया है । मत्स्येन्द्र पद्धति में इन्हें सकल और निष्फल नाम से कहा गया है ।[31]

तदुपरान्त षडंग योग में समाधि का वर्णन किया गया है । पूर्व वर्णित समाधि से गोरक्षसंहिता में एक विशेषता आई है कि जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्यही सभी प्रकार के द्वन्द्वों का ऐक्य है । इस अवस्था में रूपरस गन्ध स्पर्श और शब्द की स्थिति नहीं रहती । अपने पराए की कोई बात नही होती ।[32] इस प्रकार से गोरक्षमत में षडंग योग की स्थिति बतलाई गई है । जो पातंजल योग के अनुकूल है तथा साधना के अनुसार उनमें भी कुछ विस्तार किया गया है ।

योग मार्ग में यद्यपि वाचस्पति मिश्र के अनुसार "योग एव योगस्योपाध्याय:" कहा गया है । तो भी मार्गारोहण के लिए, या सुखपूर्वक साधना की यात्रा के लिए गुरु की परमावश्यकता मानी गई है । उन्हीं के आशीर्वाद से परमपद में समरसीकरण हो सकता है । जो नाथों का चरमलक्ष्य अर्थात् परममुक्ति नाथ स्वरूपेण मानी गई है । गुरुचरणों में रत रहने से स्वसंविद्य परमपद की सिद्धि संभव हो सकती है । इसी साधन से योगियों को

---

30. सि०सि०प० 2.38

31. गो०सं० 2.65-75, यो०मा० 156-59

32. गो०सं० 2.15-16, 85-88, यो०मा० 176-178

पिण्ड निरुत्थान का अनुभव होता है । तदनन्तर समरसी करण की सिद्धि होती है[33]। यह गुरु कौन हो सकता है जो प्रकृति के सभी विकारों को अवधूनन करने वाला सिद्ध हो, या अवधूत योगी हो ,वही गुरु बन सकता है । वह अपनी करुणा के खड्ग पात से साधक पशु के आठों पाशों को छेदित कर देता है । यह 36 लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए । शिष्य भी 32 लक्षणों से युक्त होना चाहिए । शिष्य के लिए आठ परीक्षाएं स्वीकार की गई हैं[34]। यह गोरक्षनाथ का गुरुशिष्यवाद या अधिकार भेदवाद कहा जा सकता है ।

इस तरह जहाँ षडंग योग से गोरक्ष अपने नाथ स्वरूप की परम-प्राप्ति के साधन की पुष्टि करते हैं,वहाँ दूसरी तरफ पिण्ड ब्रह्माण्ड वाद की पुष्टि भी करते हैं । यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" यह युक्ति जहाँ तान्त्रिकों को प्रिय है वहाँ नाथों को भी उतनी ही प्रिय है । पिण्डसंविति से ही ब्रह्माण्ड ज्ञान हो सकता है । ब्रह्माण्ड में जो कुछ है उसका संक्षिप्त रूप पिण्ड है । इसमें देवता,परमतत्व,पाताल, ब्रह्माण्ड,कलाएँ, वर्ण,उपवर्ण,द्वीप,समुद्र,खण्ड पर्वत,उपपर्वत,नदियाँ,उपनदियाँ,कुल्म,उपकुल्म,नक्षत्र,राशियाँ, नवग्रह,तिथियाँ,तारामण्डल,दानव,यक्ष,राक्षस,पिशाच,भूत-प्रेत,कुलनाग,सनकादिमुनि, मातृशक्तियाँ उग्रदेवता,मेघ तीर्थ,अनन्त सिद्ध,चन्द्र,सूर्य,वृक्ष,लता,गुल्म,तृण,कृमि,कीट,पतंग,सुख,दुःख,मुक्ति,

---

33.डा०नाथ उपाध्याय, नाथ और सन्त साहित्य तुलनात्मक अध्ययन,

34.गो०सि०सं०पृ० 31-32,45,46,56-57

शान्ति आदि सभी निवास करते हैं । इन सब वर्णनों का समावेश गोरक्षनाथ ने एक ही वाक्य में करके बतलाया है" इस प्रकार सभी शरीरों में विश्व स्वरूप परमेश्वर चित्स्वरूपी परमात्मा अखण्ड स्वभाव से घट-घट में स्थित रहता है । इस प्रकार पिण्ड संविति होती है ।[35] [36] इसके साथ ही षट्चक्र साधन, नाडी साधन और नादानुसंधान सम्बन्धित है । इनका वर्णन पिण्ड वर्णन है । इसे व्यष्टि और समष्टि शब्दों में वेदान्त में कहा गया है । योग साधना के जितने भी प्रकार हैं । उन सबका मूलाधार पिण्ड ब्रह्माण्ड ज्ञान ही है । दूसरी ओर यह गोरक्षनाथ के अन्य विचारों का भी मुख्याधार है । इसी के आधार पर नाथ जी ने बाह्याचारों का खण्डन किया तथा तथा अन्त साधना का मण्डन किया । सहज साधना एवं सहज सिद्धि के साथ ही समदृष्टि ग्रहण, अहिंसा प्रचार के लिए भी यही सिद्धान्त उत्तरदायी है । संक्षेप में गोरक्ष सिद्धान्त के तीन बिन्दु हैं -हठयोग "प्राणायाम" गुरुवाद और पिण्डब्रह्माण्डवाद ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पातंजल योग दर्शन और गोरक्ष-संहिता-योग जनकजन्यभाव से एक ही हैं । इनका पारस्परिक अन्तर जो देखने में आता है वह तो केवल साधना के क्रम भेद से आता है । स्वस्वरूप ज्ञान ही योग की दोनों जगह

---

35. डा० नागेन्द्र, गोरक्षनाथ, पृ० 135

36. सि०सि०प० 3. ।

अन्तिम परिणति बतलाई गई है । जैसा कि अनेक मतावलम्बियों के मतों का निराकरण करके अन्त में मोक्ष का स्वरूप गोरक्षनाथ ने अमरौघ शासन में "यत्र सहज समाधिक्रमेण मनसा मनः समालोक्यते सः एव मोक्षः" कहा है ।[35] वहाँ "पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यम्"[36] यह लक्षण योग दर्शन में उसका किया गया है । जिनमें मन के उन्मनी होने की अवस्था अर्थात् संस्कार रहित स्वस्वरूप स्थिति को ही मोक्ष या अन्तिम स्थिति कहा गया है ।

---

35. अमरौघशासनम् पृ० 9

36. योग दर्शन समाधिपाद, 4.34

गोरक्षसंहिता और हठयोग

सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ ब्रह्म ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्व वेद का ज्ञान सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा इन ऋषियों के पवित्रतम हृदयों में पैदा किया गया था । अखिल ब्रह्माण्ड के अधिनायक ब्रह्म ने इन चारों मानवमात्र के कल्याणार्थ समस्त जीवन से सम्बन्धित ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और विज्ञानकाण्ड को बिन्दु में सिन्धु की तरह भर दिया ।

यह सत्य विद्या मानव हित में परा अपरा भेद से दो प्रकार की है । तो भी दोनों का प्रतिपाद्य जीव ब्रह्म को एकता ही है । तभी तो श्रुति ने स्वयमेव उन विद्वानों की भर्त्सना की है जो वेद शास्त्र के प्रधान तत्व जीवात्मा तथा ब्रह्म को नहीं जानते हुए भी अपने को पण्डित मानते हैं ।[37] उन्हें मुक्तिरूपी फल का प्रतिषेध बतलाया गया है । ब्रह्मनिष्ठ चेतन की उपासना करने वाले को ही मुक्ति मिलती है ।

इस प्रकार वेदों का मुख्य तात्पर्य चेतन तत्व को प्रत्यक्ष करना ही है । यह तात्पर्य कैसे सिद्ध हो सकता है । जब हम इस परिप्रेक्ष्य में चिन्तन करते हैं । इससे वेद के समस्त उपासना आदि साधन योग में जाकर अन्तर्भूत हो जाया करते हैं । इसलिए योग ही आत्मा और ब्रह्म की एकता के लिए प्रत्यक्षीकरण में सर्वोत्कृष्ट उपाय है ।

योग चित्तवृत्ति के निरोध को कहा गया है ।[38] चित्तवृत्तियाँ, क्षिप्त, मूढ़ विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध भेद से व्यास ने पाँच प्रकार की मानी है । इनमें एकाग्र

---

37. ऋग्वेद, 1.164.29

38. यो०द० 1.2

और निरुद्ध अवस्था ही योग को बनाती है । क्योंकि इन्हीं में सत्वगुण की एकतानता रहती है । प्रथम तीनों चित की अवस्थाएँ योग के अनुपयोगी हैं । इस योग का वर्णन ऋग्वेद 5•81•1 तथा यजुर्वेद 11•3 में मिलता है । यह योग महर्षि पतंजलि ने बहिरंग तथा अन्तरंग भेद से दो प्रकार का माना है । यम,नियम,आसन,प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच बहिरंग योग होते हैं । धारणा,ध्यान और समाधि ये संयम रूपी योग के अन्तरंग माने गए हैं । निर्बीज समाधि में ये तीन बहिरंग हो जाते हैं ।

पतंजलि के राजयोग में हठयोग बहिरंग रूप में आता है । विद्याओं की राजा,राजयोग विद्या को असमाहित चित प्राप्त नहीं कर सकता । चित को समाहित करने के लिए हठयोग की उपयोगिता होती है । जैसे ऊंचे महल में चढ़ने के लिए अधिरोहिणी की आवश्यकता मानी गई है । जो योगी अनेक जन्म कृत सुकृतों के कारण समाहित चित होते हैं । उन्हें हठयोग की अनिवार्यता नहीं है । जो योगी अभी राजयोग के प्रासाद पर नहीं चढ़े हैं, उन्हें इसकी आवश्यकता है ।

हठयोग का अर्थ है "ह" सूर्यस्वर पिंगला नाड़ी या प्राणवायु । "ठ" का अर्थ है चन्द्रस्वर इड़ा नाडी अपान वायु । प्राण और अपान की एकता को हठ योग कहते हैं । गोरक्षनाथ ने इसका लक्षण । हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते । सूर्यश्चन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ।[39] इस हठयोग को कार्य रूप में लाने वाले आदि

39•सि०सि०प०

आचार्य आदिनाथ जी हैं । उन्होंने राजयोग पर चलने के इच्छुक असमाहित चित वाले इच्छुकों के लिए तथा उनका उपकार करने के लिए इस हठयोग का उपदेश दिया था । श्री आदिनाथ के सम्प्रदाय में श्री मत्स्येन्द्रनाथ ,श्री गोरक्षनाथ,श्री आनन्द भैरव आदि अनेक अनुभवी आचार्य हुए हैं । अतः गोरक्षसंहिता का योग प्रकरण तो हठयोग का ही मानना चाहिए तभी तो वहाँ साधक से कहा गया है कि "जो छः चक्रों,सोलह आधारों,दो लक्ष्यों और पाँच आकाशों को अपने शरीर रूपी विश्व में नहीं जानता, उसे सिद्धि कैसे मिल सकती है ।[40]

1·चक्रों के नाम हैं :- मूलाधार,स्वाधिष्ठान,मणिपूर,अनाहत,विशुद्ध और आज्ञा ।

2· सोलह आधार :- 1·पादांगुष्ठ,2·मूलाधार,3·गुह्याधार,4· वज्रगर्भ नाड़ी,उड्डीयानबन्धाधार, 6· नाभिमण्डलाधार, 7·हृदयाधार, 8· कण्ठाधार, 9·कण्ठमूलाधार,10·जिह्वामूलाधार 11· जिह्वाधोभागाधार, 12·ऊर्ध्वदन्तमूलाधार, 13· नासिकाग्राधार, 14·नासिकामूलाधार, 15·भ्रूमध्याधार, 16· नेत्राधार ।

3· बाह्यलक्ष्य और आन्तरिकलक्ष्य

4· पाँच आकाश:- 1· श्वेतवर्ण ज्योतिरूप, 2· रक्तवर्ण ज्योति रूप, 3· धूम्रवर्ण ज्योतिरूप

40· गो०सं० योग प्रकरण, 1·12
गो०प० 1·13

4• नीलवर्ण ज्योतिरूप 5• विद्युत्वर्ण ज्योतिरूप । इनमें पहले के भीतर, दूसरा, दूसरे में तीसरा आदि क्रम से पाँचों की स्थिति मानी गई है ।

इसके पश्चात् शरीर जो आत्मा की आभास स्थली है । उसका एकमात्र खम्बा मन, नौ दरवाजे, दो नेत्र, दो नासिकाएँ, दो कर्णविवर, एकमुख, एकउपस्थ, और एक गुदा" पाँच देवता जो पाँच महाभूतों के स्वामी माने जाते हैं । जैसे पृथिवी का ब्रह्मा, जल, विष्णु, तेज-रुद्र, वायु ईश्वर आकाश सदाशिव इनको जो नहीं जानता वह योगी सफल कैसे हो सकेगा[41] । इस प्रकार से शरीर विज्ञान को बतलाकर, प्राणायाम के द्वारा मन रूपी स्तम्भ को स्थिर करने के उपाय बतलाए गए हैं ।

भूति प्रकरण में भी वीर्यरूपी बिन्दु के स्थैर्य का अनेकत्र उपदेश दिया गया है । जिससे यही सिद्ध होता है कि "गोरक्ष संहिता" हठयोग का प्रमुख ग्रन्थ है । तभी तो हठयोग प्रदीपिका के कर्ता स्वामी स्वात्माराम जी ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ आदि महापुरुषों की कृपा से यह हठ विद्या मुझे मिलती है[42] ।

41• गो०सं० यो०प्र० 1•13

42• हठयोगदीपिका, 1•4

गोरक्षसंहिता और सांख्य दर्शन

"गोरक्षसंहिता" के वर्तमान में उपलब्ध तीनों प्रकरणों के अवलोकन से यद्यपि यह आभासित होता है कि गोरक्षसंहिता का दर्शन सांख्य शास्त्र के तत्वों पर आधारित हैं । वे शुद्धयोग मार्ग के ही प्रवक्ता हैं । जो कादि प्रकरण तथा विभूति प्रकरण सर्वज्ञ मुनि ने उपदिष्ट किए हैं वे उसी मार्ग के उपकार हेतु माने गए हैं । इनके दर्शन के असली दर्शन सिद्धसिद्धान्त पद्धति में होते है । वहाँ इन्होंने 36 तत्वों ाको अपना आधार बनाया है । जिनमें पिण्ड ब्रह्माण्ड की रचना होती है और विश्व का प्रसरण होता है । इन दोनों की समतत्वता और समपदार्थता, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० कल्याणी मलिक आदि विद्वानों ने अपने शोध प्रबन्धों में दिखलाई है ।

गोरक्षनाथ के तत्व विवेचन के अनुसार प्रलयावस्था में शिव कार्यकारण के चक्र संचालन से विमुख, कुल अकुल भेद से परे व्यक्त रूप मेंरहते हैं[43] । इस अवस्था का नाम "स्वयं" कहा गया है । इस स्वयं में जब सिसृक्षा उत्पन्न होती है तब उसका नाम शिव हो जाता है । जो निर्गुण से सगुण की यात्रा मानी गई है । यह सृजनेच्छा ही शक्ति कहलाई जाती है । इसके उत्पन्न होते ही वेदान्त के रई और प्राण की तरह शिव और शक्ति, शब्द और अर्थ की तरह संपृक्त होने पर भी दो तत्वों के रूप में प्रतिभासित हो जाते हैं[44] । ~~दो तत्वों के रूप में प्रतिभासित हो जाते हैं~~ । पुनः ये दोनों पाँच रूपों में विकसित होते हैं । जैसे ---

---

43-सि०सि०प० कार्यकारणकर्तृत्वं यदा नास्ति कुलाकुलम् ।
अव्यक्तं परं तत्वं स्वयं नाम तदा भवेत् ।।

44-रघुवंश 1.1 वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

शिव	शक्ति
1•अपर	निजा "स्फुरित होने की पूर्ववर्तिनी, स्फुरित होने को उपक्रान्त
2• परम	परा "स्फुरणोन्मुख "
3•शून्य	अपरा "स्पन्दित होती है ।
4•निरंजन	सूक्ष्मा अंहिता "में पन का पृथक्त्व/भाव
5•परमात्मा	कुण्डली "अपनी पृथकतामें पूर्ण सचेत
इस अवस्था में शिव विश्व प्रपंच की उत्पत्ति पालन और संहार में समर्थ होता है ।	इसी शक्ति की सहायता से शिव, इस विश्व की उत्पत्ति पालन और संहार में समर्थ होता है ।[45]

यह कुण्डली वेदान्त की जड़ शक्ति माया से भिन्न चेतन से उत्पन्न चेतना शक्ति से ही मानी गई है । इसके लिए चिच्छक्ति, चिच्छीला, चिद्रूपिणी, अनन्तरूपा, अनन्त शक्ति, आदि शब्द गोरक्ष साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं । जगत् इसी का परिणाम है । इसके पाँच गुण -पूर्णता, प्रतिबिम्बता, प्रबलता, प्रोच्चलता, प्रत्यंगमुखता अन्य दर्शनों की शक्तियों की तरह ही बतलाए गए है । इसके बाद तीन परवर्ती विकास दिखाए गए हैं । सदाशिव-अहं प्रधान, ईश्वर इदं प्रधान, शुद्धविद्या- उभय विद्या प्रधान ।[47] शिव क्रमशः कथित पाँच अवस्थाओं से होते हुए जीव रूपता की ओर गति करता है । वह क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल तथा, स्थूल से स्थूलतर होता जाता है । इस प्रकार से गोरक्ष के तत्व विज्ञान में सृष्टिप्रक्रिया में विकास होता है और 36 तत्व उत्पन्न होते हैं । कथित 5 तत्व और 6 माया ।

45•डा० नागेन्द्रनाथ गोरक्षनाथ, 9 परि सि०सि० प०प०2 उप। श्लोक 14-15

46• सि०सि० प० 1•7 पूर्णता प्रतिबिम्बता प्रबलता, प्रोच्चलता, प्रत्यङ्मुखता । इति पंचगुण कुण्डलिनी शक्तिः ।।

47• नाथ संप्रदाय, पृ० 105

7-11 पंचकंचुक, 12 पुरुष, 13 प्रकृति, 14 महत् 15 अहंकार, 16-20 पंचतन्मात्राएँ, 21-31 एकादश इन्द्रिय, 32-36 पंचमहाभूत ।[48]

वास्तव में यह तत्व मीमांसा सिद्धसिद्धान्त संग्रह में की गई है । जहाँ कहा गया है कि "ब्रह्माण्ड के बीच में जो कुछ प्रक्रिया चलती है वह पिण्ड के बीच में भी तद्वत् ही है । अतः सारे विकास को पिण्डोत्पत्ति के अनुसार विभाजित किया गया है ।[49] जैसे 1.परपिण्ड तत्व 1-2, 2.आद्य पिण्ड तत्व 3-5, 3.साकार पिण्ड तत्व 6-13, 4 प्रकृत पिण्ड तत्व 14-20, 5अवलोकन पिण्ड तत्व 21-31, 6.गर्भ पिण्ड 32-36 । गर्भपिण्ड विकास प्रक्रिया का छोर माना गया है ।

इससे पिण्ड ब्रह्माण्ड की तुल्यता सिद्ध होने पर भी त्रिगुण काल और प्राण शक्ति के न्यूनत्व एवं बहुत्व के आधार पर ही दोनों में भेद हो जाता है तथा परं शिव की स्वयं अवस्था ही अन्तिम परिणति है । इसको जो प्राप्तकर लेता है वही नाथ बन जाता है । जैसे सांख्य शास्त्र में निर्लिप्त पुरुष कर्माकर्म से विमुख होकर जब प्रकृति के दर्शन कर लेता है । और प्रकृति असूर्य पश्या राजदारा की तरह फिर उसके दर्शन नहीं करती और तब वह पुरुष मुक्त हो जाता है । इसी प्रकार नाथ सम्प्रदाय में भी सत् और असत् से ऊपर उठी हुई आत्मा ही नाथ बन जाती है । उसमें यह सामर्थ्य होता है कि वह अपने से शिष्यों को

48.नाथ सम्प्रदाय, पृ0 109

49.सि0सि0सं0 ,पृ018 ब्रह्माण्डवर्ति यत्किंचित् पिण्डेप्यस्ति सर्वथा. ।

षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न कर देता है तथा उनकी कुण्डलिनी का उत्थापन कर सकता है। वह शक्तिपात् तीन रूपों में किया जा सकता है। दर्शन से, स्पर्श से तथा भाषण से।[50] इस प्रकार के नाथत्व को प्राप्त करना ही नाथ सम्प्रदाय का चरम लक्ष्य है।

इन सब बातों को देखते हुए कहा जा सकता है कि सांख्य के साथ नाथ सम्प्रदाय का निकटसम्बन्ध है।

बौद्ध लोग संसार की समस्त वस्तुओं को क्षणिक मानते हैं, स्व लक्षण मानते हैं।, दुःखमय स्वीकार करते हैं और अन्त में शून्य में परिणति मानते हैं।[51] जो असत् है वही ईश्वर है। इसलिए नाथ सम्प्रदाय के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। नाथों के मत में सत्-असत् से परे और भिन्न ही नाथ रूपी ईश्वर को स्वीकार किया गया है। हाँ तान्त्रिक साधना क्रम में तथा रससिद्धि में नाथों की बौद्धों के साथ कुछ समानता मानी जा सकती है।

गोरक्षसंहिता का भूति प्रकरण, बौद्धाचार्य नागार्जुन की, रासायनिक प्रक्रिया, अवश्यमेव ऋणी है। उन्होंने उनके नुस्खों का अनुसरण करके धातुओं उपधातुओं का जारण मारण और परिवर्तन करने के तरीकों को अपनाया है। आध्यात्मिक पक्ष दोनों

50• सारस्वत कुण्डलिनी महायोग, पृ0 42 दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव भाषणाद् सद्गुरोरपि।
शक्तिपातस्त्रिभिः रूपैः क्रियते शक्त देशिकैः।

51• सर्वदर्शन संग्रह, सर्वंक्षणिकं-2, स्वलक्षणं-2, दुःखं-2, शून्यम् शून्यम्।

मतों का सर्वथा भिन्न है । उसमें किसी प्रकार की समानता नहीं हो सकती ।

नाथमत वेदान्त मत से भी भिन्न है, क्योंकि वेदान्तियों ने ब्रह्म से उत्पन्न माया शक्ति को जड़ माना है । जबकि " न सतो विद्यते भावो नाभावः विद्यते सतः " का सिद्धान्त अटूट है । अतः चेतन ब्रह्म से अचेतन माया पैदा नहीं हो सकती । इसलिए नाथों ने नाथ से उत्पन्न शक्ति को चेतन माना है और उपनिषदों में बतलाए सदसद् मार्ग को अपनाया ।[52] तभी तो गोरक्षनाथ ने कहा " वस्तो न शून्यं-शून्यं, न वस्तो अगम-अगोचर ऐसा । गगन शिखर महं बालक बोलेहु ताका नाम धरहुगे कैसा ।। गोरख शब्द ।

इसीलिए अद्वैत वेदान्त का खण्डन भी किया गया है कि प्राप्ति पूर्वक ही निषेध होता है । जब शंकराचार्य जी ने ब्रह्म को अद्वैत मान लिया तो उसी से द्वैत सिद्ध हो जाता है ।[53] द्वैताद्वैत से विलक्षण नाथ तत्व को कोई नहीं जानते । यदि ब्रह्म सर्वगत स्थिर तत्व है तो माया को द्वैत और अद्वैत सिद्ध करने के लिए, क्यों कल्पित किया गया ।[54] इस प्रकार के खण्डन करके नाथ के सामने आद्य शंकराचार्य जी को पराजय दिखाई गई है । जिससे वेदान्त के साथ नाथ मार्ग के सम्बन्ध का विच्छेद माना गया है ।

---

52. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त, नासदासीन्नो सदससीत् ।

53. गो०सि०सं० ,पृ०, 16

54. गो०सि०सं०,पृ० 11, अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे । समं तत्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम् । यदिसर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः । अहो माया महामोहो द्वैताद्वैत विकल्पना ।

गोरक्षसंहिता आयुर्वेद के साथ बहुत मेल खाती है । गोरक्षसंहिता विभूति प्रकरण जिसे रस विज्ञान, रसतन्त्र, रसचक्र, रसोपनिषद्, भूतितन्त्र, और भूतिशास्त्र आदि नामों से पुकारा गया है, इसमें रसायन विद्या का आमूल वर्णन शास्त्रोक्त विधि से किया गया है । वैसे तो ब्राह्मण काल में ही रसायन का प्रचलन माना गया है, परन्तु व्यवस्थित रूप में बौद्ध सिद्ध नागार्जुन ने अपने ग्रन्थ "रसरत्नाकर" में इस विद्या का विशद् वर्णन किया है । उसके बाद शालीनाथ की लाथ मंजरी" मन्थान भैरव के "रसरत्नम्" और गोरक्षनाथ के भूति प्रकरण आदि में इस विद्या का पूर्ण विकसित रूप मिलता है । इस प्रकरण से काय की सिद्धि, धन की प्राप्ति और बाह्य आभ्यन्तरिक योग साधन करने की शक्ति ईश्वर की भक्ति, नाथत्व की प्राप्ति आदि अनेक लाभ साधक को दर्शाए हैं । जो साधक गीता के कथनानुसार "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिः" के लम्बे चक्र से छुटकारा पाना चाहता है और एक जन्म में परापर प्राप्ति मुक्ति को प्राप्त करना चाहता है । वह पारद या औषध का सेवन करे और शरीर को अजर अमर बनाकर साधना द्वारा नाथत्व प्राप्ति करके सदेह मोक्ष प्राप्त कर ले ।

आयुर्वेद भी रोगों से मुक्ति देकर शरीर को कर्म योग्य बना देता है । जिससे प्राणी अपने जीवन में पूर्ण रूप से सुकर्म करके प्राप्तव्य स्थान को प्राप्त कर सके । स्थूल शरीर के स्वस्थ होने पर उसकी परिधि में रहने वाला मन भी स्वस्थ होगा ।

मन के स्वस्थ होने पर उसका चिन्तन भी स्वस्थ होगा । तभी तो स्वास्थ्य के नाश को घातक बतलाया गया है । जो आयुर्वेद के प्रयोजन हैं वही भूति प्रकरण के भी माने गए हैं । जिससे कोई भी कह सकता है कि गोरक्षसंहिता और आयुर्वेद आपस में पूरक ग्रन्थ या शास्त्र माने गए हैं ।

इस तरह वर्तमान के बहुत से विद्वान नाथ साहित्य पर शैव तन्त्र का, शाक्ततन्त्रों का तथा बौद्ध तन्त्रों का भी कादिप्रकरण पर प्रभाव मानते हैं । डा० जनार्दन पाण्डेय ने इसे केवल कल्पना ही स्वीकार किया है, क्योंकि नाथ लोग स्वयं भी तान्त्रिक हुए हैं । मत्स्येन्द्र नाथ ने कौल मार्ग कामरूदेश में चलाया था[55] । तभी तो वशीकरण आदि मन्त्रों में भी कहा गया है कि "कामरु देश कामाख्या देवी, उत्थे बसे मच्छेन्दर योगी" आदि-आदि । यद्यपि नाथ पंथ का मुख्य मार्ग शुद्ध योग ही है, परन्तु उसे प्राप्त करने के लिए बाह्य साधना तन्त्र को भी उसी का अंगमान लिया गया है[56] । इसलिए गोरक्षसंहिता का कुछ सम्बन्ध आयुर्वेद से है न कि तन्त्र ग्रन्थों से । आयुर्वेद का वर्णन भी सर्वज्ञ नाथ स्वकुशल बुद्धि से कर सकते थे । भूति प्रकरण में शास्त्र की प्रामाणिकता को अधिक महत्व दिया गया है । जिससे उस पर आयुर्वेद का प्रभाव अधिक झलकता है[57]।

55• गो०सि०सं० भूमिका "ट"

56• गो०सि०सं० पृ० 14

57• भूति प्रकरण 4•139•142, 3•97

अतः गोरक्षसंहिता शैवदर्शनों में से रसेश्वर दर्शन के साथ विषयगत दृष्टि से कुछ साम्यता रखती है, अन्य मतों से नहीं । तन्त्रों की साम्यता भी विषयगत दृष्टि से हो सकती है । इसे प्रभाव की दृष्टि से नही माना जा सकता । इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि गोरक्ष-संहिता त्रिफला या त्रिपुटी होने पर भी लक्ष्य की दृष्टि से पातंजल योग से ही साम्यता रखती है । उसी का विकसित रूप या भाष्य रूप से यह संहिता बनी है । इसका भूति प्रकरण रसेश्वर दर्शन का ही परिमार्जित रूप माना जा सकता है । कादि प्रकरण में तीनों तन्त्रों का संमिश्रीकरण रूप सामने आया है। किन्तु मुख्य उद्देश्य नाथत्व की प्राप्ति ही है जिसे मोक्ष कहा गया है ।

शिव विषयक सिद्धान्त :-

शैवमत अथवा महेश्वर मत पर्याप्त प्राचीन है । इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है । इस बात को जानने के लिए, डा० फर्कुहर, डा० भण्डारकर डा० यदुवंशी आदि के ग्रन्थ को देखा जा सकता है । डा० भण्डारकर के अनुसार माहेश्वर नाम शैवों के लिए अति प्राचीन है[1] । वैदिक रुद्र देवता उपनिषद् गृह्य सूत्र और पतंजलि काल तक रुद्र ही रहा । महाभारतकाल में तथा तद् उत्तरवर्ती समय में वह सौम्य बनकर कल्याणकारी शिव बन गया । तभी तो पुराणोत्तर काल में शैव मत में विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई । सोने के पिघलने की जैसे ही जानकारी हुई थी कि अनेकों गहने बनने लगे । वैसे ही रुद्र शिव बने कि उनके नाम पर भी दो मुख्य भेद -पाशुपत शैव और आगमिक शैव बन गए । जो कि इस तरह अपने में अन्य मतों को समेटते रहे हैं । पाशुपत शैव में पाशुपत लाकुलीश, कापालिकनाथ, गोरखनाथ और रसेश्वर आते हैं[2] । आगमिक शैव में शैवसिद्धान्ती तमिल शैव काश्मीरी शैव और वीर शैवों की गणना की गई है । यद्यपि यहाँ पर गोरक्षनाथ को पाशुपत शैवों में गिना गया है और उन्हें शिव का अवतार स्वीकार करने वाला माना गया है तथा आगमिक शैव अवतार नहीं मानते । डा० फर्कुहर ने यह विभाजन दिया है ।

---

1. भण्डारकर, पृ० 146-169, पृ० वैष्णविज्म शैविज्म०,

2. डा० नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ, पृ० 68

गोरक्षनाथ की कृतियों तथा उनके व्यक्तित्व के आधार पर यह स्वीकार नहीं किया जा सकता । वे तो इन दोनों सम्प्रदायों को जोड़ने वाले सेतु ही माने गए है । तभी तो परवर्ती काल में इन्हें शिव का अवतार माना गया है ।

शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों के नामों के साथ नाथ शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे केदारनाथ, विश्वनाथ, वैजनाथ,पशुपतिनाथ, आदि-आदि इससे नाथ पन्थियों ने 6 वीं शताब्दी के पश्चात् जब बौद्धों ने समस्त हिन्दुओं के सम्प्रदायों को निगल लिया था । तब रक्त में बसी श्वेत भावना को उजागर करने के लिए नाथ सम्प्रदाय को नया जामा पहनाया था । जहाँ पर नाद बिन्दु की उपासना के महत्व को दर्शाने के लिए अपने नाम का ही नाथ रख दिया । अर्धनारीश्वर शिव और शक्ति कुण्डलिनी और ब्रह्मरन्ध्र के वासी शिव जब कैलाश अर्थात् शून्य आकाश में एक हो जाते हैं तब पतित्व की संज्ञा को प्राप्त करके महान् बन जाते हैं । जिसे नाथों ने द्वैताद्वैत विवर्जित परमोच्च नाथ स्थान माना है । इस तरह शैवों के तीनों तत्वों -पति,पशु और पाश को नाथों ने स्वीकार किया है । उनमें कुछ नई उद्भावना देकर योग के साथ जोड़कर,शक्तिपात का नया तरीका बौद्धों की नई साधना को लेकर, इस मत को सर्व व्यापक बनाया । तभी तो डा० हजारी

3•ऐन आउट लाइन आफ द रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया,पृ० 190-91।

प्रसाद द्विवेदी जी ने शंकराचार्य के शुष्क अद्वैतवाद के पश्चात् नाथ आन्दोलन को भारत का सबसे शक्तिशाली आन्दोलन माना है । जो कुरितियाँ समाज में घर कर गई थी उन्हें नाथों ने ही दूर किया । समाज ने बाद के भक्ति आन्दोलनों के सामने नाथ मत को भी हठयोग कहकर उसे कठिन समझा और भुला दिया, क्योंकि हिन्दु जाति बहुदेववाद को मानने के कारण एक देव की निष्ठा को अधिक देर अपने मस्तिष्क में नही रख सकती है । वैसे नाथ मत को में कोई ऐसी दुराग्रहपूर्ण तथा निरर्थक बात नहीं है कि इस मत को भुला या छोड़ दिया जाए । इस मत में भूत दया, उत्थान, आत्मकल्याण तथा एक जन्म में मोक्ष-प्राप्ति की बात यद्यपि बहुत लुभाने वाली है, तोभी लोगों ने इस मत को भुला दिया । इसे "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः", के सिद्धान्त के अनुसार मानव जगत को ही चाहता है तथा उसमें क्षण-क्षण में नवीनता के रस को चाहता है । यही इन्द्रियों का स्वाद पाश है जो मोक्ष के द्वार को हमेशा रुद्ध किए बैठे रहता है ।

जहाँ तक शिव विषयक सिद्धान्त की बात "गोरक्षसंहिता" के विषय में आती है वहाँ तो सारी संहिता शिव और पार्वती के मुख से कहलाई गई है । कादि प्रकरण तथा भूति प्रकरण में पार्वती प्रश्न करती है तो भैरव रूपी शिव उनका उत्तर देते हैं । दूसरे कौल मार्ग की उत्पत्ति भी शिव से ही मानी गई है । अकुल नाम शिव का है जो सबसे प्रथम सृष्टि में हुए वे अव्यक्त हैं, भाषा से रहित है, उसमें कोई ऐच्छिक तरंगे नहीं है । कुल भी उनका कोई नहीं है, सूक्ष्म अवलम्बन रहित, संसार में व्याप्त

होने पर भी निरंजन है । वह शिव अव्यक्तावस्था से जब व्यक्तावस्था प्राप्त करते हैं तब उनकी देह से इच्छाशक्ति पैदा होती है जो परा शक्ति मानी गई है, जिसका कभी भी नाश नहीं होता । उसी से श्रेष्ठ पचास कुल नायिकाएँ भी पैदा होती है[4] तभी कौल मार्ग में कुल का अकुल के साथ सम्बन्ध जोड़ना मोक्ष माना गया है । क्योंकि कुल नाम शक्ति या कुण्डलिनी का है । अकुल नाम शिव का माना गया है । उन को एक स्थान पर युक्त करना कौल ज्ञान कहलाया जाता है[5]। यह मार्ग उभयविध माना गया है -प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप। दूसरी तरफ जहाँ भोग होता है वहाँ मोक्ष नहीं मिलता । जहाँ मोक्ष की विद्या है वहाँ भोग नहीं मिलता । नाथमत वालों के लिए दोनों हाथों में से एक हाथ में भोग रहता है दूसरे में मोक्ष रहता है। इसलिए नाथमार्ग संसार के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में प्रवृत होता है।

शक्ति विश्व का सृजन करती है शिव उसका पालन करता है, काल संहार करता है और मुक्ति नाथ द्वारा दी जाती है[6] शिव के बीच में शक्ति रहती है और शक्ति में शिव रहते हैं । जिस प्रकार चन्द्रमा और उसकी चान्दनी में अभेद रहता है उसी प्रकार शिव शक्ति भी अभिन्न है ।[7] व्यापकता में शिव शक्ति भासित होती है और संकोच में शिव । उन दोनों का संयोग करने वाला योगी माना जाता है[8]। इस प्रकार योगी या नाथ गुरु, जीव रूपी पशु के पाशों को छेद कर सकता है । अतः योग से युक्त ज्ञान ही मोक्ष कहलाता है । पिण्ड सिद्धि ही मोक्ष का परम साधन है ।जीवन मुक्ति सहित सिद्ध देह से नाथ स्वरूप में अवस्थान ही परम समरसीकरण या मोक्ष है । जिसे

---

4. गो०सं०का०पृ० 12.103-105

5. सौभाग्य भास्करे,

6. गो०सि०सं०, पृ० 49 शक्त्या तु सृज्यते विश्वं शिवेन परिपाल्यते । कालेन संह्रियते मुक्ति नाथेन दीयते ।

7. गो०सं० का०पृ०, भूमिका "ज"

8. वही

जिसे प्राप्त करने के तीन उपाय वर्तमान उपलब्ध गोरक्षसंहिता में दिए हुए हैं । तन्त्र द्वारा, रसपान द्वारा, और योग द्वारा । कादि प्रकरण में तन्त्र के द्वारा मोक्ष साधन या पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति बतलाई गई है । भूति प्रकरण में रस के सेवन से, जिसमें शिव का रस पारद और पार्वती का रस गन्धक है उनके सेवन से मोक्ष या अमर देह मिल सकती है । अतः गोरक्ष-संहिता शिव और शक्तिवाद का पूर्ण उपदेश देती है । और इन दोनों तत्वों की सूक्ष्म व्याख्या भी करती है । शिव यदि आकाश है तो पृथिवी पार्वती । इन दोनों के पारस्परिक संमिश्रण से ही संसार की उत्पत्ति और पालन हो सकता है । तभी वेद का मन्त्र ऋत् और सत्य भी सार्थक बनता है [1] ।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने नाथ सम्प्रदाय नामक अपने ग्रन्थ में "शाक्त उपादान" नामक प्रकरण अलग से रखा । उनकी दृष्टि में योगियों के यहाँ शाक्त उपादान पूरी मात्रा में माना जाता है । प्रायः सभी पीठों में शक्ति की उपासना की जाती है और उसमें मन्त्र, बीज, तन्त्र, कवच, न्यास, और मुद्राओं का उसी तरह प्रयोग होता है जैसे तान्त्रिक साधना में । हिंगलाजा परमेश्वरी तथा ज्वालामुखी योगियों की प्रमुख उपास्य शक्तियाँ हैं । सारी यौगिक प्रक्रिया, आसन, प्राणायाम आदि शक्ति संग्रह के लिए किए जाते हैं । अतः गोरक्षनाथ

---

१ • ऋतं च सत्यन्च तपसाध्यजायत यजुर्वेद ।

की संहिता शक्ति के ग्रह का एक आगार है । यही कारण है कि कादि प्रकरण में शक्ति के पीठों,उपपीठों का अलग से वर्णन किया गया है।[10] यही नहीं देवी के अपर भेद किएगएहै । ये पर और अपर रूप है । परा देवी के रक्त,श्वेत और कृष्ण ये तीन नेत्र भी गिनाए है।[11]

पुनः द्वितीय पटल में ही उच्छूना नदी के प्रसंग में देवी की कला प्राप्ति बतलाई है। जिससे वह कामरूपिणी बनकर समस्त संसार को जीत लेती है । चन्द्रमा से समागम होने पर नव नाथों को जन्म देती है, का प्रसंग आया है । फिर तेरह पुत्र,तेरह पुत्रियों का वर्णन भी किया गया है ।[12] पुनः नीलोत्पलदलश्यामाबिम्बोष्ठी की संज्ञा देकर चारुहासिनी,एकवक्त्रा, त्रिनेत्रा,द्विभुजा आदि विशेषण देवी के लिए दिए गए हैं।[13] फिर उसको सहयोगिनी योगिनियों का भी वर्णन किया गया है । कामरूप पीठ के वर्णन प्रसंग में ही पुत्र पुत्रियों का भी वर्णन किया गया है । अनन्तर शिव की प्रार्थना की गई है । यहाँ शिव को त्रिलोचन कहा गया है । जगन्नाथ सुरासुरगुरु आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है ।[14] फिर वीरचक्र की पूजा का विधान,शव की साधना, ,देहस्थमातृका स्थान वर्णन,मातृका के पदों की कल्पना तथा "ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डाये विच्चे" इस नवार्ण से अनेकार्ण

10.का0पु0 पृ0 7,हिमवत्पीठमुत्तमम् । का0पु0पृ0 10

11.का0पु0 पृ0 7, रक्ता श्वेता तथा कृष्णा त्रिनेत्रा च शिवा परा ।

12.वही, पृ0 9,

13. वही, पृ0 10

14. का0पु0 च0 प0 पृ0 15

बनाने का विधान आया है । क्योंकि रज,सत् और तम आत्मक,महासरस्वती,महालक्ष्मी महाकाली एकरूपता चामुण्डा में प्राप्त करती है । चामुण्डा का अर्थ है - च अमुं -डा -दा-दाने अर्थात् जो इन तीनों को शक्ति देती है या संगृहीत करती है । मातृस्थान, कूटन्यास, षड्विधन्यासस्वाभाविकन्यास,चक्रभेद,चक्रभेद वर्णन,देवी-कवच, मालिनिचक्र, कालचक्र,मुद्रासाधन, जालन्धरबन्ध,अघोर-वर्णन,लिंगदर्शन-साधन,षोडषाधार वर्णन,दिव्ययोगिनी वर्णन,परा अपरा,परापरा विद्या का वर्णन, कामेश्वरी विद्या का वर्णन,कुब्जिका वर्णन गायत्री निर्णय, आदि से पता चलता है कि "गोरक्षसंहिता" त्रिपुटी विद्या है । योग शाक्त तन्त्र एवं शैव तन्त्र इन तीनों का मिश्रण या त्रिफला बना है । इसलिए इस संहिता के एक प्रकरण में जहाँ यह ज्ञान होता है,वहीं भूततन्त्र से आयुर्वेद भी इसका जीवातु बन जाता है । इस तरह यह संहिता, दार्शनिक दृष्टि से शैव और शाक्तों का सामंजस्य स्थापित करने वाली मानी जा सकती है । तभी तो पंचवक्त्रा गायत्री और पंचवक्त्र शिव एक हो सकते हैं । दोनों के एकीकरण से अल्ला उपासक मुस्लिम और शिवोपासक हिन्दु एक हो सकते हैं । वाममार्गी और दक्षिणमार्गी भी दोनों समझने के बाद ही मध्यमार्गी सुषुम्णारूपी राजमार्ग पर चलकर अपने कर्मों का भर्जन कर सकेंगे और निष्काम योगी की कोटी में बैठ सकेंगे । जहाँ पहुँचकर नाथ पद मिल सकेगा ।

ईश्वर विचार विमर्श :-

ईश चष्टे धातु से वरच् प्रत्यय करने पर ईश्वर शब्द बनता है दर्शनशास्त्र का विषय है पिण्ड-ब्रह्माण्ड,जीव,ईश्वर इनका पृथक्करण,एकीकरण आदि है। भूतिर्विभूतिरैश्वार्यः" इस प्रकार से कोश में भूति को ऐश्वर्य का पर्यायवाची कहा है । ऐश्वर्य नाम ईश्वर के भाव का है । षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न जीवों की उत्पत्ति,विनाश, आवागमन,विद्या,अविद्या को जानने वाला ही ईश्वर होता है । षड्विध ऐश्वर्य का नाम ही संस्कृत में भग है ।[15] "भगं यस्य अस्ति स भगवान्" अर्थात् ये छः जिसमें सम्पूर्णरूपसेरहते हैं, उसे भगवान् भी कहा जाता है । जीव और भगवान् का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत घनिष्ट है । जैसे आग और उसके स्फुलिंगों का सम्बन्ध होता है,कूल औरक्यारी के जल का सम्बन्ध होता है, ये जीवात्मा पाश रूपी कर्म बन्धन में बन्धकर अपना भिन्न अस्तित्व प्राप्तकर लेती है और उसके अनुसार अपने आप कर्म करना आरम्भ कर देती है । वे संसार के क्लेश कर्म को प्राप्त करती रहती है । कर्मविपाक रूपी क्लेश से निर्लिप्त व्यापक क्षेत्र सम्पन्न समभावापन्न ईश्वर माना गया है । जो देहादि अनात्म वस्तु,आत्मा मान लेते हैं[16] वही अभिमान आत्मा का बन्धनरूप

15· गीता पर मधुसूदनी भाष्य अध्याय-7· ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इति इंगना ।

16· सर्वोपनिषद्सार, अनात्मनो देहादीनात्मत्वेनाभिमन्यते सो भिमानः आत्मनो बन्धस्त-निवृत्तिर्मोक्षः ।।

होता है । ईश्वर इस बन्धन से विमुक्त माना जाता है, तभी तो अमनस्क योग तन्त्र में कहा है कि भाव और अभाव से विनिर्मुक्त नाश और उत्पत्ति से विवर्जित सभी संकल्पों से परे ही ब्रह्म या ईश्वर की स्थिति है ।[17] वह स्थिति नाथ रूप में अवस्थित होने पर ही हो सकती है । इसीलिए तो कलियुग में नवनारायणों ने, नौ नाथों का शिवाज्ञा या आदिनाथाज्ञा से अयोनिज अवतार लिए, क्योंकि कलियुग के कदाचार से जीवात्माएँ कदर्थित होकर नरक जा रही थी । उनका उद्धार करने के लिए 1. कविनाराय- मत्स्येन्द्रनाथ, 2. हरिनारायण- गोरखनाथ, 3. अन्तरिक्ष नारायण- जालन्धरनाथ, 4. प्रबुद्ध नारायण- कानीफानाथ, 5. द्रुमिल नारायण-भर्तृहरिनाथ, करभाजन नारायण- गहिनीनाथ, 7. चमस नारायण-रेवणनाथ 8. आविर्होत्री नारायण- नागनाथ और 9. पिप्पलायन नारायण -चर्पटीनाथ के रूप में अवतरित होकर लोगों के कल्याणार्थ मार्ग द्रष्टा बने । जिनको भविष्यत् पुराण में गिनाया गया है ।[18] ऐसा इन नारायणों ने क्यों किया ? क्योंकि गंगा नदी पाप का, चन्द्रमा ताप का कल्पतरु दीनता का हरण करते हैं । महात्मा अकेले ही पाप-ताप-दैन्य तीनों का हरण करने वाले माने गए हैं ।[19] अतः कलिमानव के तापहारी नाथ बने तथा उनका मंगल आज करते

---

17. अमनस्क, 1-12 भावाभावविनिर्मुक्तं नाशोत्पत्ति विवर्जितम् । सर्वसंकल्पनातीतं परं ब्रह्म तदुच्यते ।

18. भविष्य पुराण, कवि हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलः चमसः करभाजनः ।।

19. नवनाथ चरित्र, पृ0 1, गंगापापं शशीतापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महायशाः ।

जा रहे हैं । नाथों के बारे में युक्ति है कि ये सब लोगों को अभय दान देते हैं । लोग भी इन्हें अभयदान देते हैं । ऐसा आगम ग्रन्थों में सुना जाता है ।[20]

इस प्रकार से प्राणिमात्र को दया करने वाले नाथ " आत्मवत्सर्वभूतेषु की भावना रखकर "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्नाचरेत्" के व्यवहार को करते हैं । जिससे यह अनुमिति को जा सकती है कि नाथ मत,सर्व अभ्युदय को महत्त्व देते हैं तथा इनके ग्रन्थों में जोव को स्वतन्त्रता तथा उसके लिए भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्ति भी अभीष्ट हैं । ऐसा नहीं कि वे संसार रूपी भोग को लताड़ना करके मोक्ष को ही अधिमान देते हों । वे देह मुक्ति के द्वारा ही विदेह मुक्ति नाथों को अभीष्ट है । इसलिए नाथों के ईश्वर परमनाथ और ब्रह्म परात्पर नाथ माने गए है । जिनका संहिता में आभास होता है । वहाँ दो ही पदार्थ अभिलक्षित होते हैं- योग और भोग । योग से मुक्ति और भोग से बन्धन जोवों को ही भोगेषणा बन्धकर पाश का काम करती हैं और उन्हें पशु बना देती है । योगी आरम्भ में परिश्रम करके मुक्ति पा लेता है जहाँ कोई संस्कार फिर नहीं रहते । यह संस्कार होनता या उन्मनी अवस्था ही ईश्वरत्व का कारण है ।

20·राजेश दीक्षित, नवनाथ चरित्र,पृ0 ।, अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुमः ।

कार्यकारणवाद का सिद्धान्त

भारतीय दर्शन शास्त्रों में न्याय वैशेषिक का प्रथम स्थान माना गया है । तभी तो पाणिनि और कणाद को समस्त शास्त्रों का उपकारक स्वीकार किया गया है ।[21] ऐसा क्यों ? जब हम इस बात पर विचार करते हैं तो पाणिनि शास्त्र तो स्वरूप का ज्ञापक होने से उपकारक हो सकता है अर्थात् जब तक भाषा का स्वरूप समझ में नहीं आया, तब तक भाषागत विषय समझ में नहीं आ सकता । उस तरह से कणाद का वैशेषिक दर्शन कैसे सर्व शास्त्रों का उपकारक माना गया । इसका सम्यग् उत्तर कार्यकारणवाद ही हो सकता है । संसार में "कारणमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते" का सिद्धान्त अटूट है । जो भी कुछ होगा उसका कोई कारण माना जाएगा । तभी तो कहा गया है कि अगर संसार का कोई कारण नहीं तो कुम्हार के बिना घड़ा, चित्रकार से बिना चित्र बनने लगेंगे ।[22] इसी से अनुमान किया जा सकता है कि संसार की दृश्यमान सृष्टि का कुछ न कुछ कारण है जहाँ वह प्रत्यक्ष दीख सके वहाँ प्रत्यक्ष से उसे जान लें । जहाँ प्रत्यक्ष से कारण के दर्शन न हो सके वहाँ अनुमान या आगम से उसे जाना जा सकता है । जिससे समवायी और असमवायी तथा निमित कारणों का सिद्धान्त विच्छिन्न न हो ।

गोरक्षसंहिता कार अपने तीनों प्रकरणों में इसकी सूचना देते हैं ।

---

21. पाणिनीयं कणादञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम् ।

22. उदयनाचार्य, न्याय कुसुमाञ्जलि, 4.1

जगतो यदि न कर्ता कुलालेन विना घटः ।

चित्रकारेण विना चित्रं स्वयमेव भवेत्तदा ।।

कादि प्रकरण में तान्त्रिक साधना करके चक्रों में प्रकाश के दर्शन तथा चलचक्र में संयुक्त दर्शन एवं देवी के पीठों में देवी के दर्शन करना तथा भूति प्रकरण में रस से अपने शरीर को अमर बनाकर अमरत्व की बात कही गई है । "रसं वै प्राप्य रसो वै भवति सः" के सिद्धान्त के अनुसार रस शोधन तथा उसके सेवन को उसका कारण माना गया है । उसी प्रकार योग प्रकरण में भी बाह्य साधन को आन्तरिक धारणा ध्यान समाधि का कारण माना गया है । उसे प्राप्त करने के लिए एकतान कार्य एवं ध्यान को मोक्ष का कारण माना गया है ।

अतः भास होता है कि गोरक्षनाथ जी का साहित्य भी इससे छूट नहीं सका । वे भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सतत अभ्यास को जहाँ कारण स्वीकार करते हैं वहाँ गुरु को मोक्ष का द्वार स्वीकार करते हैं । अतः कार्यकारण का सिद्धान्त गोरक्षसंहिता में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वर्णित नहीं है तो भी योग को मुक्ति का सोपान बताया गया तथा काल की वंचना कहा गया है ।[23] योग को कल्पवृक्ष का फल बतलाते हुए संसार का तापनाशक -वत लाकर उसके सेवन की सलाह दी गई है ।[24] फिर कार्यकारण का प्रत्यक्ष दर्शन आत्मा और

---

23. गो०सं० 1.5 एतद्विमुक्ति सोपानमेतत्कालस्य वञ्चनम् ।

24. वही, 1.6 द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम् ।
शमनं भव तापस्य योगं भजत सत्तमाः ।।

परमात्मा के एकत्व प्रतिपादन के उदाहरण में देखने को मिलता है । जैसे दूध में दूध, घी में घी, आग में आग मिलकर लीन हो जाते हैं । वैसे ही जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है ।[25] क्योंकि द्रव्य नित्य है और उसमें उत्पन्न कार्य अनित्य है । घड़ा टूट कर फिर मिट्टी हो जाता है । वैसे ही जीव भी अपने कारण ईश्वर में लीन हो जाता है । इसके बाद वह तत्व बन जाता है । जैसा कि कहा गया है" जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी । फटा कुम्भ जल जल ही समाना यही तत्व कहानी" इसी प्रकार से कादि प्रकरण के 21 पटल में गुरु की अनिवार्यता बतलाते हुए कहा गया है । कि गुरु को ढूंढे, उन्ही की कृपा से सबकुछ मिल सकता है ।" इसमें भी कारण गुरु को बनाया गया है ।[26]

कहने का तात्पर्य यह है कि कार्यकारणवाद को गोरक्षनाथ ने पूरी तरह से पालन किया है और अपने देश के "छिन्ने मूले न पत्रं न शाखा" के मूल सिद्धान्त की रक्षा की है । करते भी क्यों नहीं, नाथ जब धर्म जाति गुण, और आचार नियमों की रक्षा के लिए पैदा होते हैं । ।

---

25. गो०सं०या०ख० 1.97, दुग्धे क्षीरं घृते सर्पिरग्नौ वह्निरिवार्पितः ।
तन्मयत्वं व्रजत्येवं योगी लीनः परे पदे ।।

26. वही 21.18 गुरुप्रसादाल्लभ्येत नान्यथा तु कदाचन ।

शुद्ध विद्या :-

मानव अपने में पूर्ण है । उसमें न्यूनता और महत्ता का कारण, यदि कोई माना जा सकता है तो केवल विद्या को ही । परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की है । वहाँ परा की प्रधानता होने से पहले गिनती करने पर भी समझाने के लिए अपरा को ही लिया गया है[27] । ऋग्वेदयजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष अपरा विद्या कहलाती है । परा उस विद्या का नाम है, जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाए क्योंकि उस अक्षर ब्रह्म से संसार वैसे ही पैदा होता है । इसके पश्चात् वह उसमें ही लीन हो जाता है । जैसे मकड़ी से उसका जाला तैयार भी होता है और उसमें लीन भी हो जाया करता है [28] । इसलिए उस ब्रह्म को बतलाने वाली विद्या को अवश्य ही उस प्राणी ने जानना है । तभी उसकी मानवता "मत्वा कर्माणि" निर्वचन पर ठीक उतर सकती है । वैसे तो जीव चौरासी लाख योनियों में से किसी न किसी योनि में गया हुआ ही रहता है । परन्तु मानवेतर योनियाँ, भोगकारी होने से वहाँ कोई उद्धार कर्म नहीं कर सकती । स्व उद्धार हो या पर उद्धार वह तो मानव योनि में आकर ही जीव कर सकता है । यह योनि कर्म योनि मानी गई

---

27. मु०उ० 1.4 कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति । तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये विदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्म विदो वदन्ति परा चैवापरा च ।

28. वही 1.5.29, 1.7

है । इसीलिए मानव के मस्तिष्क का विकास ह्रास उसके अपने हाथ में हैं । तभी तो महाभाष्य के पस्पशाह्निक में ज्ञान पूर्वक अप् शब्द के प्रयोग में अधर्म बतलाया है । इस तरह से अविद्या की उपासना करने वाले को अन्धेरे में व्याप्त घोर नरक में प्रवेश करना पड़ता है और उससे भी अधिक अन्धकारमय नरक में बिना गुरु के जो विद्या की उपासना करता है उसे जाने को कहा गया है[30] । इसलिए ऋषि ने सलाह दी है कि विद्या और अविद्या के अध्ययन से मृत्यु को जीतकर अर्थात् प्राणायामादि विधि सीखकर विद्या अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान रूपी योग से मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे[31] । इसी तरह असम्भूति और सम्भूति अर्थात् अविनाशी ब्रह्म ज्ञान तथा विनाशी जगत ज्ञान का प्रवाद भी वहाँ आया है । जिससे प्रतीत होता है कि स्वकीय ज्ञान से ही जब ब्रह्माण्ड ज्ञान अभीप्सित है तो सांख्य कारिका में बतलाए गए अतिदूर, अतिसामीप्य, इन्द्रियघात आदि में से जीव अपने को अतिसमीपता के कारण से नहीं देख पाता[32] । दूसरे करण के द्वारा ही दर्शन कर्म हो सकता है । पाणिनि ने तभी तो "करण को साधकतमम्" कहा है[33] आत्मा करणों से परे स्वतन्त्र कर्ता माना गया है[34] । गीता में

30• ईशावास्योपनिषद् 9, अन्धः तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।

31 वही, 11, विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।

32• सा०का० 7

33• अष्टाध्यायी, 1•4•42

34• वही, 1•4•54 स्वतन्त्रः कर्ता

कहा है कि शरीर से श्रेष्ठ और आगे इन्द्रियाँ है उनसे आगे मन अन्तरिन्द्रिय माना गया है ,तब बुद्धि का स्थान आता है और आत्मा तो बुद्धि से भी परे है [35] इसलिए उसका तो दर्शन नहीं होगा अपितु विद्या के द्वारा,मनन निदिध्यासन और बोध ही किया जाएगा । जिसके लिए गोरक्षसंहिता, के कादि प्रकरण में मालिनी विद्या तथा चलचक्र ज्ञान दिया गया है । जिस चलचक्र में पाद अंगुष्ठ से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक के षोडश तेजों को एक करके आखों को नाक की नोक रूपी बाह्य आधार में स्थित करने के षाण्मासिक अभ्यास की आज्ञा दी गई है । जिससे शरीर के अन्दर का तेज भूमि बनकर अलातचक्र की तरह घूमने लगेगा । जो शरीर में "रफ्लेक्शन" वर्चस्व को पैदा करेगा । तब आभ्यन्तरिक लक्ष्य को भेदन करने में साधक सफल होगा ।[36] क्योंकि चला नामक शक्ति का है,जब वह चक्र भेद में लग जाए ।[37] वे चक्र आठ-आठ अरों वाले पैर,जानु,ऊरु, नाभि,हृदय और कण्ठ में माने गए है । जो वज्रलेप जैसे दृढ़ हैं क्योंकि उन चक्रों की कर्णिकाओं में अत्यन्त बन्धन दिया गया है । वहाँ जब

35•गीता 2•42

36•यो०सं० का०प्र०पृ० 25, चलचक्रविभागेन लक्ष्यभेदमुदाहृतम् ।

37•वही, चलाशक्ति इति ख्याता चक्रभेदे व्यवस्थिता ।

सरस्वती रूपी विद्या या सुषुम्णा से होती हुई कुण्डलिनी पहुँचेगी, तब यदि उसका ध्यान किया जाए तो प्राण वायु से प्रेरित होकर वहाँ का तेज तपेगा और शरीर के बाहर का तेज भी चलचक्र घूमने लगेगा । जब वह तेज स्वयं को आभासित होगा तो छः मास में ही अणिमादि सिद्धियाँ मिल जाएँगी और चक्र भेद भी हो जाएगा । तब अर्ध चन्द्र की कला से युक्त ब्रह्म रन्ध्र में बैठे शिव में बिन्दु स्वरूप उसमें ध्यान लगावें ।[38] इससे नाभि कण्ठकूपादि कूपों को छोड़कर वह महाविद्या अपने पति बिन्दु रूप से मिलकर मोक्ष प्राप्ति कराए । उसी की प्राप्ति पर जीव हंस बन सकेगा और सहस्रसार रूपी मानसरोवर में विचरण करके "समाधि लगाकर" आहार ग्रहण के लिए मणिपुर रूपी क्षीरसागर में आ जाएगा ।[39] इस ब्रह्मरन्ध्रगत बिन्दुरूपी शिव को संहिता में अनेक विशेषण दिए गए है । जैसे शून्यात्शून्यतर, निरामय, परम व्योम, अनाख्य, निराभास, प्रपंचरहित, मरणव्ययवर्जित, रूपारूपविवर्जित, परानन्द, परात्पर सर्वगत आदि ।

इस तरह जहाँ कादि प्रकरण में शुद्ध विद्या का उपदेश मिलता है, वहाँ योग

---

38. गो०सं का०प्र०, अर्धेन्दुकलयाभिन्नं रन्ध्रस्थं विन्येत् प्रिये ।, पृ० 23

39. वही, का०प्र०, पृ० । आपादस्थलमूर्धिनस्थं कन्दनाल समासृती । हंसयपं निराभासं भैरवं तं नमाम्यहम् ।

प्रकरण तो है ही, क्योंकि योग ही वास्तविकरूप से शुद्ध विद्या है जिससे अमृत तत्व मिलता है। ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, अविद्या रूपी कुण्डलिनी का विद्या रूपी शिव से मेल होता है नाद रूपी सृष्टि बिन्दु सृष्टि रूपी शिव में लीन हो जाता है। उस योग को ही शुद्ध विद्या कहा जाता है। विद् ज्ञाने धातु से यत् प्रत्यय करके बना विद्या शब्द प्रत्यक्ष ज्ञान में ही प्रयुक्त हो सकता है। तभी तो वेद और वेदान्त को उपनिषद्कार ने अविद्या की संज्ञा दी है। जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाए उसे विद्या कहा है। वह अक्षर ब्रह्म का ज्ञान योग से ही हो सकता है। जिसका" गोरक्षसंहिता में विशद् वर्णन है।

पिण्ड में कुण्डलिनी जिसे कहा गया है, शिव के साथ जिसे शक्ति नाम दिया गया है, वही वेदान्तियों के शब्दों में माया कहलाती है। जहाँ पर वेदान्ती इस व्यापक ब्रह्म शक्ति को जडात्मक मानते हैं तथा ब्रह्मा की इच्छा रूप भी स्वीकार करते हैं, वहाँ गोरक्षनाथ इसे शिव की इच्छा "एकोऽहं बहुस्याम" स्वरूप तो स्वीकार करते हैं। वेदान्तियों से इनकी महाशक्ति में यही अन्तर आता है कि ये शिव से उत्पन्न शक्ति को भी चेतन स्वीकार करते है, क्योंकि चेतन से अचेतन पैदा नहीं हो सकता[39]। इसलिए चेतन शिव की माया रूपी शक्ति

---

39. गीता नसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

सां०का० ९, असदकरणादुपादानग्रहणात्।

चेतन ही होगी। यह संसार का उत्पादन, रक्षण तथा भक्षण करती है । इसके ज्ञान को मुक्ति और भुक्ति को देने वाला कहा गया है[40] । यह माया तत्व अनिर्वचनीय है । इसके स्वरूप का वचनों में बान्धना मुश्किल है । इसे उपनिषद् में प्रकृति कहा गया है और शिव को मायी की संज्ञा दी गई है । उस मायी के शरीर के अंग स्वरूप सारे संसार को माना गया है[41] । उसे समझने के लिए विद्या की उपासना गिनाए हुए पीठों में करनी पड़ती है । अभ्यास होने पर पीठों ~~प्रेतों~~ के समूह रूपी शरीर में नाद द्वारा उसका ज्ञान करना पड़ता है, निराचार योग से ध्याना पड़ता है । निराचार योग शक्ति योग का नाम है । उसको तब तक ध्याने का आग्रह है, जब तक वह ब्रह्म बिल अर्थात् गल की घंटी के छिद्र में प्रवेश न कर ले[42] । इससे जीव पशुपाश से विनिर्मुक्त होकर निरामय पद में चला जाता है ।

उसे यह प्राप्त करने की शक्ति कला प्राप्त करने पर मिलती है । ज्ञान देने वाली शक्ति के स्वरूप को गोरक्षनाथ ने मकड़ी के जाले जैसा बतलाया है, मध्य में मकड़ी की तरह छिपकर वह सारे जाल को अमृत जैसी किरणों से व्याप्त कर देती है । यही विरजा योगियों की आराध्य देवी है । ब्रह्म नाड़ी ब्रह्म ज्ञान प्रदायिनी है । चित्त शक्ति उस का अंश मात्र है । वह पूर्ण कहलाती है । कला, विकला, सकला, कलाकला

---

40. न मया कस्यचित्ख्यातं दिव्यज्ञानं महोदयम् ।
    योगिनी गुह्य सद्भावं भुक्तिमुक्ति फलप्रदम् ।।

41. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
    तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।।

42. का०पु० 10.95-96

का वह उद्गम स्रोत है । अतः वह पूर्ण है । वह विराट् रूपवती है,परन्तु उसकी प्राप्ति दिव्य चक्षु वालों को ही होती है । "दिव्यं ददामि ते चक्षुः" इसीलिए कहा गया है । पुनः "पश्यामि देवास्तव देव देहे" का बोध होता है । भीतर ही सब देवों के दर्शन होने लगते हैं । इसके बाद ब्रह्म ज्ञान होता है जिसमें समत्व की भावना आती है । ब्रह्मज्ञानी तो वही हो सकता है जो "श्री खण्डे न च विष्ठायां भेद पश्यति यो नरः"[43] । इतना कहकर गोरक्षनाथ समस्त समस्तकामनाओं को देने वाली, ज्ञान करवाने वाली अभीष्ट सिद्धि देने वाली, चार शरीरों से युक्त" सच्चिदानन्द तथा समष्टि रूप" चार शक्तियों से घिरी हुई, चार भुजा वाली माहेश्वरी विरजा को नमस्कार करते हुए, उसके ज्ञान से शरीर में सप्त पुरियों के ज्ञान की बात कहते हैं । मूलाधार-अयोध्या,मणिपुर-मथुरा,अनाहतचक्र-माया, विशुद्ध चक्र-काशी,आज्ञा चक्र-कांची,उसके पार अवन्तिका है । उससे भी ऊपर द्वारावती है । वहाँ पर भी विरजा का स्थान है । कपालों के बीच का जो प्रवेश द्वार है,वहाँ से समस्त द्वार दीखते हैं,इसीलिए उसका नाम द्वारावती कहा गया है[44] । उसी के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अर्धचन्द्रकलायुक्त परात्पर शिव रहता है,जिसका ज्ञान विरजा में स्नान करने के पश्चात् ही हो सकता है । उस शिव के पूजन में कला के पूजन का विधान है । शिव की

---

43. सारस्वत कुण्डलिनी महायोग,पृ० 129

44. वही, पृ० 130

भावनाकरके "आग्नेय कोण में हृदय, ईशान में शिर, नैऋत में शिखा, वायव में कवच की पूजा करें इसके बाद दिशाओं में अस्त्रों को फैलाकर भ्रुवों के बीच में उनका पूजन करें। इसके बाद शशिनी, अंगदा, इष्टा, मरीचि, और ज्वालिनी की मध्य में पूजा करें। पुनः निवृति, प्रतिष्ठा विद्या और शान्तिकरी इनको पश्चिम में, तमा, मोहाशया, अनिष्टा, व्याधि, मृत्यु, क्षुधा, और तृषा रूपी कला को दक्षिण में, सिद्धि, रिद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ता, स्वधा, प्रभा को पूर्व में, रजोरक्षा, रति, पाल्या, कामा, संजीवनी, क्रिया, बुद्धि, कार्या, धात्री, भ्रामिणी, मोहिनी और जरा को उत्तर दिशा में पूजा करें। इसके बाद "ॐ शिखानाथाय विद्महे स्वच्छन्दाय च धीमहि। तन्नो वीर प्रचोदयात्" इस गायत्री मन्त्र से अर्घ्य देने का विधान किया गया है।[45] इसी तरह पिण्डिनी, पदिनी, रूपीणी, अमूर्ति, शान्ता, कौलिनी, अकुला, खण्डिनी, रति, अकुला, अर्धदाता, शुभगा, वेदनामा, करालिनी, मध्यमा, और सोलहवीं अन्तिमी कही गई है। जो चन्द्रमा और पुरुष में रहती है।[46]

---

45. गो०सं०का०पु० 12.54.60

46. वही, 12.107-112

राग

सुख के भोग करने पर पुनः सुख को भोगने को जो इच्छा होती है, उसका नाम राग होता है।[47] वह समाधि में अन्तराय स्वरूप माना गया है । मनुस्मृति में काम त्याग को प्रशस्त नहीं माना है । वेद विद्या कामना से पढ़ी जाती है, इसी से कर्म योग बनता है। संकल्प काम से पैदा होता है और संकल्प से ही व्रत, नियम धर्मादि किए जाते हैं । अकामता से कोई कर्म होते नहीं देखा गया ।[48] गोरक्षसंहिता में भी जहाँ लोक समृद्धियों की प्राप्ति की जा सकती है, वहाँ जीवन मुक्ति तथा विदेह मुक्ति के भी साधन उसमें दिखाए गए हैं । "स्वानुकूल वेदनीयम् सुखम्" इस अन्नभट्ट के लक्षणानुसार लोग उसी में प्रवृत होते हैं । जिसमें सुख हो । मोक्ष में भी दुःखत्रय विघात करके, आत्यन्तिक सुख की इच्छा दर्शाने पर ही लोगों में प्रवृति उत्पन्न होगी । अतः संहिता में राग का जहाँ वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं है तो भी कुण्डलिनी का जहाँ उत्थापन होगा और उसमें राग की उत्पत्ति होगी तभी जाकर वह अपने स्वामी से मिल सकेगी । अगर कुण्डलिनी शिव से और शिष्य का गुरु से राग न हो तो कैसे संयोग होगा ? संयोग के बिना मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं ।

दूसरे सामवेद के राग भी संहिता के प्रकरणों में नाद के साथ-साथ देखने को मिलते हैं । आत्माराम ने अपने ग्रन्थ हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि "तत्व के बोध से शून्य व्यक्तियों, मूढ़ों को भी जो ज्ञान करवाने वाली विद्या

---

47. पतंजलि, यो०द०, 2.7 सुखानुशायीरागः ।

48. मनुस्मृति 2.2-4

है, उस नाद उपासना के शुरु में सागर, मेघ, भेरी झांझ जैसा वह नाद सुनाई देता है ।[49] मध्य में शंख, घंटा, ढोल, वेणु, आदि की ध्वनि सुनाई देती है तभी तो संहिता के कादि प्रकरण में अघोर विद्या तथा शुद्ध विद्या के कवचदूती, नेत्रदूती, मुखदूती, अस्त्रदूती आदि के वर्णन समय में अनेक बार बिन्दुनाद काउल्लेख किया गया है, जिनके संयोग से पूर्वावस्था में अनेक रागों का श्रवण होता है। इन ध्वनियों के साथ-साथ चिण-चिण, चिंचिण, चिवाकी, छद्म तन्त्र निर्घोष कोख, कांस्यताल मेघगर्जन, चिट्-चिट् और दुन्दुभि शब्द भी सुनाई देता है ।[50]

काल :-

न्याय वैशेषिक ग्रन्थों में सृष्टि का वर्णन करने से पूर्व, उसके असाधारणकरण पदार्थों का वर्णन किया है । वैशेषिक दर्शन में पदार्थ दो प्रकार के भाव और अभाव रूप माने गए है । वहाँ भाव छ प्रकार से द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और सामान्य भेद से बाँटा गया है । जबकि अभाव-प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव से चार प्रकार का हो जाता है । इसका लक्षण करते हुए कहा गया है -अभिधेयत्वं प्रमेयत्वं वा पदार्थत्वम्" ।[51] जो अभिधा शब्द का विषय हो या प्रमाज्ञान का विषय हो उसे पदार्थ कहा गया है । पदार्थ का पहला भेद द्रव्य है, द्रव्य पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल दिशा, आत्मा और मन के रूप में नौ प्रकार का बन जाता है । द्रव्य गणना के क्रम में

---

49. हठयोगदीपिका, 4.65

50. का0पु0 16.28-30

51. तर्कसंग्रह, पदार्थलक्षण टीका

पाँच महाभूतों के ऊपर काल का स्थान आता है । कलयति-पंचभूतानि स्वात्मनि लयति यः सः कालः । जो पाँचों महाभूतों को भी निगल जाता है,वही काल है । गोरक्षनाथ भी उस काल से भयभीत हैं क्योंकि यही सृष्टि का भक्षक है तभी तो पुराणों में इसे "कालो जगद् भक्षकः" कहा गया है । उसी को गोरक्ष भी अघोर कहते हैं जो शिव का दक्षिण का मुख माना जाता है । काल,विष्णु,शिव और शक्ति को अघोर कहा गया है ।[52] इसके बाद उस अघोर को षट् पदार्थ युक्त कहकर नौ द्रव्यों में प्रधान घोषित किया है ।[53] पुनः काल का लय विष्णु में,विष्णु का शिव में करके शिव को सर्वभक्षक अग्नि माना है ।[54] फिर वही शिवा शक्ति बनकर माया रूपी काल को लीन कर लेती है ।[55] तब उसका नाम गौरी हो जाती है । वह काले काल का भक्षण करके गौरी बन जाती है । फिर वह व्यापकता को प्राप्त करके ऋत् बनकर तुर्यपद अर्थात् सत् रज तम को लाँघ कर साम्यावस्था को प्राप्त करके उन्मनी अवस्था धारण कर लेती है ।[56] यही अमृत तत्व है तथा वेद मन्त्र " ऋतं च सत्यं च तपसा-

---

52. का०पु० 12.19 अघोरं अकालमित्युक्तं अघोरं विष्णुरुच्यते ।
अघोरोऽहं महेशानि अघोरा त्वं वरानने ।।

53. वही, 13.116, षट् पदार्थयुत देवी नवके प्रसिद्धयति ।

54. वही, 13.117, स एव कालो विज्ञेय सर्वभक्षी हुताशनः ।

55. वही, 13.118

56. वही 13.119

अध्यजायत" के रहस्य को बतलाती है । ऋत सूक्ष्म नित्य तत्व है । जबकि सत् दृश्यादृश्य व्यापक महान् तत्व होता है । इसलिए सत्य का आश्रय माना गया है । ऋत् भी वही माया रूपी गौरी काल का कवल करने वाली काली अघोर रूपी सत्य शिव की आश्रया है । वह शिव निर्वाण पद है[57] । वह निर्वाण पद काल से परे है,वहाँ पर न तो जरावस्था आती है । यहाँ महा पापों से होने वाले दुःख से भी निवृति मिल जाती है[58] । यह"सुप्रीम पावर" अर्थात् सबसे बड़ी शक्ति है । यह परात्पर नाथ है ।

57•का०पु० ।3•12। आश्रयं देवदेवस्य अघोरस्य महात्पे ।

निर्वाणं तु पदं दिव्यं स शिव परिकीर्तितः ।।

58• वही, ।3•122। न कवलवशं गच्छेन्न जरा न च दुःखितः ।

नियति :-

सृष्टि में दो तत्व मुख्य रूप से माने गए है -चेतन और जड़ । जिन्हें पौजिटिव और नैगेटिव भी कहते हैं । जहाँ तक भी दृश्यमान् सृष्टि का सम्बन्ध है वह नियति पर आधारित है । यह उपनिषदों की रयि कहलाती है। रयि में ही अनेकों विकार उत्पन्न होते हैं । वही घटती बढ़ती है । प्राण तो चेतन तत्व होने के कारण एकरूप रहता है । उसके सम्पर्क से ही रयि में संकोच विकास होता है । जिस प्रकार चुम्बक के संयोग से लोहे में गति हो जाया करती है । इसके विकार और ह्रास विकास भी निश्चित सीमा तक ही हो सकते हैं । इसी कारण इसे नियति या प्रकृति कहा गया है । वर्तमान युग में जहाँ इस प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप को जानने की कोशिश की जा रही है वहाँ उसके संचालक को विस्मृत किया जा रहा है । आधुनिक विज्ञान की दौड़ में तीन तत्वों पृथिवी जल तथा तेज की उर्जाओं का विश्लेषण किया जा रहा है । ये ही प्रत्यक्ष दृश्यमान द्रव्य हैं । इनसे ऊपर वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा आदि को वे इन्हीं का विकार मानते हैं जबकि हमारे संस्कृत ग्रन्थों में इन सब की सत्ता भिन्न स्वीकार की गई है और नियति को अजा माना गया है लाल, काली और सफेद माना गया है[1]। उसकी सत्ता ब्रह्म इच्छा से स्वीकारी गई है । जब "एकोऽहं बहु स्याम्" की भावना हुई तब से प्रकृति का जन्म हो गया और असीम शक्ति सम्पन्न नियति ने अपने नियन्ता को नियन्त्रित कर दिया । जिस करण व्यापक ब्रह्म भी नियन्त्रित होकर सीमा में बन्ध गया । इसे वेदान्ती लोग माया कहते हैं । सांख्य वाले प्रकृति कहते हैं , अन्य लोग इसे

---

1. श्वे०उ० । अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम् ।

नियति या स्वभाव की संज्ञा देते हैं जबकि शैव सम्प्रदाय से प्रभावित नाथ सम्प्रदाय वाले इसे शक्ति शब्द से भी पुकारते हैं । शक्ति और शक्तिवान् का अकाट्य सम्बन्ध है और सांख्य वालों की तरह वह इनके मत से जड़ा भी नहीं है । चेतन ब्रह्म से उपजी शक्ति भी चेतन ही होगी तभी तो सांख्य[2] वालों की सत्कार्यवाद भी सुरक्षित रहेगा[3] । तभी तो अर्धनारीश्वर का शैव सिद्धान्त शैवों ने भी स्वीकार किया है । जैसे जल वीची भिन्नाभिन्न है वैसे ही ही शक्ति और शक्तिमान् भी भिन्नाभिन्न ही है ।

यह ब्रह्माण्ड के भेद से भिन्न होती है । यह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में यह नियति कुण्डलिनी रूपों में अपना काम करती है । शरीर रूपी पिण्ड में कुण्डलिनी और बृहत्-ब्रह्माण्ड में शिव की शक्ति प्रलय काल में 36 तत्वों को निःशेष भाव से आत्मसात् करके परम शिव में तत्वरूपा होकर अवस्थान करती है । तभी तो वामकेश्वर तन्त्र में इस शक्ति को "कवलीकृतानि शेषतत्वग्रामस्वरूपिणी" कहा है[4] ।

इस शक्ति के पाँच भेद हो जाते है- निजा-परा, अपरा, सूक्ष्मा, और कुण्डलिनी ।

---

2. सि०सि०सं० 1.6 चिच्छीला कुण्डलिन्यतः ।

3. गीता, न सतोविद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
   सा०का० 9 असत्करणादुपादानग्रहणात् ।

4. सि०सि०सं० 1.13 निजापरापरा सूक्ष्मा कुण्डली तासु पंचधा ।

जोव :-

जिस प्रकार सेशक्ति पंचधा विभक्त होती है और नियति से कुण्डलिनी तक की यात्रा करती है उसी प्रकार से शिव भी अपर, परम, शून्य निरंजन परमात्मा रूप में परिणत हो जाता है[5]। इस प्रकार निखिलानन्द सन्दोह शिव पांच अवस्थाओं से गुजरते हुए प्रथम तत्व परमात्मा या सगुण शिव के रूप में आकर प्रकट हो जाया करता है, फिर कुण्डली शक्ति सृष्टि क्रम को आगे चलाती है और सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ती है। तब तीनों तत्वों की उत्पत्ति होती है, जो ये हैं सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या। उभय प्रधान शुद्ध विद्या, सदाशिव अहं प्रधान और ईश्वर इदं प्रधान है। सृष्टि व्यापार को अग्रेसर करने के लिए अंहता कि प्राप्ति पांच अवस्थाओं के भीतर होती है। इन अवस्थाओं का नाम आनन्द है। ये इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय में गिने गए है-परमानन्द, प्रबोधानन्द, चिदुदयानन्द, प्रकाशानन्द और सोऽहमानन्द। इन्हीं आनन्दों के भीतर से गुजरते हुए शिव क्रमशः जीव रूप की संज्ञा को प्राप्त करता है। जिसका गोरक्षसंहिता में वर्णन आया है। अकुल से कुल तक पहुंचने का वर्णन द्वादश पटल के अन्दर पूर्ण रूप से किया गया है। वहाँ पर जहाँ अव्यक्त से

5-सि0सि0सं0 1-14-15 ततोऽस्मितापूर्वमर्चिमात्रं स्यादपरं परम्। तत्स्वसंवेदनाभासमुत्पन्नं परं पदम्। स्वेच्छामात्रं ततः शून्यं सत्तामात्रं निरंजनम्। तस्मात्ततः स्व साक्षादभूः परमात्मपदं मतम्।

व्यक्त तक की मात्रा का वर्णन किया गया है वही पचास कुलनायिकाएँ कुल पिण्ड में व्यवस्थित बतलाई गई हैं । जिनके नाम प्रथम सोलह पीठों के ऊपर पिण्डिनी, पदिनी, रूपिणी, अमूर्ति, शान्ता, कौलिनी, अकुला, खण्डिनी, रति, अकुला, अर्धदाता, शुभगा, वेदा, करालिनी, मध्यमा और अन्त्यचारी सोलवी कुलनायिका मानी गई हैं । ब्रह्म रन्ध्र के बीच में गुरु परम्परा क्रम से उसकी पूजा करने से सांसारिक भोगों की प्राप्ति और मुक्ति का संदेश दिया गया है । पुनः बिन्दु शक्ति और नाद रूपी त्रिमात्राओं का अ, उ म को कुल माना गया है उसे पाँच प्रकार का मानकर फिर सदाशिव, ईश्वर, विष्णु ब्रह्मादि रूप से जीव संज्ञा को प्राप्त करने का वर्णन किया गया है । जिससे गोरक्षनाथ जीव को शून्य में व्याप्त तेज की तरह शरीर में व्याप्त चित्तिरूपता को कहते हैं।[6] जो अग्नि स्वभाव युक्त है । यही क्रम सिद्ध सिद्धान्त संग्रह में कहा है कि परपिण्ड से आद्यपिण्ड, उससे साकार पिण्ड से, उससे महासाकार पिण्ड, उससे प्राकृत पिण्ड और अन्त में गर्भपिण्ड उत्पन्न होता है यही गर्भपिण्ड जीव संज्ञा से लोक में व्यवहृत होता है उससे ही भोग और मोक्ष मिलता है । इसे ही परम अद्वैत का भाव कहा गया है ।[7] इस तरह विकास की भिन्न अवस्थाओं को सत्य नहीं समझना चाहिए । यह सभी प्रक्रिया सत्य है । जितने आधार या नाड़ियाँ मनुष्य में है उतने ही ब्रह्माण्ड में तथा उतने ही एक परमाणु में भी है । अन्तर केवल सत्व, रज, तम, काल और जीव के आधिक्य

---

6. 12.135, शून्य व्यापीव तेजस्थं जीवं तु वह्नि संयुतम् ।

7. गो०सि०सं० ,13 पृ० अस्ति कश्चित्परमा द्वैतस्य भावः । सः एवात्मा मन्तव्यः ।।

न्यूनत्ववश विकसित, अर्धविकसित और अविकसित का है । तभी गोरक्ष सिद्धान्त में यह स्वीकार किया गया है कि जो कुछ पिण्ड में है, वह सभी ब्रह्माण्ड में भी तदवत् मिलता है[8] । इसलिए पिण्ड ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त संस्करण है । मनुष्य शरीर को ही पिण्ड का प्रतिनिधि माना गया है । अतः उसमें कहाँ-कहाँ, कौन-कौन लोक स्थानादि माने गए है यह बतलाया गया है[9] ।

इसलिए मानव को अपने ज्ञान से ही ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाया करता है । जैसा कि योग वासिष्ठ में रामचन्द्र जी के ब्रह्माण्ड दर्शन की इच्छा व्यक्त करने पर वसिष्ठ जी अपनी ब्रह्माण्ड यात्रा का वर्णन करते हुए, एक नारी के मिलने, रोने और दहाड़ने के प्रसंग, उसके दुःख दूर करने की इच्छा व्यक्त करने पर, स्त्री द्वारा समक्ष स्थित शिला को घर बतलाना तथा योग दृष्टि से उसमें छिद्र देखना, पुनः समस्त लोकों की यात्रा के बाद ब्रह्मलोक पहुँचना वहाँ पर दूसरे वसिष्ठ को देखना, ब्रह्म द्वारा उस सृष्टि से बाहर जाने की आज्ञा देना और रोने वाली स्त्री को अपनी वासना बतलाना, मृत्यु रूपी स्त्री से शादी की बात कहने से राम को अपने को जानने का आदेश देना तथा ब्रह्माण्ड को

---

8. सि०सि०सं० 3.2 ब्रह्माण्डवर्ति यत् किन्चित् तत्पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा ।।

9. का०पु० 12.1834 आधारे तु स्थितो ब्रह्मा नाभौ विष्णुर्व्यवस्थितः ।
रुद्रं च हृदि मध्ये तु ईश्वरं कंठ कूपके ।।

को बाह्य रूप से न समझकर, आन्तरिक रूप से समझने का आदेश दिया था। आन्तरिक रूप से इसे देखने की शक्ति अपने शरीर के मूलाधार में कुण्डलिनी के रूप में सब शरीरों में विद्यमान है।[10] उसका उत्थापन करने पर जब वह षट्चक्रों का भेदन करके वामन अवतार के तीसरे कदम में ब्रह्माण्ड के फट जाने की कहानी के आधार पर जब ब्रह्मरन्ध्र रूपी द्वार से वह बाहर निकलने के योग्य बन जाएगी और प्राणों को अपने साथ वहाँ से ले जाएगी, तब उस जीव का लय बृहद् ब्रह्माण्डगत हिरण्यगर्भ की ज्योति के साथ एक हो जाएगा।[11] आत्मा का अभिमान बन्ध है उस अहंकार की निवृत्ति ही मोक्ष है। जब सारे संकल्प विकल्प समाप्त हो जाते हैं तब ब्रह्म की स्थिति हो जाती है। जब द्वैताद्वैत विवर्जित निश्चल पद मिल जाए तो वहीं नाथ-रूपता मानी गई है वही मोक्ष है। तभी तो नाथ को मोक्ष देने में चतुर, नाथरूपता ज्ञान देने वाले, स्थगित ज्ञान से जानने वाले को नाथ कहा गया है।[12]

---

10. का०प्र० 16·318 कन्दात् संजायते सृष्टिः कन्दं वै साप्तलौकिकम्।

11. वही, 16·328 ऊर्ध्वाधो नीयते जीवो कोषाकारकृतिर्यथा।

12. शक्तिसंगम तन्त्र, श्रीमोक्षदानदक्षत्वात् नाथब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिताज्ञान विभवात् श्री नाथ इति गीयते॥

पञ्चमोऽध्याय : गोरक्षसंहिता में धर्म और दर्शन "उत्तरार्ध

वैष्णव धर्म स्वरूप :-

वैदिक युग के वरुण तथा इन्द्र देवता धीरे-धीरे क्रूर और निर्बल होते गए । बाद में इनका स्थान विष्णु ने ले लिया । तब विष्णु ही प्रधान देवता बन गए । उन्हीं को षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् की संज्ञा दी जाने लगी । ग्रीक राजा एण्टियालकिदाय का राजदूत हिलोयोडोर भागवत धर्म का अनुयायी था । वेस नगर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि 200 ईस्वी पूर्व हिलोयोडोर ने वासुदेव की प्रतिष्ठा में विष्णुध्वजस्तम्भ बनवाया था । जिस पर एक लेख में "परमभगवतो हिलोयोडोर:" आज भी देखा जा सकता है । इससे पूर्व घुसुण्डी के शिलालेख से ज्ञात होता है कि वासुदेव की पूजा होती थी । नाताघाट के शिलालेख इसी के पोषक हैं । महा वैयाकरण पाणिनि ने ईसा के 600 वर्ष पूर्व अपने 4•3•95 सूत्र में वासुदेव पूजन की सूचना दी है । दक्षिण भारत के आलवार समुदाय जिनका समय विशुद्धानन्द भारती के अनुसार ईसा से 700 से 900 के मध्य पूर्व माना जाता है, विष्णु भक्त थे । वासुदेव कृष्णपरक नहीं समझ लेना चाहिए । तैत्तिरीय आरण्यक के दसवें प्रपाठक में लिखा है कि "नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचोदयात् " । यहाँ वासुदेव शब्द विष्णु परक आया है ,जबकि महाभारत में वासुदेव वसुदेव के पुत्र कृष्ण के लिए ग्रहण किया गया है ।

ऋग्वेद से लेकर महाभारत तक कृष्ण नाम के कितने महापुरुषों का उल्लेख आया है । ऋग्वेद 1•116•13 में विश्वकाय के पिता कृष्ण नाम के हैं । कौषीतकी-

ब्राह्मण 30.9 में कृष्ण अंगिरस का नाम मिलता है । ऐतरेय आरण्यक 3.2.6 में कृष्ण हरित का नाम आया है । छान्दोग्य उपनिषद् 3.17.4 में देवकी पुत्र कृष्ण को हम घोर अँगिरस के यहाँ अध्ययन करते पाते हैं । महाभारत में श्री कृष्ण का उल्लेख एक आचारवान् सर्वप्रिय सत्यवादी अद्वितोय योद्धा और राजनीतिज्ञ के रूप में आया है । हरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत पुराण के दसवें स्कन्ध में गोप गोपी जन प्रिय विशेषण से विभूषित कृष्ण का स्मरण किया जाता है ।

अस्तु जब-जब भूमण्डल पर धर्म की हानि हुई और अधर्म का उत्थान हुआ, तब-तब विष्णु को किसी न किसी योनि में अवतार लेना पड़ा और अधर्म का नाश करना पड़ा[1] । इस तरह विष्णु दस बड़े चौदह छोटे अवतारों में अवतरित हुए, जिनमें से राम और कृष्ण मुख्य अवतार माने जाते हैं । इन अवतारों की उपासना से भक्ति से भक्त को नवधा भक्ति मिलती है और सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है । जिसका विशेष वर्णन आलवार सन्तों ने अपने दिव्य-प्रबन्ध" नामक ग्रन्थ के पदों द्वारा किया है । जिसके विशेष प्रचारक नाथ मुनि रहे हैं । इन पदों में ज्ञान, प्रेम, सौन्दर्य, समता और आनन्द की भावना का विशेष पुट मिलता है । जिससे ये अध्यात्म ज्ञान के खजाने माने गए हैं । तिरुवाय, मोड़ी, तमिल प्रबन्ध जिसका अर्थ है सन्तों के दिव्य मुखों से निकली हुई

---

1. गीता, यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

दिव्यवाणी में भी वैष्णव धर्म का सुचारु रूपेण उपदेश दिया है ।

सनातन धर्म के मूलाधार प्रस्थानत्रयी "गीता-उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र" के व्याख्याता आद्य शंकराचार्य ने दृश्य वर्ग को माया प्रपंच जब सिद्ध कर दिया और विशुद्ध चिन्मात्र, सच्चिदानन्द घन को जानना ही ज्ञान सिद्ध कर दिया तथा भक्ति को इस ज्ञान का प्रधान प्रतिपादक माना । उनके मत से अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही भक्ति है ।

शांकर अद्वैतवाद भारत की विचारधारा क्षेत्र में तो सर्वोपरि रहा ही है । पाश्चात्य अणु-परमाणुवाद भी उसी तरफ जा रहे हैं । भारतीय दर्शन का परिपक्व फल शांकर मत ही है । अहं ब्रह्मा अस्मि" "तत्वमसि" आदि वाक्यों में शांकर वेदान्त का रस निचोड़कर रख दिया है तो भी इन वाक्यों की विस्तृत व्याख्या करके जगत् और जीव को नाम रूपात्मक मिथ्याप्रतीति कराने वाली माया या अविद्या की असत्ता उससे निर्लिप्त ब्रह्म की सत्ता ही इसका विशेष प्रतिपाद्य रहा है ।

इस मत में जीव ब्रह्म के एक हो जाने से सगुण ईश्वर भक्ति अथवा अवतारवाद की धारणा के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । इसलिए भागवत धर्मानुयायी वैष्णवों ने इसके विरुद्ध बीड़ा उठाया और सगुण ब्रह्म की उपासना के लिए यमुनाचार्य जी ने प्रचार आरम्भ किया । ये नाथ मुनि के पौत्र थे । इनके शिष्य रामानुज हुए । जिन्होंने प्रस्थान

त्रयी की व्याख्या करके विशिष्टाद्वैत की स्थापना की । इसमें विष्णु और लक्ष्मी के युगल रूप की उपासना आधिक्येन की जाती है । इस सम्प्रदाय के दीक्षित लोगों के ललाट कण्ठ,बाहु,नाभि,पार्श्व,कर्णमूल,शिरोमध्य,पीठ आदि बारह स्थानों पर शंखचक्र के चिह्न लगाए जाते है । "ओम् नमो नारायणाय" मन्त्र की दीक्षा दी जाती है जिसके पाठ से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । ये लोग बिल्ली के बच्चों की तरह अपना जीवन विष्णु के आगे समर्पित कर देते हैं और विष्णु से अपेक्षा रखते हैं कि हमें अच्छे मार्ग पर ले जाते हुए "नमो नारायण" जाप करने की सद्बुद्धि देंगे । जिससे भक्तों को वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति या सायुज्य मुक्ति मिल जाए ।

रामानन्द आचार्य भी इस परम्परा के थे किन्तु उन्हें पूर्ववर्ती वैष्णवों के भोजन नियमों से घृणा थी । वे दृष्टि पात से भोजन आदि के दूषित होने को दुराग्रह मानते थे । उनकी श्रद्धा तुलसी शालग्राम में अधिक रही है । जबकि विष्णु के सभी अवतार इनके उपास्य देव रहे हैं । इन्होंने भारत की एकता को मध्य युग में बहुत सहयोग दिया । तभी तो ऊँच-नीच का विचार किए बिना इन्होंने कबीर,रैदास,पीपा,धन्ना,सेनादि भिन्न जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया ।

वैष्णव धर्म के इस स्वरूप से तुष्टि न मानकर,माधवाचार्य जी ने द्वैत मत की स्थापना की थी । ये सन्यास मार्ग को अच्छा न समझकर त्याग के मार्ग को

उचित माना है । इन्होंने द्विविध तत्वयुक्त द्वैतमत को अनुमति दी । ये विष्णु को जगत् का नियन्ता मानते हैं ।

एको नारायणो ह्यासीत् न ब्रह्मा न च शंकरः ।

आनन्द एक एवाग्रे आसीन्नारायणः प्रभुः ।।

अर्थात् आरम्भ में एकमात्र अद्वितीय स्वरूप भगवान नारायण विद्यमान थे , न ब्रह्मा थे न शंकर थे । नारायण सर्वगुण सम्पन्न, स्वतन्त्र और आनन्द स्वरूप हैं । उन्हीं से ब्रह्मादि सब देव पैदा हुए हैं ।

इनके मत में भी भक्ति ही मुक्ति का साधन है । ध्यान के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता । भक्ति की दस विधियाँ हैं – सत्यभाषण, हितवाचन, सत्पात्र में दान, प्रिय भाषण, स्वाध्याय , गिरे हुए का उद्धार, शरणागत की रक्षा, दरिद्र का दुख निवारण, भगवत् दासत्व की इच्छा और गुरु तथा शास्त्रों में विश्वास ।

इसके अतिरिक्त निम्बार्क का द्वैताद्वैत वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, चैतन्य का अचिन्त्य द्वैत, हितहरिवंश की राधावल्लभी सम्प्रदाय, स्वामी नारायण जी का नारायणी सम्प्रदाय, प्राणीनाथ जी का परिणामी सम्प्रदाय, सतानी सम्प्रदाय आदि दक्षिण भारत में अनेक वैष्णव सम्प्रदाय वैष्णव धर्म के अनुयायी माने गए हैं । इस प्रकार से भक्ति का जन्म द्रविण प्रदेश में आलवार सन्तों द्वारा हुआ, कर्नाटक में बढ़ी हुई, महाराष्ट्र में अनेक दिनों तक स्थिर रही और गुजरात में क्षीण हुई ।

---

1. पद्म पुराण उत्तर खण्ड, 50-5।

शैव धर्म :-

जिस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय दक्षिण के आलवार सन्तों ने अग्रेसर किया और उसको अनेकों शाखाएं तैयार कर दी, वैसे ही शैव मत भी दक्षिण के आलवार सन्तों द्वारा ही प्रसिद्ध हुआ, जिनकी संख्या चौसठ मानी गई है । । इसमें माणिक वाचक सम्बन्ध, वागीश और सुन्दर अधिक प्रसिद्ध माने गए हैं । आलवारों की अमर वाणियाँ आध्यात्मिक साहित्य के दो महान् ग्रन्थों में सुरक्षित है । एक का नाम "देवरन" अर्थात् भगवत् प्रेम के हार और दूसरे का नाम "निरुवाचकम्" अर्थात् पवित्र, ईश्वर लीला तथा परिय पुराण नामक ग्रन्थों में इनके पवित्र चरित्रों का वर्णन है ।

शैवों के मुख्य पाँच भेद हैं । क" सामान्य शैव भस्म धारण करते हैं, अप्रतिष्ठित शिवलिंग की पूजा करते हैं, शिव भक्तों से मातृभाव रखते हैं, शिव परक व्यापार करते हैं, शिव की कथा सुनते हैं तथा शिव ध्यानादि अष्ट भक्ति करते हैं । "ख" मिश्र शैव उन्हें कहते हैं, जो पीठस्थ लिंग की पूजा करते है। साथ में शिव पँचायतन के लिए विष्णु, उमा, गणपति, और सूर्य की भी पूजा और स्थापना किया करते हैं । ये आद्य शंकराचार्य के अनुयायी स्मार्त शैव होते हैं । "ग" वीर शैव -वीर शैवों की मान्यता है कि अखिल जगत्, कर्ता, भर्ता, हर्ता, और ब्रह्म रूप शिव हैं । जगत् के अभिन्ननिमितोपादान कारण शिव ही है । इनके उपास्य शिवगण-वीरभद्र, नन्दी, भृंगी, वृषभ और स्कन्ध हैं । ये अपने को इनके कुल में पैदा हुआ मानते

हैं। वीर शैव समस्त जगत् को शिवमय मानते हैं। इनकी विशेषता इस बात पर है कि -

पर ब्रह्म इदं लिंगं पशुपाशविमोचनम् ।

यो धारयति सद्भक्त्या स पाशुपत उच्यते ।।

जो लिंग हमें गुरु से मिला है और धारणकर रखा है परब्रह्म ही है, इसी के धारण से हम पशुओं के पाश से छूटेंगे। जो भक्त इसे सद्भाव से धारण करेगा, वही पाशुपत सम्प्रदाय का कहलाएगा। ऐसा सोचकर वे लोग जन्म से मृत्यु पर्यन्त अपने शरीर पर लिंग धारण करते हैं। इसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। मद्रास प्रान्त में विशेष रूप से हैदराबादप्रान्त में इनकी प्रधानता है। यह सम्प्रदाय सृष्टि के आदि काल से चला हुआ है। इसमें सभी प्रकार के वेदान्ती विचारों का समावेश है। शिवाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, भेदाभेदविशेषाद्वैत आदि कई प्रकार के विचार इसमें समाहित हैं।

इनके पाँच मुख्य स्थान या मठ माने जाते हैं। इन स्थानों पर पाँच शैवाचार्य रहते हैं। जो उन स्थानों के शिवज्योतिर्लिंगों से निकले माने गए हैं। कोलनुपाल अवन्तिका, श्रीकेदार, श्री शैल और काशी।

इनको आठ वर्ष में शिव दीक्षा दी जाती है। ये वर्णाश्रम को पूर्ण रूपेण मानते हैं। इनके मत के अनुसार कर्म से ही ज्ञान होता है जिससे मुक्ति होती है तीनों सन्धानों में गुरु से उपलब्ध लिंग की पूजा की जाती है। पशु हिंसा रहित यज्ञ इनके यहाँ होते हैं। मन्त्र भस्म, रुद्राक्ष और शैवों की तरह ही धारण करते हैं। रावण भी इसी मत को मानता था।

इस मत वालों की संख्या भारत में लगभग पचास लाख से ऊपर है ।

"घ" वसव" पक्षी लिंगायत सुधारवादी पक्ष मानने वाले हैं । इस मत का आधार वसवेश्वर पुराण है । इस मत में लिंग धारण की प्रथा स्थिर है परन्तु वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया गया है । वेदों,ब्राह्मणों के महत्व का खण्डन करके शिव के अतिरिक्त देवी देवताओं का भी खण्डन किया गया है । जन्मान्तर व्यवस्था,तीर्थयात्रा,प्रायश्चित्,अन्त्येष्टि,शौचाशौच प्रक्रिया आदि को सर्वथा भ्रमात्मक और अनौचित्य पूर्ण माना है । विधवा विवाह,सगोत्र विाह उचित माने गए हैं । इसलिए और शैवों से इस मत की भिन्नता सिद्ध होती है ।

"ङ" कापालिक" कापालिक शैव तान्त्रिक हैं । इस मत के साधु मनुष्य की खोपडी का कपाल रखते हैं तथा मद्यमांसादि पंच मकारों का लौकिक अर्थ में प्रयोग करते हैं तथा भैरव और काली की खुशी करते हैं । श्मशान में रहते हैं । गृहस्थों के यहाँ इस मत का प्रचार नहीं है ।

"च" प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय" यह शैव सम्प्रदाय उत्तरी भारत में विशेष रूप से काश्मीर में प्रसिद्ध है । इसके अनुसार सृष्टिमात्र शिव हैं । अद्वैत ज्ञान के साथ मुक्तियोग इनकी विशेषता है । केवल इस ज्ञान की आवश्यकता है कि जीव और ईश्वर एक है । यही ज्ञान मुक्ति है । दोनों में भेद ज्ञान भ्रम है ।

---

1. हिन्दुत्व, पृ० 697-98

यह ज्ञान शंकराचार्य के अद्वैतवाद का पोषक है और शिव सूत्रों पर आधारित है ।

"छ" शिवाद्वैत – यह सम्प्रदाय भक्ति प्रधान माना जाता है । इस मत में शिव को परब्रह्म को संज्ञा दी गई है । शिव की उपासना करने से ही मुक्ति मिल सकती है । निष्काम कर्म से पाप नाश, उसके बाद चित्त की शुद्धि होती है । जिसमें बोध सम्भव होता है । इसलिए कर्म ही बोध का कारण है । कर्म और ज्ञान के फल का नाम मुक्ति है । इस मत के प्रवर्तक श्री कण्ठ ने ब्रह्म को सगुण और सविशेष माना है । सर्व शक्तिमान् शिव सर्वज्ञ हैं । वे ब्रह्म हैं और जीवों को उनके कर्मों के अनुसार भोग प्रदान करते हैं । आत्मा या जीव अज्ञान रूपी वासनाओं से बद्ध है । जीव के बन्धन कट जाने पर वह पर ब्रह्म के समान ऐश्वर्य और आनन्द का अनुभव करता है । यही मुक्ति है । इस तरह यह मत द्वैतवादी कर्मभक्ति प्रधान है । वैसे सभी शैवों ने पशु, पाश और पति रूप से तीन तत्वों को माना है । पाशों के नाश से ही मुक्ति स्वीकार की है ।

शाक्त धर्म :-

निगम और आगम की व्याख्या करते हुए तन्त्र मन्त्रों में कहा गया है कि "निगम" वह शास्त्र है जिन्हें देवी ने शिव को उपदिष्ट किया है । "आगम" शिव ने देवी को उपदिष्ट किया था । शिव द्वारा प्रणीत तन्त्र शास्त्र तीन भागों में विभक्त है । आगम, यामल, मुख्य-तन्त्र, । प्रथम आगम तन्त्र में सृष्टि प्रलय देवपूजा, कार्यसाधन, पुरश्चरण षट्कर्मसाधन और चार प्रकार के ध्यान योग का वर्णन मिलता है । जिसमें सृष्टि, ज्योतिष, नित्यकर्म, क्रमसूत्र, वर्णभेद, और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं । जिसमें सृष्टि, लय, मन्त्र निर्माण, देवताओं के संस्थान, यन्त्रनिर्णय, तीर्थ आश्रम, धर्म कल्प, ज्योतिष व्रत कथा, शौचाशौच, स्त्रीपुरुष लक्षण, राजधर्म, दान, युगधर्म, व्यवहारिक और आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया गया हो उन्हें मुख्य तन्त्र कहते हैं । इस शास्त्र के सिद्धान्त अत्यन्त गुप्त रखे जाते हैं । इसके मन्त्र विशेष रूप से एकाक्षरी बना दिए जाते हैं । जैसे ऐं-ह्रीं-क्लीं- आदि । पन्चमकारोपासना, चक्रपूजा इसकी पूजा में विशेष विधान है । अथर्ववेद में वर्णित मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि अभिचारों को शिव ने किल दिया था । देवी की प्रार्थना पर कलियुग के लिए पुनः तान्त्रिक ग्रन्थों का निर्माण किया है । इससे यह भी आभासित होता है कि तन्त्रशास्त्र सार्वदेशिक और सार्वकालिक है ।

बहुतों का विचार है कि तान्त्रिक धर्म वैदिक कर्मकाण्ड

का विकसित तथा कर्मोपयोगी एवं समयोपयोगी रूप है । कर्मकाण्ड के सोमरस के स्थान पर मद्य का प्रयोग यहाँ होता है । सामवेद के कथनानुसार ईश्वर को अकेला रहना अच्छा नहीं लगा । इससे उसने दूसरे संगी की इच्छा की । बस यही इच्छा उसका दूसरा संगी स्त्री रूप में परिणत हो गया । "एक एव द्विधा जातः" इन्हीं दो के संयोग से सृष्टि उत्पन्न हुई । "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में इसे प्रकृति माया, महामाया या शक्ति नाम से पुकारा है । ब्रह्म प्रकृति का स्वभाव एक ही माना गया है । दोनों अनन्त और अनन्तगुणों से युक्त होने पर भी निर्गुण हैं । यही प्रकृति या शक्ति अनेक रूपों में परिणत हो जाती है- जैसे सावित्री, लक्ष्मी, और दुर्गा । ये प्रधान रूप हैं, वैसे तो समस्त स्त्री रूप भी उनके ही भेद हैं । मातृ रूप में वही परिणत है । जिस सम्प्रदाय में इस प्रकार के स्त्री तत्व की उपासना का विधान है, उसे ही शाक्तधर्म कहते हैं ।

समस्त शाक्त एक ही प्रकार की शक्ति की उपासना नहीं करते । कोई काली, कोई तारा, कोई सिंहवाहिनी, कोई जगद्धातृ आदि स्वरूपों को अपना उपास्य मानते हैं । इनमें से दस महाविद्याएँ सभी की उपास्य देवियाँ हैं । महाकाली, उग्रतारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला ये दस विद्याएँ हैं ।

महाभारत युद्ध के बाद बौद्धकाल तक अर्थात् दो हजार वर्षों से भी अधिक समय तक भारत में तन्त्र मन्त्र का प्राबल्य रहा है । ऐसा बहुत से विद्वान् मानते हैं । ऋग्वेद के वाक्सूक्त 6·6। में महाशक्ति सरस्वती की स्तुति की गई है । जहाँ देवी ब्रह्म का आधार बनकर दृश्यादृश्य सृष्टि को अपना ही स्वरूप बतलाती है । अथर्व वेद के 4 काण्ड के सूक्त में भी भगवती महाशक्ति कहती है कि "मैं समस्त देवताओं के साथ हूँ,सब में व्याप्त हूँ । केनोपनिषद् में बहुशोभना हैमवती,वाक्य से महाशक्ति का प्रकट ब्रह्म का निर्देश है ।

श्रीमद्भागवत् के स्कन्द 3 अध्याय 4 में शिव और दक्ष के वैर की कथा आई है । जिस में सती देवी के प्रसंग से इस धर्म का पता चलता है । शिव को शाप देते समय भृगु दीक्षा का उल्लेख किया है,वह भी तान्त्रिक वाम मार्ग पर घटता है । ग्यारहवें स्कन्ध में केशव पूजा करने की विधी का वर्णन मिलता है । बृहद् हारित सँहिता में भी तान्त्रिक विधि का वर्णन मिलता है । व्यास सँहिता में गुह्यमन्त्र के जाप के विधान से इसको दीक्षा दी गई है । इस तरह धर्म शास्त्रों में तन्त्रशास्त्र की महता स्वीकार की गई है । ब्रह्मपुराण,महाभारत,तथा रामायण में भी इस विद्या का उल्लेख है । बौद्ध लोग तारा और हयग्रीव की पूजा तान्त्रिक विधि से करते है ।

इस धर्म का ध्येय परमात्मा के साथ जीवात्मा की अभेद सिद्धि है । तान्त्रिकों का कथन है कि उपासक अपने इष्ट देवता के साथ अभेद स्थापित करे ।

इसलिए शाक्त धर्म अद्वैतवाद का साधनमार्ग है । इनकी हर एक साधना में अद्वैतवाद अनुस्यूत है । सच्चा उपासक यही कहता है कि " अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् "

सच्चिदानन्द रूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्[2]।

अर्थात् मैं देवी हूँ,मैं ही ब्रह्म हूँ,मैं ही सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ।

इस मत में तीन भाव और सात आचार बतलाए गए हैं । तीन भाव हैं -पशुभाव,वीरभाव और दिव्यभाव । कुलार्णव में वेदाचार,वैष्णवाचार,शैवाचार, दक्षिणाचार,वामाचार,सिद्धाचार और कौलाचार सात आचार बतलाए गए हैं । इनके अतिरिक्त कई तन्त्रों में अघोराचार और योगाचार भी स्वीकार किए गए हैं । भाव मानसिक अवस्था है तथा आचार बाह्याचरण । इनमें सर्वश्रेष्ठ कौलाचार माना गया है । इसमें साधक आत्म,स्थान,मन्त्र,द्रव्य,और देवता शुद्धि करके पंचसंस्कारों के आध्यात्मिक पक्षों का सेवन करते हुए अपने स्वरूप ज्ञान का बोध करके देवता के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है ।

---

2. आर्य संस्कृति के मूलाधार,पृ० 307

बौद्ध धर्म :–

संसार के समस्त धर्मों में बौद्ध धर्म ही दुःख के स्वरूप को बतलाने वाला है । दुःख के कारण का ज्ञान हो जाने पर उसका नाश स्वतः एव हो जाता है । इस धर्म की चट्टान चार आर्य सत्यों पर आधारित है–दुःख, दुःख हेतु, दुःख का निरोध तथा दुःख निरोध का उपाय । क्रोध रहित कामना रहित होकर पवित्र जीवन का निर्वाह करने से मनुष्य को दुःख नहीं हो सकता अर्थात् दुःख ही सब कुछ दृश्यमान है । तभी तो सर्वदर्शनकार ने बौद्ध धर्म को चार सूत्रों में बांटा है –सर्वं क्षणिकम्-2, स्वलक्षणं, शून्यं-2, दुःखम् । इसलिए दुःखवाद ही बौद्ध धर्म का जीवातु है । कपिल का सांख्य दुःख को ही अपने विवेचनीय विषय का मूल मानते हैं । ये दोनों निरीश्वरवादी हैं ।

बुद्ध ने बतलाया है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ~~सारा जीवन~~ सारा जीवन दुःखमय है । यहाँ चाहे जितना भी प्रयास किया जाए, तो भी दुःख से निवृत्ति नहीं पाई जा सकती । चाहें सांसारिक दुःखों की ~~चाहे~~ सारी सामग्री जुटा दी जाए तो भी समस्त पदार्थों के क्षणिक होने के कारण दुःख पैदा होता है । आशाओं की पूर्ति भी दुःख का ही कारण है क्योंकि एक इच्छा की पूर्ति पर दूसरी इच्छा पैदा हो जाती है इसलिए तृष्णा का सर्वतोभावेन त्याग करने से ही दुःख का नाश हो सकता है । यही तृष्णानाश निर्वाण कहलाता है । अन्त में दुःखनाश के आठ उपाय हैं । जिन्हें अष्टांगिक मार्ग के नाम से जाना

जाता है । ये अष्टांग मार्ग निम्न हैं – सम्यक् दृष्टि, सम्यमक् संकल्प, सम्यक् वाक्य, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् जिविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ।

इनका विषय विवेचन उनके अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है जिन से मानव को सुखी जीवन प्राप्त हो सकता है । बुद्ध ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी । उनके उपदेश मौखिक ही होते थे । इनके मरणोपरान्त पाली भाषा में उनके उपदेशों को संगृहीत किया गया । जिनका नाम पिटक है । ये पिटक तीन हैं –सुत, अभिधम्म और विनय । इन पिटको में बौद्ध धर्म के नियमों तथा समस्त कर्तव्य कर्मों का उपदेश मिलता है ।

यह धर्म भारत में थोड़े समय ही टिक सका । भारत के बाहर लंका, तिब्बत, चीन, जापान आदि देशों में अभी भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । कुछ देशों में तो यह राज धर्म माना जाता है ।

प्रतीकोपासना :-

नाथ सम्प्रदाय द्वैताद्वैत भिन्न प्रतीकोपासना से पूर्ण सम्प्रदाय है । इस सम्प्रदाय में प्रधान रूप से दो ही तत्व स्वीकार किए जाते हैं –योग और भोग । विशुद्ध योग मार्गी नाथ आरम्भ में कुछ कष्ट उठाकर योगमार्ग में प्रवृत हो जाते हैं और अपने शरीर को ब्रह्माण्ड का प्रतीक मानकर इसमें समस्त ब्रह्माण्डीय रचना के दर्शन को महत्व देते हैं ।

"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे के प्रतीक का अपने योग मार्ग का प्रधान सूत्र मानकर कुण्डलिनी शक्ति को प्रकृति स्वीकार करके उसके द्वारा इस ब्रह्माण्ड में अनेकों रूपों की रचना सिद्धि आदि प्राप्त करके ब्रह्म रन्ध्र में स्थित उस शक्ति स्वरूप शिव को जो बृहत् ब्रह्माण्ड से हिरण्यगर्भ द्वारा प्रसारित शक्ति को लेता है उसे आदि नाथ का प्रतीक मानकर प्रथम तो बाह्य उपासना में लग जाता है और वहाँ पर घण्टी दुन्दुभि वीणा, वेणु, शंख आदि को बजाता है और उससे उत्पन्न शब्दों को अपने शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में रखता है । इनके प्रतीक जब शरीर में दीखने लग जाते हैं तो नाथ योगी अपने को समाधि के नजदीक समझता है । उसी अवस्था में योग साधना के प्रतीक मुद्रा, विभूति, नाद और आदेश पालन रूपी बाह्य प्रतीकों को साधनानुरूप धारण करता है । तभी तो गोरखनाथ जी ने अपने शब्दों में कहा है -

बस्ती शून्यं शून्यं न बस्ती अगम अगोचर ऐसा ।

गगन शिखर महं बालक बोलेहुं ताका नाम धरहुगे कैसा ।।

जिस प्रकार शून्य आकाश में आत्मा का भास होता है और नहीं भी । वैसे ही आत्मतत्व भी है । उसकी उपासना इन्द्रियों, अन्तःकरण एवं स्वप्नादि अवस्थाओं में अपने अनेक रूपों के माध्यम से करनी पड़ती है । इसे प्रकाम्या अवस्था में प्राप्त अनेक शरीरों की भ्रान्ति किया जाता है । इसलिए योग मार्ग के अनुयायी नाथों ने प्रतीक के माध्यमों से "स्थूणारुन्धति न्याय से आत्मा की प्रतीति करवाई है । शरीर के माध्यम

से ब्रह्माण्ड का ज्ञान करवाया है । चित्त शक्ति को आत्मा माना है और उसका परमात्मा के साथ अनोखा सम्बन्ध जोड़ा है । यह सब कुछ प्रतीकात्मक है । यही नहीं इस सम्प्रदाय में गुरु को सबसे अधिक महत्व दिया है । है भी ठीक क्योंकि शिष्य के दुर्गुणों का नाश करने के कारण वह शिव, अच्छे गुणों का निर्माण करने के कारण वह ब्रह्मा, सद्भावों की पालना के कारण वह विष्णु होता है । यह गुरुत्व पद सर्वोपरि है और अवधूत को ही यह पद मिल सकता है । उस नाथ रूपता या गुरुरूपता को प्राप्त करना ही मुक्ति है । वह प्रतीकोपासना के द्वारा ही मिल सकती है ।

गोरक्षनाथ मत में प्रतीकाप्ति :-

गोरक्षनाथ की रचनाओं से उनके मत का स्पष्ट रूपेण ज्ञान हो जाता है कि वे किस प्रकार से स्वरूप को प्राप्त करते हैं । सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में पिण्ड ब्रह्माण्ड की समरूपता प्रतिपादित करते हुए, छत्तीस तत्वों का विवेचन किया गया है । उनसे बने अवलोकन पिण्ड की उत्पत्ति से पहले परपिण्ड, आद्यपिण्ड, साकार-पिण्ड और प्राकृत पिण्ड का विवेचन किया गया है । जो सूक्ष्म नाथ से स्थूल तक एकरूपता जोड़ते हैं । स्वयं अवस्था से कुलाकुल दो तत्व पैदा होते हैं । तब वह शिव सगुण कहलाता है । यह अर्धनारीश्वर के रूप में स्थित कहलाता है । उनका भेद नहीं हो सकता । इसीलिए कहा गया है कि शिव के अन्दर शक्ति है और शक्ति में शिव विद्यमान् है । दोनों में अन्तर नहीं किया जा सकता जिस प्रकार चन्द्रमा और चान्दनी में अन्तर नहीं है । जब वह विस्तृत होती

है तो शक्ति बन जाती है जब संकोच होता है तो शिव । उनका संयोग करवाने वाला ही योगी राजनाथ होता है । यह शक्ति चेतन है जड़ नहीं । जो केवल परमात्मा है । जीव कैवल्य को प्रतीकोपासना के माध्यम से यदि योग मार्ग पर चले तो प्राप्त कर सकता है । योग में सर्वप्रथम शरीर साधन किया जाता है । तब आभ्यन्तरिक धारणा ध्यान समाधि का अभ्यास करके कैवल्य में लीन होता है ।[1]

प्रतीकों का आध्यात्मिक स्वरूप :-

जिस प्रकार सनातन धर्मी लोग भगवान् की मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं और निराकार को साकार बनाकर अपना विश्वास उसमें दृढ़ करते हैं वैसे ही सनातन धर्म के प्रहरी नाथ लोग भी ईश्वर को जड़ मूर्ति नहीं मानते अपितु चेतन ब्रह्म चेतन काया रूपी मूर्ति की पूजा करो, उसे समझो, क्योंकि वही ब्रह्म का प्रतीक है । उसमें रहने वाली कुण्डलिनी चेतन प्रकृति और विरजा उसके साथ ही जागृत होने वाली हिरण्य गर्भ रूपी ज्ञानगार है । बृहद् विश्व में विख्यात अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका और द्वारावती को योगी लोग अपने देह में ही देखते हैं[2] । जैसे मूलाधार अयोध्या, मणिपूर

---

1. कादि प्रकरण भूमिका "ज"

2. सारस्वत कुण्डली महायोग, 13 अयोध्यां मथुरां मायां काशी काँचीमवन्तिकाम् ।
राजद्वारावती चैव देहे पश्यति योगवित् ।।

मथुरा, अनहत चक्र माया पुरी, काशी कण्ठ में आज्ञा चक्र में कांची और उससे ऊपर सहस्रसार में अवन्तिकापुरी है। उससे भी ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में द्वारावती नगरी है[3]। जहाँ विरजा ज्ञान नदी बहती है और हिरण्यगर्भ से उसी मार्ग द्वारा ज्ञान देह में जाता है। वह ब्रह्म रन्ध्र से प्रवाहित होने वाली "विरजा शीतोष्ण समभागा सा" मानी जाती है। तभी तो उसका सन्तुलन बनाने एवं समशीतोष्ण रखने हेतु हिन्दु जनोंने गोरक्षपुर गो खुर " प्रमाण चोटी रखने का विधान बतलाया है।

यही नहीं कौलमार्ग में निर्दिष्ट पंचमकार भी प्रतीक है उनका अर्थ गुरुगम्य माना जाता है। तभी तो मद्य के पान का तात्पर्य है कि योगी षट्चक्र भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र सहस्रसार में पहुँचता है तब उसे सोमचक्र से सफेद रंग का मधुर अमृत बहता है उसी के पान को साधक सुरा पान कहते हैं। उसके पान से साधक को अमृत काया या वज्रदेह मिलती है[4]

---

3. सारस्वत कुण्डली महायोग पृ० 130, मूलाधारे ऽयोध्या च मथुरा मणिपुरके। मायावती हृदयाकाशे कण्ठे काशी च विद्यते। आज्ञाचक्रे भवेत् कांची ततोऽप्यूर्ध्व- मवन्तिका। यत्र द्वारावतीप्रोक्ता तत्र सा विरजा स्थिता।

4. भैरव यामल, ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रा सुकला सुधा विकसिता सा पान योग्या सुरा॥

आगमसार, सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्रात् वरानने।
पीत्वा नन्दमयीं तां य स एव मद्यसाधकः॥

पंचमकार का दूसरा तत्व "मांस" है जो साधक वाक्य संयम द्वारा आत्मसंयमी होकर आशा तृष्णा काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि पशुओं को, ज्ञान रूपी तलवार से काटकर बलि देता है और स्वकृत कर्मों को ब्रह्म के अर्पण करता है । वही "मांस" भक्षक साधक है ।[5]

पंचमकार का तीसरा तत्व मत्स्य है । जो साधक मन सहित सब इन्द्रियों को वश में कर लेता है और गंगा यमुना रूपी इडापिंगला नदियों में चलने वाले दो श्वास प्रश्वास रूपी मछलियो को प्राणायाम द्वारा खा जाता है । वह "मत्स्य" साधक माना जाता है ।[6]

पंचमकार का चतुर्थ तत्व है "मुद्रा" सार महापद्म के बोच मुद्रिता कर्णिका के अन्दर "द्विदल पदम मध्य में" जो विशुद्ध पारे के समान आत्मा है, जिसका तेज सहस्र सूर्य चन्द्रों के बराबर है, जब वह महाकुण्डलिनी से युक्त होता है, उस स्थिति का ज्ञान योग बल से साधक करता है, उसे मुद्रा कहते हैं ।[7]

पंचमकारों में पंचम तत्व "मैथुन" है। सहस्रसार के ऊपर वाले बिन्दु "लिंग" रूपी परमात्मा के साथ जो साधक योग द्वारा कुण्डलिनी जीवात्मा को मिलाता है । वही मैथुन तत्व का उपासक है । योगी लोग अहर्निश इस प्रक्रिया में लगे रहते हैं ।[8]

---

5. भैरवयामल , कामक्रोधमुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना ।
मांसं निर्विषयं परमात्म सुखदं भुंजति तेषां बुधाः ।।
पुण्यापुण्यौभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् ।
परे लयं नयेच्चितं स मांसाशी निवेद्यते ।।

6. वही, मनुसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत् । स मीनाशी भवेद्देवी इतरे प्राणघातकाः । गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा । तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु [illegible] स भवेत् मत्स्यसाधकः ।

7. वही, सहस्रसारे महापद्म कर्णिका चरेत् आत्मा तत्रैव देविशी केवलं पारदोत्तमः सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकाटि सुशीतलः । अतीवकमनीयश्चमहाकुण्डलिनीयुतः । यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रा साधक उच्यते ।।

8. वही, सहस्रसारोपरिबिन्दौकुण्डलीमिलनाच्छिवे । मैथुनं परं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम् ।।

इन्हीं पंचमकारों से साधना करने पर निम्न सिद्धियाँ मिलती है ।[9]

1. मद्यपान से अणिमादि अष्टसिद्धियाँ मिलती हैं ।

2. मांस भक्षण से नारायण स्वरूपता ।

3. मत्स्यभक्षण से कालिका या देवी का प्रत्यक्ष दर्शन ।

4. मुद्रा सेवन से विष्णु सदृशता ।

5. मैथुन द्वारा महायोगी सदाशिवता को प्राप्त कर लेता है ।

इस प्रकार से प्रतीकों द्वारा निर्दिष्ट नाथ मार्ग, आम, साधारण लोगों में बदनाम हो गया । लोगों में इस धर्म के प्रति धारणा ही ऐसी बन गई कि ये हठयोगी व्यभिचार करते हैं । इनके यहाँ बलि दी जाती है । इससे नाथयोगियों का लोगों से सम्बन्ध विच्छेद होने लगा । नाथ सम्प्रदाय अनेकों सम्प्रदायों को जोड़कर बना है । जैसे शैव मत, शाक्त, बौद्ध, वैष्णव आदि । गोरक्ष सिद्धान्त में शंकराचार्य के मत को पराभव की कहानी आई है । वहाँ कापालिक ने शंकराचार्य को हराया । यह लेखक अपने को कापालिक भी नहीं मानता । वह अपने को सब कुछ स्वीकार करता है । वह अवधूत अर्थात् जिसने सब कुछ छोड़ दिया है और अब स्वच्छ निर्मल सा बन गया है ऐसा अपने को कहता है । शाबर तन्त्र में परिगणित 12 आचार्यों में आदि नाथ गिने गए हैं । तन्त्रों के उपदेष्टा

---

9. महानिर्वाण पटल, 11

भी नाथ ही माने गए हैं ।[10] शाक्त मत के अनुसार चार मुख्य आचार हैं । वैदिक, वैष्णव, शैव, और शाक्त । इनमें शाक्त आचार भी चार प्रकार का माना गया है । वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार, और कौलाचार । सभी आचारों में शाक्त आचार को उत्तम माना गया है । शाक्ताचारों में कौल आचार सबसे उत्तम है । कौलाचार में भी वीरचक्र और पंचमकारों की उपासना मुख्य मानी गई है । जिनकी प्रतीकात्मकता हमने बतला दी ।

अतः नाथ सम्प्रदाय गुरु गोरक्षनाथ की वह खिचड़ी है जिसमें समस्त पकवान पड़े हों जो उसमें लेना चाहे वह उससे ले सकता है । इस सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत विभाग विवर्जित साकार, निराकार, वियुक्त पिण्ड ब्रह्माण्ड व्यवस्था सम्पन्न धर्म का उपदेश दिया गया है । नाथ पन्थी अपने गुरु को नमस्कार भी प्रतीकों अर्थात् मुद्रा प्रदर्शित करते हुए करते हैं । जिनका प्रभाव हमारे समस्त कर्मकाण्ड पर आज भी मिलता है, क्योंकि जप के आदि और अन्त में मुद्रा प्रदर्शित करनी पड़ती है । गायत्री जापके आरम्भ में सुमुखं सम्पुटं चैव.." आदि 24 मुद्राएँ । यही नहीं अपने हिन्दु धर्मशास्त्र का वास्तविक अनुसरण नाथ सम्प्रदाय में ही देखा गया है । जो अपने गुरुओं के चरणों को "सव्येन सव्यं अपसव्येन अपसव्यं स्पृशेत्" का उपदेश दिया है वह यहाँ पर "अरूप" शब्द के साथ प्रणाम करते समय देखा गया है ।

---

10. नित्यातन्त्र, कादितन्त्रा भवेद्रूपा सा शक्तिः सर्व सिद्धये ।
तत्रं यदुक्तं भुवने नवनाथैरकल्पयन् ॥

योग साधना में देशकाल का महत्व :-

भारत देश का जब विश्लेषण किया जाता है ,तो "भा" प्रकाश, "रत" तल्लीन इसका अर्थ होता है । जो देश हमेशा प्रकाश रूपी ज्ञान में तल्लीन रहे या बुद्धि में लगा रहे । यह समस्त विश्व के प्राणियों का मार्ग द्रष्टा रहा है । पिछले कुछ सौ वर्षों से पश्चिम के लोगों की जिज्ञासा रही है कि योग क्या है वहाँ पर बृहत्त्रयी जैसे भारत की महान् ज्ञान निधि के अन्तर्गत गीता जैसी सार्वभौम पुस्तक भी उसका सम्पूर्ण उत्तर एक वाक्य में नहीं देपाई । उसे भी लिखना पड़ा "योग कर्मसु कौशलं " कर्म की कुशलता ही योग है ।"किम् कर्मः किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता," कर्म और अकर्म क्या है यहाँ कवि लोग भी मोहित हो जाते हैं । मनु जैसे विद्वान् को भी धर्म का कर्म बतलाते हुए कहना पड़ा था कि वेद,स्मृति,सदाचार, और अपने को अच्छा लगने वाला कर्म ही धर्म है ।पूर्वोक्त तीनों वेद स्मृति और सदाचार में से जो अपने को अच्छा लगे । गीता का दूसरा वाक्य "समत्वं योग उच्यते" अर्थात् सुख दुःख रागद्वेष,लोभ वैर इत्यादि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों में समदृष्टि रखना ही योग है । यहाँ योग की महिमा बतलाई गई है किन्तु याज्ञवल्क्य ने योग की सम्यक् कल्पना हमें दी है "कि सब धर्मों का सार यही है,सबसे श्रेष्ठ धर्म यही है कि मनुष्य योग की साधना साधकर आत्मा का साक्षात्कार करें । पुरुषार्थ चतुष्टय में

1.म०स्मृ० 2.12 वेदःस्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियात्मनः ।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

2.या०स्मृ० अयं तु परमो धर्मः यद् योगेन आत्मदर्शनम् ।

उत्तरोतर क्रम से महत्व माना गया है । अन्त में मोक्ष ही सर्व प्रधान है । उस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपासक का प्रयत्न होता है । यह प्रयत्न कौशल भी तभी सफल होता है अगर देशकालानुकूल इसका प्रयोग किया जाए । अतः योग के लिए कौन सा देश अनुकूल या प्रतिकूल है इस विषय में जब विचार किया जाता है तो कह सकते हैं कि सीधी समतल भूमि चाहिए । गोमय से उसका लेप होना चाहिए । यह एकान्त और नगर से दूर होनी चाहिए । सम्भव हो तो नदी के किनारे जहाँ जल की सुव्यवस्था हो और हमेशा जल प्रवाहित होता रहता हो, ताकि उसकी अजस्र ध्वनि साधक के कानों में प्रविष्ट होकर अनहदनाद के साथ एकरूप होकर पिण्ड की व्यष्टि आत्मा ब्रह्माण्ड के समष्टि आत्मा से एकरूपता स्थापित कर सके । या फिर पहाड़ की चोटी होनी चाहिए । जहाँ वायु की सनसनी सर्वदा फैली रहे । इधर उधर का वातावरण शुद्ध होना चाहिए । तुलसी वन, पिप्पल का पेड़, चीड़ दयार का जंगल और भी उपयोगी हो सकता है । क्योंकि नाड़ी शुद्धि के लिए औषधी संपृक्त वायु का सेवन उतना ही उपयोगी होता है जितना स्वर्ण गौ का पंचगव्य । ब्राह्मण के लिए जैसे श्वेत गाय, क्षत्रिय के लिये लाल, वैश्य के लिए श्याम और शूद्र के लिए चितकबरी गाय का पंचगव्य उपयोगी है । इससे अतिशीघ्र नाड़ी शुद्ध होकर मन स्थिर हो

जाता है,प्राणायाम लग जाता है,समाधि लग जाती है । यह सम्भावना एकान्त स्थान में हो सकती है । अतः गुफा देश मन्दिर,कुटिया आदि स्थलों में योगी आसनस्थ होकर अपनी दृष्टि आज्ञा चक्र में स्थिर करके वहाँ बिन्दु का दर्शन करके स्थिर करें । यदि वह चंचल हो तो पादांगुष्ठ से लेकर सिर पर्यन्त अलातचक्र की तरह एक प्रकाशमय चलचक्र दर्शन करें । पुनः बिन्दु में स्थिर हो जाए,जिससे अहनद्व की नाद के मेघगर्जन की ध्वनि सुनाई देगी । पुनः वह अनेकों रूपों को धारण करती हुई दुन्दुभि,वीणा, वेणु,भेरी,शंख आदि के रूप में सुनाई देती है । यह तभी तक सुनेगी जब तक कुम्भक प्राणायाम लगा रहेगा । यदि नगर के समीप जनसम्मर्द में इन निर्दिष्ट नादों और बिन्दु आदि का अभ्यास करना हो तो रात्रि के समय ही हो सकता है । वर्तमान में रात्रि का समय भी शून्यता युक्त नहीं है ।

दूसरे जब कोई योगी सांसारिक बन्धन छोड़कर योग में लग जाता है तब उसके पाप नष्ट हो जाते हैं । उसकी स्थिति अध्यात्म रूप में ऊँची होने लगती है । तब ग्राम देवता,स्थानदेवता,भूतपिशाच,यक्ष,राक्षस, आदि बाधा डालते हैं । संसार का नियम है कि सब कोई अपने से ज्यादा उत्कर्ष किसी का नहीं देखना चाहते । दूसरे योग का समय भी निश्चित है । वास्तव में अहोरात्र की अष्ट प्रहरात्मक छोटी सन्धियाँ है,चार सन्ध्याएँ मुख्य सन्धियाँ हैं । जब दो वस्तुएँ संयुक्त होती है उसे योग कहते हैं । उस समय ही किया गया

उपाय भी सफल होता है । हमने यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" तो जब ब्रह्माण्ड में ही ओस पड़ रही हो, उससे पृथ्वी में अमृत तत्व पैदा करके उर्वरकता बढ़ाई जा सकती है । उसी समय प्रत्येक पिण्ड में भी सहस्रसार रूपी अनन्त आकाश से अमृत रूपी वर्षा गिरता है । जिसका पान करने से शरीर योग के योग्य बन जाता है । यह यद्यपि दो सन्ध्याओं प्रातः सायं में बरसता है, तो भी अधिक महत्व प्रातः सन्ध्या का माना गया है। क्योंकि व्यापक प्रकाश को देने वाला ब्रह्म मुहूर्त कहलाने वाला यह समय समस्त जगत् का उद्बोधक होता है । यह ठीक है कि "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी" तो भी इसका तात्पर्य अन्यत्र ही फलीभूत होता है । यहाँ तो वास्तविक रूप से ब्राह्म मुहूर्त ही सम्पूर्ण योग का विकासकरने के लिए उचित समय है । अभ्यस्त होने पर सारा समय ही उसके अभ्यास के लिए उचित है ।

यम और नियमः-

योगी के लिए मोक्ष ही सर्वोत्तम गन्तव्य स्थान माना गया है । ऐश्वर्य आदि सिद्धियाँ तो योगी के प्रत्यवाय ही मानी जाती है । वहाँ पर भी ज्ञान ही मोक्ष का कारण माना जाता है । जैसा श्रुति में प्रतिपादित है कि "ऋते ज्ञानान्मुक्तिः" पर ज्ञान का कारण मोक्ष माना जाता है । तभी तो कहा है कि ममत्व दुःख का और

निर्ममत्व ही अत्यन्त निर्वृति का मूल है । निर्ममत्व से वैराग्य,वैराग्य से योग,योग से ज्ञान ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है[3]। अतः योग की अनिवार्यता का इस कथन से पूर्ण विवेचन हो जाता है । महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में उसकी प्राप्ति की विवेचना की है । वे कहते हैं कि योग प्राप्ति के लिए तीन तरह के साधन हैं । चित वृतियों के निरोध को योग की संज्ञा दी गई है[4]। वह निरोध,अभ्यास और वैराग्य से हो सकता है ।[5]वह अभ्यास किस चीज का होना चाहिए । इस जिज्ञासा का उत्तर देते हुए,सूत्रकार कहते हैं कि "ईश्वर के प्रति अपनी बुद्धि के अर्पण का अभ्यास[6] तथा तप स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग का भी अभ्यास करना होगा । वैराग्य के लिए अष्टांगों का अभ्यास भी अत्यावश्यक है । वे अष्टांग है -यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान और समाधि हैं[7]। इन अष्टांग के अभ्यासों से चित के उपर संस्कारों के आवरण का जो पर्दा है वह नष्ट हो जाता है । अतः इन क्रिया योगों को साधक को अवश्यमेव करना पड़ता है ।

उन आठ में यमो की संख्या पाँच है । जैसे अहिंसा,सत्य,अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ।

अहिंसा :-

सर्व प्रकार से सर्वकाल में[8] किसी प्राणी का चित में भी द्रोहन करना अहिंसा है।[9]

3.-यो0वि0 पृ0 176,निर्ममत्वं विरागाय वैराग्याद्‌योगसंगतिः । योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते ।
4.-यो0द0 1.2
5. वही, 1.12
6. ईश्वरप्रणिधानाद्वा 1.23
7.-यो0द0 2.29
8.-वही,2.30
9.-वही 2.30 पर व्यासभाष्य,सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहोऽहिंसा ।

हिसि प्राप क्रियोगे धातु से अच् प्रत्यय करके नञ् समास में यह शब्द बनता है । जीवन योग की साधना में तभी तो हिंसा की व्याख्या करते हुए काकाकालेलकर ने कहा है "समाज में जो अत्याचार शोषण और धोखेबाजी चलती है वह सब हिंसा का ही प्रकार है ।[10] इन प्रकारों से अपने को बचना अहिंसा की उपासना है ।

2. सत्य :- सत्सु तायते युक्ति के अनुसार जो सज्जन पुरुषों में फैल जाए तथा दुष्ट पुरुषों में छिप जाए अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार ही सत्य है । जैसा देखा, सुना अनुमान किया हो वैसा ही दूसरों के प्रति कथन करना ~~और मन में धारण करना~~ और मन में धारण करना ही सत्य है । वही ईश्वर है ।[11]

3. अस्तेय :- शास्त्रों में जिन चीजों का निषेध किया गया है उन्हें लेना चोरी या स्तेय कहा जाता है । उसका निःषेध ही अस्तेय है । या अस्पृहा को ही अस्तेय कहते हैं ।

4. ब्रह्मचर्य :- अपनी इन्द्रियों का संयम रखना ही ब्रह्मचर्य है ।[12] वह आठ प्रकार से करना

---

10. जीवन योग की साधना, पृ0 208

11. व्यासभाष्य, 2.30

12. वही, 2.30 गुप्तेन्द्रियस्य उपस्थस्य संयमः ।

पड़ता है । दर्शन,स्पर्शन,स्मरण,क्रीडन कीर्तन,एकान्तवास,गुह्यभाषण और क्रिया निवृति रूप ।

अपरिग्रह :- विषयों का प्राप्त करना परिग्रह कहलाता है । जब विषय प्राप्त हो जाते है तो उनकी रक्षा की चिन्ता,उनके नाश से चित्त में क्षोभ होता है,उसी क्षोभ से हिंसा की उत्पत्ति हो जाती है । इस प्रकार विचार कर जो विषयों को स्वीकार कर न करने का विचार है उसे अपरिग्रह कहते हैं ।

नाथ मार्ग का परमपद नाथ है । गोरक्ष सिद्धान्त ने तभी कहा है "नाथस्वरूपेणावस्थानम्" इति । नाथ के बारे में पहले ही बतला दिया है कि प्रसार और संकोच के आदि और अन्त को ही साम्यावस्था रूपी नाथ कहते हैं । यही साम्यावस्था मानी जाती है और यही समाधि की स्थिति है । इस अवस्था को प्राप्ति करने के लिए,गुरु कृपा से दिव्य देह की आवश्यकता है । परिपक्व देह या सिद्ध देह की प्राप्ति के लिए योग ही एक मात्र उपाय माना गया है वह भी हठयोग । इस योग में प्राणायाम की प्रधानता है । मन्त्र,लय,राजयोगों में भी प्राणायाम और हठयोग सहायक होता है । वह एक अधिभूत तत्व है । इसलिए प्राणायाम या हठयोग आधिभौतिक साधन माना गया है । एक ध्यान योगी शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से क्षीण हो सकता है,वह अपनी इच्छा से मर नहीं सकता परन्तु सिद्धकाय योगी ऐसा नहीं होगा । वह अपनी इच्छा से प्राण त्यागेगा या अनन्तकाल

तक उसी शरीर में रहकर कार्य करता रहेगा । समस्त अन्य योगों को करने के लिए ऐसे स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है । उसी में स्वस्थ मन रहेगा । हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि राजयोग में आरूढ़ होने के लिए हठयोग का अभ्यास करना चाहिए ।[11]

योगाभ्यास से पूर्व नाथ आचार्यों के मत में संयम की आवश्यकता है, तभी तो हठयोग प्रदीपिका में और घेरण्डसंहिता में योग पूर्वक साधक के लिए आचार संहिता का वर्णन किया गया है । पथ्य बतलाते हुए कहा है कि "स्निग्ध, मधुरादि आहार से दो भाग पेट भरें, एक भाग जल लें, एक भाग वायु के लिए रिक्त रहने दें ।[12] अपथ्य बतलाते हुए कि कड़ुवे खट्टे, तीक्ष्ण, गुड़ तथा लवणादि उष्ण पदार्थ हरिपत्ती कांजी, तिल सरसों का तेल, सुरा, मछली, बकरे आदि का मांस, दधि चक्र कुलथ, बेर, खली, हींग, लहसुन पलाण्डु गाजर, शलगम, मादक द्रव्यादि का सेवन योगाभ्यासी के लिए निषिद्ध है ।[13] अधिक भोजन, परिश्रम, भाषण, जनसंग, चंचलता एवं प्रातः शीतल जल स्नान रात्रि में भोजन तथा उपवासादि बाधक हैं जिन्हें नियमाग्रह, उत्साह और ये छः रोग नाशक हैं ।[14]

गोरक्षनाथ का षडंग योग है, क्योंकि सभी योगों में यम, और नियम समान रूप से उपयोगी होने के कारण उन्हें गोरक्ष अपने हठयोग में ग्रहण नहीं करते । यहीं पर आसन स्थैर्य के बाद प्राणायाम के अभ्यास का विधान किया गया है ।

11. हठयोग प्रदीपिका, 1.1

12. वही, 1.58 स्निग्धमधुराहारश्चचतुर्थांशविवर्जितः । भुज्यते शिवसम्प्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ।

13. वही, 1.59

14. वही, 1.15

प्राणायाम का नाड़ी शोधन से विशेष सम्बन्ध है । सिद्धसिद्धान्त पदति में प्राणायाम को प्राणों की स्थिरता बतलाया गया है । रेचक, पूरक, (कुम्भक) और संघटीकरण ये चार भेद माने गए हैं ।[15] यहाँ बताया गया है कि प्राणायाम के अभ्यास से वायु को आकाश में प्रेरित किया जाए, तो घंटा आदि ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं और सिद्धि प्राप्ति की अधिक सम्भावना होती है ।[16] इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से नादानुसंधान भी सिद्ध होता है । तब आसन प्राणायाम के पूर्वाभ्यास से सम्पन्न होकर धारणा के अभ्यास का विधान किया गया है ।[17] गोरक्षसंहिता योगबीज आदि ग्रन्थों में प्राणायाम के साथ, मुद्रा, बन्ध, वेध आदि का भी वर्णन किया गया है, परन्तु अध्ययन से प्रतीत होता है कि प्राणायाम की तुलना में इनको अधिक महत्व नहीं दिया गया है । प्राणायाम के साथ ओंकार भी सम्बन्धित है । ओंकार तथा अजपा जप दोनों ही प्राणायाम के अन्तर्गत है । ओंकार की विस्तृत व्याख्या गोरक्ष ग्रन्थों में उपलब्ध है । गोरक्ष ओंकार को वेद सार नहीं वेद ही स्वीकार करते हैं । दूसरे शब्दों में इसे ही शिव शक्ति का साधन भी कहा गया है । ओंकार ही आदि नाथ की संज्ञा धारण करता है । वह अनाहत और अखण्ड है । इसका अन्वेषण ही नादानुसन्धान है । अन्तः

---

15. सि०सि०प० 2.35

16. गो०सं०यो०ख० 2.18.20 योगमार्तण्ड 108

17. गो०सं० यो०ख० 2.21,52

करण में उन्हीं की सत्ता को ब्रह्म की सत्ता माना गया है । उसे नाद ब्रह्म कहते हैं ।[18] जिसको जानने से परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है ।[19]

इस प्राणायाम के लक्षण करते हुए पतंजलि ने कहा है कि इच्छानुसार श्वास लेने और छोड़ने की प्रक्रिया पर अधिकार करने का नाम ही प्राणायाम है ।[20] प्राणायाम एक पूर्ण वैज्ञानिक विद्या है । नासिका द्वारा अन्दर ली जाने वाली साँस को प्रश्वास संज्ञा दी गई है । श्वास जीवन दाता प्राण का बाह्य स्थूल रूप है । इसी के सूक्ष्म रूप को प्राण कहते हैं । स्थूल प्राण पर नियन्त्रण होने से सूक्ष्म पर भी नियन्त्रण हो जाता है । सूक्ष्म के नियन्त्रित हो जाने पर मन नियन्त्रित हो जाता है । अगर मन को गाड़ी का इन्जन माना जाए तो प्राण को उसका संचालक मानना उचित है, तभी तो योगी प्राणायाम करते ही अपने समस्त अवयवों या इन्द्रिय के काम को रोक लेते हैं । जिससे प्राणों के आयमन को प्राणायाम कहा गया है ।[21] गीता के अन्दर तभी तो कहा है कि प्राण में अपान का और अपान में प्राण का प्रवेश करें पुनः दोनों को गति रोक लें, इसी क्रिया को प्राणायाम कहते हैं । प्राणायाम प्रत्येक योगी के लिए अनिवार्य कर्म है । इसके बिना कोई भी योगी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता । गुरु की कृपा से जब शिष्य में शक्ति पात किया जाता है तब उसे

---

18. नाथ और सन्तसाहित्य, पृ0 283-288

19. वा0प0 ब्र0ख0 शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ।

20. यो0द0 2.48 श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ।

21. गीता 4.29 अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः ।।

भ्रूमध्य में स्थित बिन्दु रूपी शिव के साथ कुण्डलिनी रूपी शक्ति का मेल करके अपने जीवन को अजर-अमर बनाकरके "नाथ" स्वरूप की ओर कदम बढ़ाना होता है । यह तभी हो सकता है जब बिन्दु स्थिर हो जाए, चलचक्र से छूटकर बिन्दु पर एकतान हो जाए । बिन्दु में स्थिरता तभी आ सकती है जब वह प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को वश में करके स्थिर कर लें, नहीं तो प्राण मन इन्द्रिय और बिन्दु को चौकड़ी चंचल ही रहेगी ।[22] जब तक प्राण वायु की स्थिरता नहीं हुई तब तक स्थाणुत्व नहीं आ सकता । अतः प्राणवायु का निरोध करें । वायु के शरीर में रहने तक शरीर रहता है । जब प्राण वायु शरीर से निकल जाता है-तब ही मरण होता है । जब तक प्राण की सत्ता बनी रहती है और बिन्दु पर दृष्टि लगी रहती है तब तक काल का भय सता नहीं सकता । इसलिए कालभय से ब्रह्मा प्राणायाम परायण रहता है, योगी और मुनि लोग वायु के निरोध में संलग्न रहते हैं ।[23] इसी से उन्हें दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है । जीवन वर्षों, मासों दिनों या घंटों में नहीं बांटा जा सकता अपितु पूर्व जन्म कृत शुभाशुभ कर्मों के आधार पर, जीवों को श्वासों की गिनती में दिया जा सकता है । जैसा कि योगाचार्यों और शास्त्रों का मत है कि हंस गायत्री, एक अहोरात्र में 21600 बार अनायास जीव द्वारा जपी जाती है । जिसका अनुभव

---

22. गो०सं०या०ख० 1.89 चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् ।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरुंधयेत् ।।

23. गो०सं०या०खं० 1.90-93

करके साधक ब्रह्म मुहूर्त में अपने शरीरस्थ देवताओं को निवेदन करता है ,जिससे जीव स्वयं पुण्य पाप कर्म का भागी नहीं बनता तथा निष्काम भाव से षष्ठ देव स्वरूप बन जाता है । गणपति को 600 मूलाधार में,विष्णु को 6000 नाभि चक्र या मणिपूरक में,अनाहत चक्र में ब्रह्मा के लिए 6000,विशुद्ध चक्र में शिव के लिए 6000, आज्ञा चक्र में गुरु के लिए 1000 सहस्रार में 1000 परं गुरु के लिए व्यष्टि तथा समष्टि को मिलाने वाले ब्रह्म रन्ध्र में 1000 नाथ के लिए उसका समर्पण करने से, नाद का अनुसन्धान भी होता है साथ ही देह में स्थित हंस जीव का भी हर क्षण ज्ञान होता रहता है । जो सतत् अभ्यास "तत्वमसि" महावाक्य के आधारपर प्रथम साधना में तो द्वैतभाव को प्रतिपादित करते हुए,स्वस्वरूपता में अवस्थान करवाता है और अन्त में अहं ब्रह्मा अस्मि" महावाक्य की अनुभूति में परिणत हो जाता है । इसके बाद समष्टि रूप में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" महावाक्य की अनुभूति कराके,सच्चिदानन्द स्वरूपता में परिणत होकर परं मोक्ष पद को इसी देह में प्राप्त कर लेता । तभी तो गायत्री को योगी के लिए मोक्ष दायिनी माना है[25] । सर्व पापों की नाशक कहा है । इस जैसा विद्या

24· हंसोपनिषद्, षट् संख्यया अहोरात्रयारेकविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि भवन्ति ।

25·गो०सं०यो०खं० 1·43 अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।

अस्याः संकल्प मात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

जप,ज्ञान न अभी तक पैदा हुआ है न होगा । यही वेदों का सार है । कुण्डलिनी से उत्पन्न हुई यह गायत्री,प्राणधारिणी,प्राणविद्या और महाविद्या है । इस हंस की महाविद्या को जपने से वर्णस्वरूप ब्रह्म की उपासना है । ब्रह्म और जीव की एकता का नाम ही हंस गायत्री है[26] । इसका अभ्यासी साधक अपने चक्रों को एक पंक्ति में खड़ाकर देता है और ब्रह्मरन्ध्र को इतना मुलायम कर देता है कि कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर उससे उत्पन्न सवार जीव अपनी सुषुम्ना नाड़ी मार्ग से प्रयाण करता हुआ ब्रह्म मेलक द्वार को भेदित कर ब्रह्म में लीन हो जाता है । जैसा ध्यान बिन्दूपनिषत् में लिखा है कि इस कुण्डलिनी के मार्ग द्वारा प्रयाण करता हुआ साधक निरामय ब्रह्म पद की प्राप्ति हो जाता है[27] । भारतीय सनातन धर्म में गृहस्थादि धर्मावलम्बियों के लिए योग मार्ग का पालन कठिन बतलाया गया है । अतः उसके लिए षोडष संस्कारों का वर्णन गृह्यसूत्रों में आता है । जो गर्भाधान,पुंसवन,सीमन्तोनयन, जातकर्म,नालछेदन, मेधाजनन, नामकरण,निष्क्रमण,अन्नप्राशन,चूडाकर्म, कर्णवेध,उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन,विवाह तथा अन्त्येष्टि के नाम से जाने जाते हैं क्योंकि लिंग शरीर में अंगुष्ठमात्र पुरुषात्मा को 17 तत्वों का पुञ्ज माना गया है । जो अपने कर्मों के अनुसार एक देह से

---

26. ब्रह्मोपनिषद्, हंसात्मिका वर्ण ब्रह्मकाल प्रचोदिता । परमात्मा पुमानिति ब्रह्मसम्पत्ति कारिणी पाशुपत् ।

27. ध्यानबिन्दूपनिषत् येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम् ।

दूसरी देह में जाता है । यहाँ पर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राणों के संस्कार मानस संस्कारों सहित, उस बुद्धि पटल में जले हुए कागज में संलिप्त गूढ़ी स्याही के अक्षरों की तरह तल्लीन रहते हैं । और जन्म लेने तथा वहाँ पर सुखदुःखात्मक स्थिति पैदा करने के लिए बीज बन जाते हैं ।

योग मार्ग में बिन्दु वीर्य रक्षण मोक्ष का एक मात्र ऐसा बीज है जो निर्बीज मोक्ष को पैदा करता है । जिस गृहस्थी ने पुत्रोत्पादन करके उस अमोघ शरीर शक्ति को क्षीण कर दिया, वह मोक्ष को उस जन्म में कैसे प्राप्त कर सकता है । वीर्य रक्षा विना कुण्डलिनी अपने सिर पर बैठे जीव को ब्रह्मरन्ध्र से बाहर नहीं भेज सकती । जब ब्रह्मरन्ध्र से वह नहीं जाएगा तो परब्रह्म या समष्टि में उसका लय नहीं हो सकता । अतः अन्त्येष्टि के समय पुत्र के द्वारा पिता की कपाल छेदन क्रिया के द्वारा, उसे मानव कर्तव्य पर चलने की शिक्षा दी गई है कि तू ब्रह्मचारी बनकर चौरासी लाख योनि भोगने के बाद मिले हुए मानव शरीर का उपयोग मोक्ष के लिए कर, नहीं तो तेरा मानव देह इस पिता की

---

28. वेoसाo पृo 34, सूक्ष्मशरीराणि सप्तदश अवयवानि लिंग शरीराणि ।

तरह ही नष्ट हो जाएगा । मोक्षमार्ग यही है कि तू कपाल में केश के सौवें हिस्से के बराबर छिद्र से अपने को निकाल कर समष्टि में लीन हो जा । जहाँ से निर्गमन करने पर फिर जन्म मरण में नहीं आना पड़ता[29] । दूसरी ओर भावना से मातापिता के और्ध्व दैहिक कर्म करने को प्रेरणा दी है कि अरे पुत्र तेरे को पैदा करके इन दोनों ने अपने जीवन के इस श्रेष्ठ मार्ग को भी त्याग दिया और तुझे महत्व दिया । इसलिए तेरे को उत्पन्न करने की जैसी इनकी भावना थी, वैसे ही तू भी इनके तीनों शरीरों स्थूल, सूक्ष्म और कारण के निमित मलीन मध्य और उत्तम मीमांसोक्त षोडशी करके स्वर्ग के योग्य बना दे, क्योंकि भावना ही क्रिया रूप में परिणत होती है[30] । हम देखते हैं कि अनेकों सिद्ध इस पर्वत खण्ड के स्थान-स्थान पर देवत्व की संज्ञाओं को प्राप्त करके प्रतिष्ठित हुए और लोगों द्वारा पूजे जा रहे हैं । इसलिए तू भी अपनी माता पिता की प्रतिष्ठा को बढ़ा । पितृ देवो भव की भावना को पूरा कर ।

अतः पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए प्राणायाम मानव को अनिवार्य रूप से करना पड़ता है, क्योंकि कोई भी संकल्प करने से पहले कर्म कर्ता को नाड़ी शुद्धि के संकल्प की सलाह दी जाती है । "प्राणानायम्य संकल्पं कुर्यात्" ।

अब प्रश्न यह आता है कि उस प्राणायाम को किस विधि से किया

---

29. यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम: परमो मम । "गीता"

30. वै०भू०सा० । भावो भावना सैवचोत्पादना सैव क्रिया ।

जा सकता है । तब उसका समाधान गोरक्षसंहिता में किया है कि पहले गुरु जी को 31 प्रणाम करके परं शिव को प्रणाम करे । इसके बाद भ्रूमध्य में दृष्टि लगाकर अपान वायु को ऊपर खींचकर प्राण के साथ मिला लें । इस प्रकार कुण्डलिनी को उठाने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है । यह कर्म बद्ध पद्मासन लगाकर साधक को करना चाहिए । उस आसन का स्वरूप ग्रन्थकार ने बतलाया है कि बाएं पांव को दक्षिण जांघ पर और दक्षिण पांव को बांई जांघ पर रखकर, बांए हाथ से बांए पांव के अंगूठे को और दाहिने हाथ से दाहिने पाव के अंगूठे को पीठ पीछे से पकड़ कर ठोडी को छाती में लगा के नासिका के अग्र भाग पर दोनों आंखों को जमा के देखता रहे । वहाँ बिन्दु के दर्शन से सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती है [32] । इस प्राणायाम को तीन प्रकार का बतलाया गया है -पूरक, कुम्भक और रेचक । इस का स्वरूप प्रणवात्मक माना गया है, क्योंकि प्रणव जप का प्रतीक है । [33] कुछ का मत यह है कि सम्पूर्ण प्रणव का पूरक प्राणायाम करते हुए, 12 बार उच्चारण करें, कुम्भक में 16 बार, रेचक में दस बार उच्चरण करें । कुछ का सम्पूर्ण प्रणव को उच्चारण न करने का सुझाव है और उनके मतानुसार, पूरक में अकार का, कुम्भक में उकार का, रेचक में मकार का 12, 16, 10 बार उच्चारण करने का विधान मिलता है । [34] इस पर भी साधक को यह ज्ञान नहीं होता

---

31. कबीर, गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय । बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय ।

32. गो०सं०यो०ख० 1.11, एवं योग कु० उ० 1.5, ऊर्वोपिरि चेद्धत्ते उभे पाद तले यथा ।
पद्मासनं भवेदेतत्सर्व प्राणाशनम् ।।

33. वही, 2.2

34. वही, 2.4

कि इसे कौन सी नाड़ी से आरम्भ करें तो उसका उत्तर देते हुए गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि बद्ध पद्मासन योगी प्राण को चन्द्र नाड़ी से खींचे तथा सूर्य नाड़ी से फेंक दे।[35] पुनः सूर्य नाड़ी से पूरक और चन्द्र नाड़ी से रेचन करे।[36] इस विधि में हम जिस स्वर से इसे प्रारम्भ करते हैं उसी स्वर के देवता का नाभि चक्र में ध्यान करना अनिवार्य है जैसे प्रथम बार चन्द्र नाडी से श्वास खींचे अतः उसके समय नाभि चक्र में षोडश कला पूर्ण चन्द्रमा का ध्यान किया जाएगा। जब सूर्य नाड़ी से प्राणायाम विलोम रूप से किया जा रहा है तो उस समय नाभि चक्र में सूर्य का ध्यान करके सिद्धि मिलती है।

इस प्रकार से यह द्वादश मात्रात्मक प्राणायाम अधम प्रकार का माना गया है। इन अधम में दर्शाई गई मात्राओं को दूना करके प्राणायाम किया जाता है। तब वह मध्यम कहलाएगा। जब उन मात्राओं को त्रिगुणित करके अभ्यास द्वारा प्राणायाम समय में धारण किया जाएगा, तब उत्तम प्राणायाम माना जाएगा।[37] प्रथम प्रकार के प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर साधक के शरीर में पसीना आएगा, मध्यम की सिद्धि पर शरीर में कम्पन होगा, उत्तम की सिद्धि पर साधक आसन छोड़ देगा।[38] जब साधक को पसीना आए तो पसीने की मालिश शरीर में करे। ऐसा करने से शरीर के छिद्र बन्द हो

---

35. गो०सं०या०ख० 1.95

36. त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्, हस्तेन दक्षिणेनैव पीडयेन्नासिकापुटम्।
शनैः शनैरथ वहिः प्रक्षिपेत्पिंगलानिलम्॥

37. गो०सं०या०ख० 2.5

38. वही, 2.6

जांएगे और मन की चंचलता स्थिर हो जाएगी । तभी तो सहस्रो मार्ग से प्रयाण करने वाला मन जब घटाकाश में बन्द हो जाएगा तो उसे अपने बल से हिलाएगा । वही मध्यम स्थिति का कम्प है । इस स्थिति को प्राप्त होने पर योगी को अधीर नहीं होना चाहिए । कम्पावस्था में योगी देह एक केले के पत्ते की तरह अस्थिर होकर काबू से बाहर हो जाती है । जब उस पर अधिकार हो जाएगा । तब देवत्व की अवस्था भूमि त्याग योगी को मिल सकती है ।

यह तभी सम्भव है अगर योगी मनोन्मनी अवस्था को प्राप्त करले। मन की उन्मनता सुषुम्ना मार्ग में जाने पर ही होगी । यही मार्ग त्रिवेणी संगम कहलाता है । इडा गंगा की प्रतीक है, पिंगला यमुना की और सुषुम्ना सरस्वती की प्रतीक कही गई है । इस त्रिवेणी का संयोग भ्रूमध्य में होता है और वहाँ से यह त्रिवेणी महासमुद्र गंगासागर रूपी सहस्रसार तक जाती है । इसमें जो स्नान अर्थात् अनुभव करके पहुँचता है, उसे महाफल मिलता है । इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए अनेकों प्राणायाम निर्दिष्ट हैं । जिनमें कुम्भक प्राणायाम का विशेष महत्व है । यह प्राणायाम सूर्यभेदी, उज्जयी सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका भ्रामरी, मूर्च्छा प्लाविनि नाम से आठ प्रकार का माना गया है । सूर्यभेदी-यह प्राणायाम पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर, जालन्धर, उड्डीयान और मूलबन्ध सहित दाहिने हाथ

---

39. योगविज्ञान, पृ0 103, — इडा भोगवती गंगा पिंगला यमुना नदी ।
इडा पिंगलयोर्मध्येसुषुम्ना च सरस्वती ।।

40. वही 2.44 — त्रिवेणी योगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम् ।

41. हठयोग प्रदीपिका 2.44 — गंगा जमना सरस्वती तीनों मिले प्रयाग ।
छाला पडे समुद्र की पाप कटे हरिद्वार ।।

को कनिष्ठिका और अनामिका से बांई नाथून बन्द करके दक्षिण नाथून से या सूर्य नाड़ी से, प्राणायाम आरम्भ करना । इससे कपाल शुद्धि, वातनाश, कृमिनाश आदि होते हैं ।

2. उज्जायी:-

इसमें मुखबन्द करके दोनों नथुनों से शनैः-शनैः धीमे शब्द को करती हुई वायु कण्ठ से हृदय तक भरी जाती है । इससे कफ दोष शमन, उदराग्नि की वृद्धि, नाड़ीगत दोषों का नाश, जलोदर शमन होता है ।[42]

3. सीत्कारी :-

जिह्वा को नली जैसी गोलकर दोनों होठों में लगाकर, तालूस्पर्श सहित सीत्कार शब्द करते हुए कुम्भक करना । इसका मुख्य लाभ सौन्दर्य प्राप्ति है ।[43]

4. शीतली :-

दोनों ओंठों के मध्य में जिह्वा को गोलाकार करके यथा शक्ति वायु को उदर में भर के शीतली प्राणायाम कहलाता है । इसका विशेष लाभ विष न लगना है ।

5. भस्त्रिका :-

इस प्राणायाम में पद्मासनस्थ साधक मुख और एक नासा छिद्र को बन्द करके उदरस्थ वायु को बाहर निकालता है जो हृदय कण्ठ और तालु से स्पर्श कर रही होती है । पुनः उसी ताल लय से भरता है और दूसरी नथून से छोड़ता है ।[44] जैसे लोहार की भस्त्रिका

---

42. हठयोग प्रदीपिका, 2.51.53

43 वही, 2.54

44. वही, 2.55-67

लोहा गर्म करने के लिए श्वास प्रश्वासों का तांता लगाती है । जब तक शरीर में स्वेद न आ जाए । इसका मुख्य फल त्रिदोष शमन और कुण्डलिनी उद्बोधन है ।

6• भ्रामरी :5

एक नथूना बन्दकरके दूसरे से ऐसे वायु का आकर्षण करें की भ्रमर की ध्वनि की तरह आवाज आवें । यथा शक्ति कुम्भक करके दूसरी नथून से ऐसे रेचन करें कि भ्रमरी की तरह श्वास निकालने की ध्वनि आवें । इसका मुख्य फल मन की एकाग्रता है ।[45]

7•मूर्छा :-

पूरक करके जालन्धर बन्ध लगाके दृष्टि को भ्रूमध्य स्थापित करें । यथा शक्ति कुम्भक में रहने के बाद रेचन कर दें । इससे सुख लाभ होता है ,क्योंकि मन इस प्राणायाम से मूर्छित हो जाता है ।[46]

8•प्लाविनी प्राणायाम :-

दोनों नथुनों से उदरस्थ वायु का रेचन करें,पुनः दोनों से पेट को वायु से गले तक भर लें । पद्मासन लगाकर इसका अभ्यास पूरा होने पर साधक अगाध जल में यथेच्छ तैर सकता है ।[47]

इस प्रकार प्राणायाम के कुम्भक के आठ भेद अनेकों सिद्धियों को देने वाले माने गए है । इन भेदों के अतिरिक्त प्राणायाम के कुछ और भेद देखनें को आए हैं ।

45• हठयोग प्रदीपिका 2•68

46•वही,, 2•69

47•वही,, 2•70

जैसे कपालभाती, तालयुक्त, कुण्डलिनी जाग्रत, सुखसाध्य, चलते फिरते का प्राणायाम, शवासन में प्राणायाम, केवल कुम्भक, सूर्य चक्र पर ध्यान लगाने वाला प्राणायाम आदि ।
कुछ भी हो ये सारे प्रपंच कुम्भक प्राणायाम पर ही निर्भर करते हैं । उस कुम्भक के दो भेद माने गए हैं । केवल और सहित ।

केवल प्राणायाम :-

रेचक और पूरक विधियों को त्याग कर केवल उदरस्थ वायु को धारण करने के अभ्यास को केवल प्राणायाम कहा जाता है [49] । इस केवल कुम्भक प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर तीनों लोकों में उस योगी के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है । उसमें अत्यन्त शक्तिपात के कारण अतुलित बलधामता आ जाती है । यथेष्ट वायु निरोध से कुण्डलिनी जागरण हो जाता है । सुषुम्ना का मार्ग बाधा रहित बन जाता है, कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाती है । तब चित भी वहीं स्थिर होकर राजयोग में लग जाता है । प्रत्याहार आदि उत्तम साधन स्वयं मिल जाते हैं । वह योगी हंस संज्ञा को सार्थक बना देता है, क्योंकि हंस मानसरोवर में रमण करता है, तो क्षीर सागर में जाकर भोजन के लिए मोती खाता है [50] । उसी तरह से योगी सहस्रसार रूपी मानस में रमण करके भोजन प्राप्ति के लिए उदर रूपी समुद्र में उतर जाता है । अतः जीवन मुक्ति के लिए केवल

---

49. हठयोग प्रदीपिका, 2.72 रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ।

50 वही, न रमते मरालस्य मानसं मानसं बिना ।।

प्राणायाम का अभ्यास अत्यावश्यक है ।

सहित प्राणायाम :-

केवल प्राणायाम से भिन्न माना गया है अर्थात् पूर्ववर्णित प्राणायाम जो पूरक और रेचक के साथ किया जाने वाला कुम्भक सहित कहलाता है । इस प्राणायाम की उपयोगिता केवल प्राणायाम को योग्यता देना है । जब केवल प्राणायाम लग जाएं तब सहित की कोई आवश्यकता नहीं रहती ।

षट्कर्म :-

चितवृति निरोध स्वरूप योग, जो अन्त में समाधि में परिणत होता है उस समाधि को प्राप्त करने के लिए सिद्ध योगियों ने पात्रता आवश्यक मानी है । पात्रता के लिए षट्कर्मों की आवश्यकता पर बल दिया है । नाथ सम्प्रदाय में धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक और कपाल भाति नाम से इन्हें गिना गया है । इनके नित्य करने से साधक की देह शुद्ध हो जाती है ।

धौति कर्म में चार अंगुल चौडी, पन्द्रह हाथ लम्बी रेशम वस्त्र की पट्टी का प्रयोग किया जाता है । पट्टी को जल या दूध में भिगो कर किसी योग्य गुरु की देख रेख में प्रथम दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो, इस क्रम से सुमुहूर्त में चान्द्रायण व्रत की तरह, निगलने को बढ़ाना चाहिए । जब एक हाथ शेष रह जाए वहाँ तक उसे बढाते जाना चाहिए । इसे

---

51. हठ्योग प्रदीपिका, 2.22-23 धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकस्तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ।।
कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम् ।।

निगलकर नौलिक्रिया से पेट घुमाकर धैर्य पूर्वक बाहर निकाल देना चाहिए । इस कर्म में एकाग्रता और धैर्य अत्यावश्यक माने गए है । इस कर्म से साधक को कफोत्पन्न रोगों से सर्वथा छुट्टी मिल जाती है और कास प्लीहा आदि रोग भी नष्ट हो जाते हैं ।[52]

2. वस्ति कर्म :- किसी पीतल की या पतले बांस की नली लेकर कार्य किया जा सकता है । नली की लम्बाई लगभग आठ अंगुल मोटाई कनिष्ठिका से कुछ ज्यादा ताकि उसका छिद्र कनिष्ठिका के बराबर रह जाए, । उस नली को तेल से तर करके और गुदा पर भी तेल लगाकरके लगभग चार अंगुल गुदा में प्रविष्ट कर लें । पुनः नौली कर्म द्वारा ऊंकडू जल में बैठकर जल को उदर में घुमाना चाहिए । घूम जाने पर गुदा द्वार से उस पानी को बाहर फैंक देना चाहिए । इससे शरीरस्थ सप्तधातुओं में स्थिरता आती है तथा प्लीहा, गुल्म, जलोदर, वातपितादि व्याधियाँ शान्त हो जाती है ।[53]

3. नेतिकर्म :- लगभग एक हाथ सूत के दोरक को मोम आदि से तरल करके, नाक के एक छिद्र से प्रविष्ट करके शनैः-2 जब गले में पहुँच जाए तो मुंह से उस कोने को निकालकर धीरे से आगे पीछे चलाए । इसके बाद थोड़ा सा नमक जल में मिलाकर नाक से उस कोसे जल को पीकर मुंह से निकालें । इससे कपाल शुद्ध हो जाता है और दिव्य दृष्टि मिलती है। मस्तिष्क का जितना चाहो उतना काम करने पर भी थकावट नहीं होती और न ही कोई ऊर्ध्व जत्रु रोग होता है ।[54]

---

52. हठयोग प्रदीपिका, 2.24-25

53. वही, 2.26-28

54. वही, 2.29-30

4. त्राटक कर्म :- एकाग्रचित होकर साधक प्रथमतः हरे या नीले बिन्दु को अपने से कुछ दूरी पर स्थिर दृष्टि से एकतान देखता रहे । जब तक आँखों में आँसू न आ जाएं । इसके बाद अपने हाथों से बन्द करके नेत्रों को धीरे से मल दें । इस कर्म के सिद्ध हो जाने पर साधक के नेत्रों के रोग नष्ट हो जाते हैं । तन्द्रा आलस्य आदि रिपु समाप्त हो जाते हैं । इससे लक्ष्य में अपने इष्ट देव के दर्शन भी हो जाते हैं । दृष्टि में इतनी ताकत आ जाती है । कि स्वामी रामतीर्थ ने रेल से उतार देने पर इसके द्वारा रेल को ही रोक दिया था । जंगलों में पड़े अजगर भी अपनी त्राटकीय दृष्टि से जिसे देख लेते हैं वह हिल नहीं सकता और बड़े आराम से उसे खा जाते हैं । अतः इस क्रिया को दुष्टों से सोने की पेटी की तरह बचाना चाहिए ।[55]

5. नौलिकर्म :-

कन्धों को झुकाकर अपने हाथों को जंघाओं पर रखो । दोनों पैरों को एक हाथ के परिणाह से रखें । पुनः रेचक से वायु निकालकर उड्डीयानबन्ध लगा लें । अब पेट की नसों को उठाकर वाम से दक्षिण और दक्षिण से वाम को ओर खींच मारकर पेट को घुमावें । इस कर्म से वात दोषों का नाश, चित्त प्रसन्नता, उदराग्निवृद्धि आदि लाभ मिलते हैं ।[56]

---

55. हठयोग प्रदीपिका 2.31-32

56. वही 2.33-34

कपालभाति कर्म :-

लुहार की धौंकनी की तरह साधक एक नथूने से साँस ले,दूसरी से छोड़े,पुनः उससे लेकर दूसरी से छोड़ता जाए । इससे कफ विकार दूर होता है और मस्तिष्क शान्त और शीतल रहता है ।[57]

यह षट्कर्म समस्त साधकों के लिए उपयोगी नहीं है,क्योंकि इनमें हानि का भय रहता है तथा इनके साधनें के लिएसमय भी अधिक लगता है । ये कर्म केवल बाह्य शरीर के उपकरणों को शुद्ध करते हैं । शरीर त्रिस्थूणा माना गया है । वात पित कफ इन तीन तत्वों रज तम सत के स्थानापन्नों के द्वारा बना भवन है । इनकी तुल्यता जिस साधक से ही अपनी नाड़ीशुद्धि कर सकता है । उसे इन प्रपंचों में अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहिए । जिनके शरीरों में इन तीनों की असमता है । उन साधकों को अवश्य ही षट्कर्म में जाना पड़ता है । कुछ भी हो साधक का लक्ष्य तो दोषों को मारकर अपने शरीर को योग योग्य बनाना होता है । वह चाहे षट्कर्मों से बने अथवा प्राणायाम से ।

मुद्रा :-

योग साधना में तन्त्रशास्त्र भी अत्यधिक सहायक होते हैं । इसीलिए कलियुगी सिद्ध गोरक्षनाथ जी भी अपने "गोरक्षसंहिता" नामक ग्रन्थ के योगखण्ड के अन्तर्गत मुद्राओं को योगी के लिए मोक्ष देने वाला बतलाते हैं । उनके मत में महामुद्रा,नभोमुद्रा,उड्डीयान

---

57. हठयोगप्रदीपिका 2.25

जालन्धर और मूलबन्ध नामक पाँच विद्याएँ मानी गई है[58]। जब की बहुत्र ग्रन्थों में अन्त के तीनों को अलग बन्ध विधा में माना है ।

मुद्रा शब्द मुद् मोदे धातु से या रा आदाने धातु से बना है, क्योंकि "मुदं राति-ददाति इति मुद्रा निर्वचन बनता है । इसका अर्थ होता है खुश होकर उस कर्म में रमण करना । तभी तो इन मुद्राओं के प्रदर्शन से मन्त्र देवता प्रसन्न हो जाते हैं[59]। इसीलिए इन मुद्राओं को पूजा, जप, ध्यान, काम्यकर्म, स्नान, आवाहन, शंख प्रतिष्ठा, रक्षा नैवेद्य निवेदन और उस स्थान में जहाँ विशेष देवता का विशेष कला से कोई काम हो रहा हो दिखलाना अत्यावश्यक है । वे अपने-अपने देवता को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार प्रिय है[60]। उनमें से षडंग मुद्रा तो सभी देवता के लिए समान है । बाकि विष्णु को 21 मुद्रा शिव को दस मुद्रा, सूर्य को एक, गणेश को सात, दुर्गा को आठ, त्रिपुरा को दस, गायत्री को चौबिस मुद्राएँ मन्त्रमहार्णव में देवताओं को प्रसन्न करने वाली कहा गया है । शारदा तिलक में इन मुद्राओं से सब देवताओं के प्रसन्न होने की बात कही गई है[61]। अतः सब कर्मों में मुद्रा के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता है ।

---

58. गो०सं०या०ख० 1.56 महामुद्रां नभोमुद्रां उड्डीयानं जलन्धरम् ।
मूलबन्धञ्च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभोजनः ।।

59. मन्त्रमहार्णव पृ० 23, याभिर्विरचिताभिश्च मोदन्ते मन्त्रदेवताः ।

60 वही, पृ० 23, 1-3

61. शारदातिलक 13.106 याभिर्विरचिताभिस्तु मोदन्ते सर्वदेवताः ।

इसीलिए घेरण्ड, शिव तथा दत्तात्रेय आदि संहिताओं में इन मुद्राओं का विशेष वर्णन है तथा योग्य गुरु से उन्हें सीखने का निर्देश दिया गया है । घेरण्ड में 25 मुद्रांए गिनाई हैं । जैसे महामुद्रा, नभोमुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोली, शक्तिचालनी ताड़गी, मांडवी, शाम्भवी, अधोधारणा, अभ्यासीधारणा, वैश्वानरीधारणा, वायवीधारणा, नभोधारणाअश्विनि, पाशिनि काकी मातंगी, भुजंगिनि, मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध तथा जालन्धर-बन्ध ।

शिवसंहिता में इनकी संख्या दस बतलाई गई है-महामुद्रा, महाबन्ध, महाभेद, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालनी, खेचरी, मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध और जालन्धर-बन्ध[62] । इन्ही दस को हठयोगदीपिका में भी माना है[63] ।

इनके इलावा योगविज्ञान में योनि, शाम्भवी, भूचरी, चाचरी, ज्ञानमुद्रा, तथा षड्मुखी आदि का भी वर्णन किया गया है । इन सब का आधार कुण्डलिनी शक्ति है । उसके जागरण के लिए मन की एकाग्रता अपेक्षित होती है । उस एकाग्रता के लिए मुद्रांए अत्यन्त उपयोगी मानी गई है । अतः "गोरक्षसंहिता" में सभी मुद्रओं का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है ।

1• महामुद्रा :-

इसमें बांए पैर की एड़ी को सीवनी के ऊपर रख दें । दाहिने

62•शिवसंहिता, 4•24•24

63•हठयोग प्रदीपिका 3•6-7

पांव को लम्बा पसार करके दोनों हाथों से उसे पकड़ लें । तब अपने सिर को जानु पर लगा लें । इसके बाद उड्डीयान बन्ध लगाकर नवद्वारों को बन्द करके,पूरक प्राणायाम करके,जालन्धर बन्ध लगाकर,धीरे-धीरे रेचन करें । इसके बाद दूसरी एड़ी से ऐसा ही कार्य करें । इस तरह से महामुद्रा नामक कर्म होता है । जिससे अनेक रोग नष्ट होते हैं,आयु बढ़ती है,मनवांछित फल भी मिलता है । ये फल तभी मिलेगा जब साधक इस प्रक्रिया में कुम्भक को साधना करे ।[63]

2.नभोमुद्रा :-

इस मुद्रा का नाम खेचरी मुद्रा भी है । जीभ को उलट कर कपाल कुहर में प्रविष्ट कराके भ्रूमध्य में दृष्टि स्थिर करें । जब यह कपाल कुहर में ठीक रूप से प्रविष्ट हो जाएगी तो नमकीन मिर्च खट्टा मीठा आदि का स्वाद आने लगेगा । अगर जीभ तालु के शिवलिंग में स्पर्श न कर सके तो किसी साधन से जीभ के निचले हिस्से को काट लें और प्रातःकाल जिह्वा का दोहन करके उसे खींचकर लम्बा कर लें । इसी प्रक्रिया से पिण्ड सहस्रसार से बहने वाला अमृत लेकर साधक को रस सिद्ध होकर वज्र देह की प्राप्ति होगी । सहस्रसार के बिन्दु की प्राप्ति से सात धातुओं का अन्तिम तत्व वीर्य या सात सूक्ष्म यन्त्रों से मथन होने के बाद अन्तिम धातु सूक्ष्मातिसूक्ष्म वीर्य भी शरीर से स्त्री आदि के आलिंगन पर स्खलित नहीं होगा ।[64]

63.गो०सं०यो०छ० 1.57-61,हठयोगप्रदीपिका 3.10-18,शाण्डिल्योपनिषद् ।

64.गो०सं०यो०छ० 1.62-68

3. उड्डीयानबन्ध :-

इस बन्ध में कुण्डलिनी के बीच में रहने वाला प्राण रूपी पक्षी उड़ता हुआ सुषुम्ना नाड़ी से ब्रह्मरन्ध्र की तरफ उड़ता जाता है । अत: इसका नाम अन्वर्थक है । यह नाभि के नीचे खींचकर पेट को पीठ तरफ बढ़ाकर किया जाता है[65] । रेचक करके नाभि स्थान के नीचे और ऊपर के भाग को ऐसे खींचे ताकि वे पीठ के साथ जाकर मिल जाए ।

4. जालन्धरबन्ध :-

कण्ठ को संकुचित करके वायु को रोकना ही जालन्धरबन्ध कहलाता है । इससे चन्द्रामृत गिरकर नाभि में प्रज्वलित होने वाली अग्नि में पड़ने से बच जाता है । इसमें अपनी ठोडी को संकुचित करके छाती को उपरले हिस्से पर लगाना चाहिए और कुम्भक करके आज्ञा चक्र में दृष्टिपात रखना चाहिए । योग तत्व उपनिषद् में इसका वर्णन करते हुए कहा है कि "कण्ठ को सिकोड़कर दृढ़ता पूर्वक छाती पर रखने से यह बन्ध बनता है । जो कि मृत्युरूपी हाथी के लिए शेर के समान है[66] ।

5. मूलबन्ध :-

अपने पैर की एड़ी कौसीवनी भाग पर रखकर, मूलाधार की वायु के द्वारा ऊपर खींचकर प्राण और अपान को इकट्ठा कर लें । गुह्य द्वार को सिकोड़ लें । यही मूलबन्ध कहलाता है । योग तत्वोपनिषद् में इसका नाम योनिबन्ध रखा है ।

---

65. यो०सं० यो०खं० 1.76-77, योगतत्वोपनिषद्, हठयोग प्रदीपिका 3.55.60

66. वही, 1.78-79

शिवसंहिता में भी इसका वर्णन इसी रूप में आया है । इसमें प्राण और अपान की एकता को बतलाया गया है ।[67]

शरीर में इन प्रक्रियाओं को करने से कुण्डलिनी रूपी देवी प्राणदेवता और शिवरूप ब्रह्मतत्व सभी प्रसन्न हो जाते हैं । इसीलिए इनका सब कर्मों में करना अनिवार्य रूप में दर्शाया गया है ।

धारणा :-

षडंग योग में धारणा का चौथा स्थान है । यह उसी को सिद्ध हो सकती है, जिसने आसन प्राणायाम और प्रत्याहार को सिद्ध कर लिया हो । तभी तो गोरक्षनाथ ने कहा है कि "आसन से युक्त, प्राणायाम सहित प्रत्याहार सम्पन्न धारणा का अभ्यास करना चाहिए ।[68] हृदय में पृथिवी जल तेज वायु आकाश को पृथक्पृथक् धारणा करनी चाहिए । यमादि के द्वारा चंचल मन की धारणा ही संसार सागर से पार लगाने वाली है ।[69] इस प्रकार चित की निश्चलता ही धारणा है । योग तत्वोपनिषद् में कहा है कि "जिसका चित वायु के साथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है । उसे पंचभूतों की धारणा हो जाती है । जैसे "भूमिरापो नलो वायुराकाशश्चेति पंचकः । येषु पंचसु देवानां धारणा पंचधोच्यते" अर्थात् उस योगी को भूमि जल, अग्नि, वायु और आकाश के सब देवताओं को

---

67. गो०सं० 1.80-91, शि०सं० 4.64-65

68. वही, यो०खं० 2.52

69. "मनसो धारणं युक्तस्तवतस्य च यमादिभिः ।
(त्रिशिखब्राह्मण) चित्तस्य निश्चलोभावो धारणा धारणं विदुः ।

धारणाहो जाती है । यहाँ देवता से, प्रकाशमान महाभूत ही ग्रहण करना चाहिए । धारणा को पतंजलि ने अन्तरंग साधना माना है और एक देश में नाभिचक्र हृत्पुण्डरीक, नासिकाग्र आदि में चित को स्थिर करना ही धारणा कहा है ।[70] इसके होने से ही ध्यान लगता है ।

पृथिवी की धारणा :-

साधक जब अपने मूलाधार में चतुष्कोणात्मक स्वर्णाभ पीत-वर्ण सम्पन्न पीठ में "लं" बीज का अनुभव करके हृदय में पाँच घड़ी तक अनुभव करे तो इस प्रकरण को यह धारणा स्तम्भन करी मानी गई है । इसकी सिद्धि से पृथिवी तत्व जीता जाता है ।[71]

जल की धारणा :-

अर्धचन्द्राकार कुन्द के पुष्प की तरह शुभ्र वर्ण वाले अमृत तत्व रूप "वं" बीज युक्त, विष्णु अधिष्ठाता सम्पन्न, जल तत्व का ध्यान करते हुए, उसी में मन और प्राण को लीन करते हुए ~~उसी में मन और प्राण को~~ पाँच घड़ी में जल धारणा सिद्ध होती है । यह स्वाधिष्ठान पीठ षट् कोणात्मक पर सिद्ध की जाती है । इसके सिद्ध हो जाने पर कालकूट जैसे विष भी हजम हो जाते हैं ।[72]

---

70. यो०द० 3.1 देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।

71. गो०सं०यो०खं० 2.54, योगतत्वोपनिषद् ।

72. वही, 2.55, वही

अग्नि की धारणा :-

इन्द्रगोप के समान लाल वर्ण त्रिकोणाकार प्रवाल जैसे रुचिर तेज स्वरूप "रं" बीज युक्त, रुद्र अधिष्ठात्री देव सम्पन्न दशकोणात्मक मणिपूर नाभि पीठ में अग्नि तत्व के बीच अपने को मन प्राण सहित पाँच घड़ी तक लीन करने से अग्नि की धारणा होती है। इसका अभ्यासी अग्नि तत्व जेता होता है।[73]

वायु की धारणा :-

सूरमे के रंग की तरह गोलाकार "यं" बीज युक्त वायु तत्व का ईश्वर अधिष्ठातृ देव सहित भौंहों के बीच में ध्यान करना मन प्राण सहित स्वयं को भी वायु तत्व में लीन कर लें। यह ध्यान अनाहत जो द्वादश दल सम्पन्न है, पर होगा। पाँच घड़ी तक इसमें रहने से यह सिद्ध हो जाएगा और साधक आकाश गमन का पात्र बन जाएगा।[74]

आकाश की धारणा :-

स्वच्छ जल के समान वर्ण, वर्तुलाकार "हं" बीज युक्त आकाश तत्व को उसके अधिष्ठातृ देव सदाशिव के सहित विशुद्ध पीठ जिसके षोडश दल हैं। उस पर चिन्तन करें और मन प्राण सहित अपने को दो घण्टे तक उसमें लीन रखें। तब आकाश की धारणा सिद्ध होती है। इसके सिद्ध होने पर मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं और साधक मुक्त हो जाता है।[75]

73. गो०सं०यो०खं० 2.56, योग तत्वोपनिषद्

74 वही, 2.57, वही

75. वही, 2.58, वही

इन धारणाओं के क्रमशः स्तम्भिनी, द्राविणी, दाहिनी, भ्रामिणी, शोषिणी नाम रखे गए हैं । कर्म वचन, मन द्वारा इन पाँचों दुर्लभ धारणाओं का अभ्यास अति दुर्लभ है । अगर किसी ने कर लिया तो वह सदा के लिए सभी प्रकार के दुःखों से छूट गया ।[76]

ध्यान :-

अन्तःकरण के वशीकार हेतु तीन साधन शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं । धारणा ध्यान और समाधि । धारणा के वर्णन कर देने पर ध्यान की बारी आई तो प्रश्न उसके स्वरूप का होता है, क्योंकि "लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तु सिद्धि" । इस न्याय के अनुसार हर उक्त वस्तु का लक्षण होना चाहिए । पतंजलि ने अपने योग दर्शन के विभूति पाद में धारणा के बाद ही ध्यान का लक्षण किया है । जैसे धारणा के विषय को समस्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जाना ही जाना चाहिए । इसे ध्यान कहते हैं । ताकि बीच में कोई बाधक ज्ञान न पैदा हो जाए ।[77] इसी का वर्णन गोरक्षनाथ ने इस प्रकरण में किया है कि ध्यै धातु सर्वचिन्तनवाचक है जो अपने चित्त में आत्म तत्व का सर्वतोभावेन चिन्तन करता है वही ध्यान कहलाता है ।[78] यह ध्यान दो प्रकार का माना गया है । सगुण और निर्गुण । कुछ लोग कलायुक्त शबल ब्रह्म का ध्यान करते हैं । कुछ कलारहित निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं । लोक में जो शास्त्र मुख्य रूप

76• गो०सं०यो०खं० 2•59–60

77• 3•2 तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।

78• गो०सं०यो०खं० 2•6•–62

से प्रचलित हैं । उनमें आकार युक्त और आकार रहित परमात्मा का ही ध्यान कहा जाता है । तभी योगउपनिषद में इनका भेद बतलाते हुए, ~~फल भेद बतलाते हुए~~ फल भेद की बात कही गई है । जो सगुण उपासक है ,वह अष्ट सिद्धि प्राप्त करता है और निर्गुण उपासक समाधि लाभ को प्राप्त करता है । जिससे हम कह सकते हैं कि सगुण की उपासना ऐह लौकिक सुख साधनों की दाता है जबकि निर्गुण उपासना पारलौकिक सुखसाधनों का आगार है । इन दोनों को धर्म या अदृष्ट कहा जाता है ।[79] इस धर्म के धारण से ही मानव अपने स्वरूप में रक्षित रह सकता है या आगे बढ़ सकता है ।[80] इसलिए देहली दीपक न्याय से ध्यान,जहाँ धारणा का सहयोगी है । वहाँ समाधि का भी पूर्व रूप माना गया है । अतः एव ग्रन्थकार ने इसे दोनों के बीच में रखा है। इसी से कैवल्य या मोक्ष मिलता है ।

समाधि :-

ध्यान ही जब अर्थमात्र में भासित होने लगे और योगी अपनी सत्ता को भूल जाए तब समाधि नाम को पा लेता है अर्थात् ध्याता,ध्यान और ध्येय इन भेदों सहित जो ज्ञान होता है वह ध्यान होता है । इन तीनों के भिन्न ज्ञान रहित एकतानता ज्ञान का नाम समाधि है ।[81] सम्यक् ध्यायते यत्र ध्येयं" वह समाधि है ।

---

79 ·वै०द० 1·2 यतोऽभ्युदय निः श्रेयसप्राप्तिः सः धर्मः ।

80 धर्मो रक्षति रक्षितः ।

81· 3·3 तदेवार्थमात्रनिर्भास स्वरूप शून्यमिव समाधिः ।

गोरक्षनाथ ने उपाधि और तत्व इन दो शब्दों पर विचार करके कहा है कि उपाधि नाम वर्ण का है और तत्व नाम आत्मा का।[82] उपाधि विपरीत बोध कराती है,जबकि बुद्धि से यथार्थ ज्ञान होता है,उसी से आत्मा का ज्ञान होता है। सभी उपाधियाँ नाशवान् है,किन्तु सतत अभ्यास से ही यह नाश सम्भव है। आत्मा नित्य है,वह इन्ही उपाधियों के कारण अपने को बन्धित समझता है। तभी तो आत्मा एकत्व और उपाधियों का अनेकत्व सिद्ध होता है। जैसे एक ही मानव अनेक वस्त्रों को धारण करता है, अवस्थाओं का अनुभव करता है,। वहाँ जैसे उस व्यक्ति में एकवचनता तथा वस्त्रों और उपाधियों में बहुवचनता देखी गई है।[83]

इसके अतिरिक्त संहिता में इनका दूसरा स्वरूप भी बताया गया है कि प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को पाँच घड़ी तक अवरोध करना धारणा कहलाती है। साठ घड़ी तक चित को एक विषय पर एकाग्र रखनें का नाम ध्यान है तथा 12 दिनों तक प्राणों का निरन्तर संयम रखना ही समाधि कहलाती है।[84] जैसे नमक जल में लीन हो जाता है,वैसे ही आत्मा और मन एक हो जावे,स्थिर हुआ प्राण वायु आत्मा

82• गो०सं० यो०ख० 2•81

83• गीता ,वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही।।

84• गो०सं०यो०ख० 2•84

में लीन हो जावे आत्मा परमात्मा में एकरूपता आ जाए, वही समय समाधि का माना गया है [85]। समाधि में गया हुआ जीव, पांच भौतिक विषयों को अपने में लीन कर लेता है और इनका कोई आभास उसे नहीं होता। वह उस समय की समरसता को प्राप्तकर लेता है, उसके सारे भेद समाप्त हो जाते हैं और वह एक रूप होकर तत्व में परिणत हो जाता है। जो ज्ञान मार्गी सन्तों ने इस तरह वर्णित किया है -

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फटा कुम्भ जल जल ही समाना यही तत्व कहानी।।

समाधि के मुख्य दो भेद है। सविकल्प और निर्विकल्प। जिस योगी ने योग के द्वारा चितवृत्तियों से प्राप्त संस्कारों को नष्ट करके ग्रहिता, ग्रहण और ग्राह्य इन तीनों को एकता कर ली हो उसी की समाधि लग सकती है। जब इस समाधि अवस्था में ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय रूप त्रिपुटी मान सहित अद्वितीय वृत विषयक अन्तःकरण विषयक वृति हो तब सविकल्पक कहलाती है। यह भी दो प्रकार की होती है। शब्दानुविद्ध और शब्दाननुविद्ध। " अहं ब्रह्मास्मि" प्रथम का उदाहरण है "अहमस्मि" अर्थात् केवल अपना भान होना दूसरे का उदाहरण है।

निर्विकल्पक समाधि में त्रिपुटी रूपी उपाधि सहित ~~केवल ज्ञान मात्र~~ केवल ज्ञान मात्र अखण्ड ब्रह्माकार अन्तःकरण की वृति को निर्विकल्पक कहते हैं। यह गूंगे के गुड़ की तरह होता है, जिसका वर्णन न किया जा सके।

85•गो०सं०यो०ख० 2•86 रसं वै प्राप्य रसो वै भवति स।

।•सविकल्पक चार प्रकार की है ।

वितर्कानुगत•विचारानुगत,आनन्दानुगत, और अस्मितानुगत । यह वितर्कानुगत दो प्रकार की है सवितर्क और निर्वितर्क । विचारानुगत भी दो प्रकार की है । सविचार और निर्विचार । निर्विकल्प समाधि दो प्रकार की है । अद्वैत भावना रूप निर्विकल्प समाधि तथा अद्वैत अवस्थान रूप निर्विकल्प समाधि ।

इस प्रकार योगी इन समाधियों का अभ्यास करके अपने ईश्वर के साथ या आत्मा को परमात्मा के साथ वैसे जोड़ देता है । जैसे दूध में घृत सम्मिलित रहता है या घटाकाश महाकाश में लीन होता है । किन्तु कलियुगी साधक को ब्रह्मचर्य के बिना इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती । यदि कोई साधक करता भी है तो तितिक्षा की न्यूनता के कारण बीच में ही छोड़ जाता है,या मर जाता है । जैसे ही मूलाधार से कुण्डलिनी शक्ति उठेगी और मणिपूरक में पहुँचेगी तो साधक का लक्ष्य यदि नासिकाग्र है तो प्राण वहाँ से चलने शुरू हो जाएँगे और गन्धमादन पर्वत के ऊपर बैठे साधक की तरह समस्त सुगन्धों को प्राप्त करेगा और जड़ समाधि में लीन हो जाएगा । यदि जीभ के अग्रभाग में अपने प्राणों का संचार करता है तो समस्त रसों का आनन्द लेकर जड़ समाधि में जाएगा । यदि ब्रह्मरन्ध्र के बीच में शून्य परात्परब्रह्म का ध्यान करके अपनी धारणा बनाता है । प्राण वहीं सहस्रार में लीन रहेंगे और जड़ समाधि लग जाएगी और जड़ समाधि में पड़े मनुष्य को आधुनिक चिकित्सक मृत घोषित कर देगा । वह आभूत संप्लव तक व्योम देह बनकर घूमता रहेगा और मोक्ष से वंचित रहेगा । कलियुग के लिए भक्तियोग का उपदेश दिया गया है । वह योग आज्ञा चक्र में ध्यान और धारणा बनाने से बनता है,क्योंकि

उससे अधिक शारीरिक प्रक्रिया ठीक चली रहती है और इन्द्रियां एवं मन शान्त रहते हैं । साथ में उपासक तथा उपास्य का भेद बना रहता है । जिससे शरीर रूपी घटाकाश भिन्न रहेगा और महाकाश के लय का भाव न होने से संचित कर्म विह्वल न होकर, अधिक बाधा नहीं देते और साधक सहज राजमार्ग से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है । दूसरी धारणाओं में विस्फोट का भय रहता है तथा शंकराचार्य और ज्ञानदेव की भाँति अकाल मृत्यु हो सकती है ।

षष्ठ अध्याय : उपसंहार

भारतीय धर्म-दर्शन पर गोरक्ष संहिता का प्रभाव :-

भारतीय धर्म वास्तविक रूप से वैदिक सनातन धर्म है । अनेक रूपता देखने को मिलती है । वह इतना सहिष्णु है कि कोई भी उसे अपने मन्तव्य की ओर मोड़ सकता है । तो भी "सनातन धर्म" शब्द से रूढ़ात्मक अर्थ जो निकलता है वह प्रतीकात्मक मार्गानुयायियों के धर्म पर ही घटता है ।

गोरक्षसंहिता के वर्तमान में उपलब्ध संस्करण में जो खण्ड हैं, उनमें उपासना, योग और आयुर्वेद का ही प्राबल्य है । इन सबसे पुरुषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि प्राप्य है । जिन्हें कोई भी धर्मावलम्बी नहीं ठुकराता । सब इन्हें चाहते हैं । उन्हें किसी भी तरह से प्राप्त किया जाए । इससे यह प्रतीत होता है कि संहिता का सर्वतोभावेन प्रभाव रहा है । धर्म कर्म करने के लिए निरोग शरीर को कौन नहीं प्राप्त करना चाहता । सभी चाहते हैं कि मैं सैकड़ो वर्ष जीऊँ और अन्त में मोक्ष प्राप्त करूँ यही धर्म परिभाषा भी कहती है । तभी तो भारत के प्रत्येक धर्म में उपासना को अधिक महत्व दिया गया है । चाहे नास्तिक हो या आस्तिक हो सभी सुख चाहते हैं । यहाँ तक कि श्रुति भी "जीवेम: शरद: शतम्" कहकर "कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषा च्छतं समा" के आधार पर स्वस्थ शरीर की याचना करते हुए सबके लिए "स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा आदि स्वस्ति वाचन से अपने लिए सुख और कल्याण चाहते हैं । नाथ पन्थियों ने बौद्धों के

द्वारा विकृत मार्ग को सुधारकर,लोगों के दिमागों में श्रद्धा पैदा की । उन्होंने मुद्रा धान्धरी,सुमिरनी,आधारी,कन्था,सोटा,भस्म,त्रिपुण्ड आदि अपनाए तथा संसार के दु:खी लोगों को झाड़पोंछ कर औषधियों से विभूति द्वारा सहायता की ।घर-घर जाकर अलख जगाई और भारतीयों को उनके धर्म और स्वरूप को समझने का आदेश दिया जिसका समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि उत्तरी भारत में ही नहीं अपितु समस्त भारत वर्ष में इनके लिए स्थान बनने लगे । गोरक्ष के नाम से गोरखपुर" नाम का नगरप्रसिद्ध है तथा इनकी याद में यहाँ मन्दिर है । नेपाल में भी पशुपतिनाथ से विष्णु मुद्री नदी पार करके ऊपर पहाड़ पर चढ़कर गुह्येश्वरी देवी के ऊपर गोरखनाथ जी का मठ बना हुआ है । जहाँ नेपाल नरेश ने त्रिशूल अर्पण किया था । त्रिशूल के नीचे आज भी नेपाली में यह विवरण देखने को मिलता है -

नित्यानन्द निमग्न निस्पृह महायोगीश चूड़ामणि ।
इवैव विसन्द प्रभु स्वयं अङ्कुरा चाहिन्नथ्यो तापनी ।।
भक्ति ले प्रभु को परिशरण मा प्रीत्यर्थ होस दिन-दिन ।
भन्ने खातिर यो त्रिशूल प्रभु माँ मैले गेरुँ ।।

मार्ग० 3 गते सम्वत्-1981

कामाख्या पीठ के कदली वन में मत्स्येन्द्रनाथ जालन्धर नाथ गर्गादि पर्वत पर गहनीनाथ,माप गांव में रेवणनाथ, ज्वालामुखी में गोरखनाथ ने निवास किया और मठ स्थापित किए । सौराष्ट्र में गोरखमढ़ी गोरखनाथ का प्रसिद्ध स्थान है । वहाँ गिरनार पर्वत पर उनकी पादुकाएँ पूजी जाती है । पेशावर के निकट

"गोरक्षक्षेत्र" कोल्हापुर दक्षिण के बतोस शिराले नामक एक गांव में गोरक्षनाथ के अनेक चिह्न मिलते हैं । हरियाणा के रोहतक में भी नाथ पन्थियों के प्रसिद्ध क्षेत्र हैं ।

हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक गांव में कोई न कोई देव मन्दिर विद्यमान हैं । जहाँ उनकी पूजा पद्धति में मुद्राएँ गाई जाती है तथा नाथ पन्थियों की तरह संकेत सहित प्रणाम किए जाते हैं । जिससे हिमाचल प्रदेश के धार्मिक परिवेश में नाथ पन्थियों का प्रभाव अभी तक भी पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है ।

दर्शन क्षेत्र में भी गोरक्षसंहिता का पूर्ण प्रभाव दीखता है, क्योंकि गोरक्षसंहिता ने योग को अधिक महत्त्व दिया है । वास्तव में प्रथमान्त व्युत्पत्ति "दृश्यते-इति दर्शनम्" से योग ही दर्शन क्षेत्र में ठीक बैठता है । वह दर्शन जीव ब्रह्म के हैं । वह न तो वैशेषिक के पदार्थज्ञान से, न न्याय के प्रमाणवाद से, न सांख्य के प्रकृति विश्लेषण से न मीमांसा के बाह्योन्मुखी कर्मवाद से और न ही वेदान्त के शुष्क ज्ञानवाद से हो सकते हैं । यह तो केवल योग मार्ग से ही प्राप्त हो सकते हैं । गोरक्ष ने जिस स्वाभाविक ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया है तथा उसे करने में असमर्थ शरीर को औषधियों से योग्य बनाने का जो सन्देश दिया है उसका प्रभाव आज भी हमारे दार्शनिक ग्रन्थों, योग प्रक्रिया ग्रन्थों और आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से झलकता है ।

अतः भारत के धर्म और दर्शन पर नाथ सम्प्रदाय की

"गोरक्षसंहिता" का इतना ही प्रभाव नहीं अपितु "कलौ कालो विनायको" की भावना भी इसी पुस्तक के कादि प्रकरण की देन है । जिसमें कादि मत को सबसे अधिक महत्व दिया गया है ।

दार्शनिक क्षेत्र में इस संहिता ने अत्यन्त योग-दान दिया है । हठ योग जिसे लोग घृणा को दृष्टि से देखते हैं । उस घृणा को हटाकर स्वाभाविक श्वास प्रश्वास की क्रियाओं का विवेचन किया गया है । वर्तमान में उपयोगी और चमत्कारों से पूर्ण कुण्डलिनी योग को सरल रीति से बतलाकर दर्शन क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दान दिया है । इन बातों को दृष्टि में रखते हुए । इस संहिता के हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि आम साधारण जनता भी लाभ उठा सके । इस संहिता का सर्वतोमुखी दर्शन आयुर्वेद के रस प्रकरण का है जिसकी उपयोगिता मानव मात्र के उत्थान में की जा सकती है, क्योंकि स्वर्ण निर्माण विधि यदि सरकार द्वारा कुछ खर्च करके अन्वेषित करवा दी जाए तो अवश्य ही दरिद्र नारायण भारत से पलायन कर जाएगा ।

इस तरह यह पुस्तक मानव समाज के लिए एक वरदान है । दुर्भाग्य से इस के अवशिष्ट प्रकरण नहीं मिल पा रहें हैं । मैंने नेपाल में राजदरबार पुस्तकालय की पुस्तकें जहाँ पुरातत्व विभाग में सुरक्षित रखी गई है, जाकर पूर्ण रूपेण खोज की परन्तु वहाँ भी इस पुस्तक के अवशिष्ट भाग का कोई अंश नहीं मिला । गोरखपुर में भी कोई अता-पता नहीं लग सका । हमारे हिमाचल प्रदेश में भी पहाड़ी टांकरी में लिखे कुछ परिवारों

के पास है जिनमें से कुछतो उनकी पूजा भी करते हैं उन्हें पढ़ नहीं सकते । वे उन्हें किसी को नहीं दिखाते । अगर धर्म और अज्ञानता के दुराग्रह को दूर करके लुप्त हो रही विद्या- ओं को बचाने के उदेश्य से लोग सहयोग दें तो हो सकता है कि कहीं देश के सौभाग्य से और भी कोई इस संहिता का उपयोगी प्रकरण मिल जाए । यहाँ की लोक भाषा में गोरक्ष के अनेकों मन्त्र उद्धृत मिलते हैं । उनका कोई आधार अवश्य होना चाहिए ।

दूसरे श्री खण्ड महादेव की यात्रा प्रसंग में गोरक्षनाथ जी इस प्रदेश के अनेकों स्थानों से सम्बधित रहे हैं । जैसे ठियोग धर्मपुर के राजस्वी देवता कालुनाग उसके शिष्य रहें और उन्होंने भ्राणा नामक स्थान में गुरु से एक देवदारु वृक्ष के नीचे दीक्षा ली थी । इसी तरह भ्रापु वेद जो तन्त्र की एक प्रसिद्ध विधा बताई जाती है,आज भी इस गाँव के यातुओं के पास वंश परम्परा से उपलब्ध है । जिसके कुछ उदाहरण निम्न है -

1.गो की नौपी बाक का पात इस पात को ठाके गुरु गोरखनाथ,मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फोरमन्त्र ईश्वर की वाचा ।

2.अमरसिद्धा ध्याने ध्याओ प्रभात सैरू श्री गोरखनाथ राऊ गोरख सैरें होकर सिद्ध काया निर्मल पत्रै रिद्ध सोला कला सुबरन माला इस पिण्डे का तू रखवाला का ते दर्शनि तेरा नाम,आप तारे प्रततातारे ज्ञानखण्डजन कालसंधारे,तहाँ आवे जहाँ-जहाँ डंक बजावे,खेचरी भूचरी, अखाडे,आवे दुःख पड़ा सृष्टे जावे,विघ्नविनाशन गोरखराय,आपुवाला,आपुवोला

वशंदरनाथ वन्शन्दर रुका माखी हो के हृदये बैठी ध्यान धरे तुम गोरख देवो नए दुलारे लाडे सद्धारे आंगन जाली दोरत लगी पर्वत स्वामी क्योर । स्वामी मै तेरी माई,कैसी तुम खेचरी आई,खेचरी भूचरी सारथ जापु,ब्रह्म मुखे आपु,विजे क्या गोरख वीर दुहे अमृत धोवे खीर अमृत के धानुषी को छवि लखा तापे घट जोगी जोग बखाणों घठ-घठ जोगी कहाँ कहाँ के आपे आले माटे रखूं पाणी चुपियाँ मुपियाँ चरखा कातूं, लोहे का कोठा धाणी चापो आस पास सब दब जाए,मांझे जोगी बैठा रहे,गोरख बैठा मतराय का पूत,काढे छूरा डाकिनि का किया भस्म भूत चार रापी चार वाणी चन्द्र सूरज पोप पाणी पन्थे भीतर धरती आणी मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फोर मन्त्र ईश्वर की वाचा ।

इस तरह के इस भ्राणु शावर वेद के अनेकों मन्त्र हैं जिनमें गुरु ~~जिनमें गुरु~~ गोरक्षनाथ जी की दुहाई दी गई है और उनकी शक्ति इतनी प्रबल मानी गई है कि यातु लोग आज सैकड़ों दुःखियों के दुःख दूर कर रहे हैं । इस वेद की समस्त उपलब्ध सामग्री को मैं अलग से सम्पादित करूंगा यदि नाथ की आज्ञा से गुरु गोरक्षनाथ की कृपा रही ।

इस प्रकार से समस्त भारत के लोगों में जितने भी क्रिया कलाप हैं उन पर गोरक्षचिन्तिता का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित होता है । मैं इसी दृढ़ विश्वास के साथ अपने शोध को पूर्ण करने जा रहा हूँ कि नाथ सम्प्रदाय के प्राण स्वरूप गुरु गोरक्षनाथ की गौरवमयी पदवी को लोग मेरे इस प्रयास से समझें । वे खोए हुए गौरव को प्राप्तकर संसार में पुनः भारत को प्रकाशित करें । यदि ऐसा निश्चय कर साधक चले तो उसे गुरुजी की तरह दिव्य सिद्धि प्राप्त ~~प्राप्त~~ होगी । उनके विषय में लिखा है -

न तस्य योगी न जरा न मृत्युः । प्राप्तस्य योगाग्निमयः शरीरम् ।।"

—o—

